27

ॐ

विचारसागर।

सटीक.

साधुश्रीनिश्चलदासजीकृत।

दोहा।

" ब्रह्मरूप अहि ब्रह्मवित्, ताकी वाणी वेद।
भाषा अथवा संस्कृत, करत भेद भ्रम छेद "

जिसको

सर्व मुमुक्षुजनोंके हितार्थ।

खेमराज श्रीकृष्णदासने
बम्बई
निज "श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम्-यन्त्रालयमें
मुद्रितकर प्रगट किया।

संवत् १९८०, शक १८४५,

यह पुस्तक खेमराज श्रीकृष्णदासने बम्बई खेतवाडी ७ वीं गली खम्बाटा लेन निज "श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम् प्रेसमें अपने लिये छापकर, यहीं प्रकाशित किया ।

प्रस्तावना ।



तावद्गर्जन्ति शास्त्राणि जंबुका विपिनें यथा ।
न गर्जति महाशक्तिर्यावद्वेदांतकेसरी ॥

हे मुमुक्षुहितेच्छु आत्मज्ञानी महाशयो ! आपही लोगोंके प्रसन्नताके लिये इस परमोपयोगी अलभ्य अमूल्य रत्नरूप पुस्तकका प्रादुर्भाव कियागया है, इस ग्रंथमें विविधप्रकारकी प्रक्रियाएँ आत्मज्ञानके लाभार्थ लिखी हैं और न तो द्वेषभावसे किसी भी मार्गकी निंदा लिखी है तद्वत् न पक्षपात करके किसीभी पंथका मण्डन है केवल साररूप वस्तु जो आत्मज्ञान है उसीको अनेकानेक उक्ति प्रत्युक्तिद्वारा सिद्ध किया है प्रस्तुत पुरुषमात्रके धर्मकर्मसंबंधी जो अनेक प्रकारकी शंकाएँ हृदयमें उत्पन्न होती हैं वह सब इसके पठन श्रवणसे नाशको प्राप्त होंगी । यह एकही ग्रंथ ऐसा उत्तमोत्तम है कि, जो कोई मोक्षकी इच्छा रखनेवाले पुरुष इसको भली प्रकार विचारेंगे वे अल्पसमयमेंही अपने स्वरूपको अच्छी तरहसे जानेंगे फिर उनको मोक्षमार्गके अवलोकनार्थ किसीभी दूसरे पुस्तकके देखनेकी अपेक्षा न होगी-क्लिष्टविषय सुबोध होनेके कारण यह ग्रंथ पाठकोंके समझमें यथावत् आजाय इसलिये इसकी टीका अत्यंतही सुगम सरलरीतिके अनुसार ग्रंथकर्ताने स्वयं की है इस ग्रंथके अनुकरणसे बहुत-विद्वान् वेदांतकी प्रक्रियाओंको जानकर ब्रह्मनिष्ठताको प्राप्त हुये हैं. अत एव यह सर्वमान्य ग्रंथ सर्व जिज्ञासुजनोंके लाभार्थ प्रकाशित कियाहै.

आपका कृपाकांक्षी-

खेमराज श्रीकृष्णदास,

" श्रीवेङ्कटेश्वर " यन्त्रालयाध्यक्ष-बंबई.

॥ श्रीः ॥

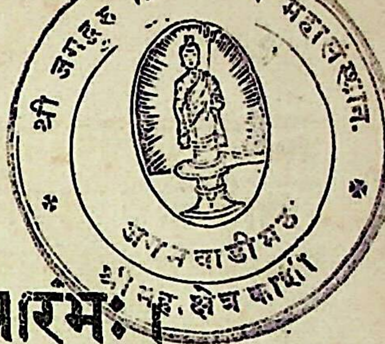
श्रीविचारसागरकी अनुक्रमणिका।

अनुबंधसामान्यनिरूपण।

अनुक्रमणिका।

इति विचारसागरकी अनुक्रमणिका समाप्ता।





अथ विचारसागरप्रारंभः ।

प्रथमस्तरङ्गः १.

अथ अनुबन्धसामान्यनिरूपण ।

अथ वस्तुनिर्देशरूप मंगल ।

दोहा—जो सुख नित्य प्रकाश विभु, नाम रूप आधार ॥
मति न लखै जिहिं मति लखै, सो मैं शुद्ध अपार ॥ १ ॥
अब्धि अपार स्वरूप मम, लहरी विष्णु महेश ॥
विधि रवि चंदा वरुण यम, शक्ति धनेश गनेश ॥ २ ॥
जा कृपालु सर्वज्ञको, हिय धारत मुनि ध्यान ॥
ताको होत उपाधितें, मोमैं मिथ्या भान ॥ ३ ॥
है जिहिं जाने बिन जगत, मनहु जेवरी साँप ॥
नशै भुजग जग जिहिं लहे, सोऽहं आपै आप ॥ ४ ॥
बोध चाहि जाको सुकृति, भजत राम निष्काम ॥
सो मेरो है आतमा, काकूं करूं प्रणाम ॥ ५ ॥
भरचो वेद सिद्धांत जल, जामैं अतिगंभीर ॥
अस विचारसागर कहूँ, पेखि मुदित है धीर ॥ ६ ॥
सूत्र भाष्य वार्तिक प्रभृति, ग्रंथ बहुत सुखानि ॥
तथापि मैं भाषा करूं, लखि मतिमंद अजानि ॥ ७ ॥

टीका—यद्यपि सूत्र, भाष्य,वार्तिकसे प्रभृति कहिये आदि लेके सुखानि कहिये संस्कृतग्रंथ बहुत हैं,तथापि संस्कृतग्रंथोंसे मंदबुद्धि पुरुषोंको बोध होवै नहीं,और भाषाग्रंथोंसे मंदबुद्धि पुरुषोंको भी बोध होवैहै, यातें भाषाग्रंथका आरंभ निष्फल नहीं किंतु संस्कृतग्रंथनके विचारनेमें जिनकी बुद्धि समर्थ नहीं है,उनके निमित्त ग्रंथका आरंभ सफल है।

दोहा।

कविजनकृत भाषा बहुत, ग्रंथ जगतविख्यात ॥
विन विचारसागर लखे,नहिं संदेह नशात ॥ ८ ॥

टीका—यद्यपि भाषाग्रंथ बहुत हैं, तथापि विचारसागर विना और भाषाग्रंथोंसे आत्मवस्तुमें संदेह दूर नहीं होता. इसमें यह हेतु है कि कितने तौ श्रवण करिके भाषाग्रंथ रचे हैं, जैसे पंचभाषा हैं, तिनकी प्रक्रिया किसी अंशमें तौ शास्त्रके अनुसार है, और जो श्रवण किया अर्थ यथार्थ ग्रहण नहीं हुआ, उस अंशमें शास्त्रसे विरुद्ध है. यासे श्रोता कृतग्रंथसे संदेहरहित बोध नहीं होता. और कोई भाषाग्रंथ किंचित् शास्त्र पढकर रचे हैं जैसे "आत्मबोध" है उनसे भी संदेह रहित बोध होवै नहीं क्योंकि तिनमें वेदांतकी प्रक्रिया संपूर्ण नहीं है. और विचारसागर ग्रंथमें संपूर्ण प्रक्रिया है,

और वेदांतशास्त्रके अनुसार है काहू स्थानमें भी विरुद्ध नहीं है. और आत्मज्ञानमें उपयोगी जो पदार्थ हैं तिनका निरूपण विस्तारसे किया है; यातैं और भाषाग्रंथोंके समान यह ग्रंथ नहीं है किंतु सर्व भाषाग्रंथोंमें यह ग्रंथ उत्तम है।

चौपाई।

नहिं अनुबंध पिछानै जौलौं।ह्वै नप्रवृत्तसुघरनर तौलौं॥
जानि जिनै यह सुनै प्रबंधा।कहूँब यातैंतेअनुबंधा॥९॥

टीका-अधिकारी, सम्बंध, विषय, प्रयोजनका नाम अनुबंध है. अधिकारी आदिक ग्रंथकेअनुबंध जाने बिन सुघर कहिये विवेकी पुरुषोंकी ग्रंथमें प्रवृत्ति होती नहीं यासे जिनअनुबन्धोंको जानिकै प्रबन्ध कहिये ग्रंथोंको सुनै, तिन अनुबंधों-को ब कहिये अब कहूं हूं॥ ९ ॥

सोरठा।

अधिकारी सम्बंध, विषय प्रयोजन मेलि चव ॥
कहत सुकवि अनुबंध,तिनमें अधिकारी सुनहु ॥१०॥

दोहा।

मल विछेप जाके नहीं, किंतु एक अज्ञान ॥
ह्वै चवसाधन सहित नर,सोअधिकृतमतिमान॥ ११ ॥

टीका-अंतःकरणमें तीन दोष होतेहैं-एक तो मल होताहै,दूसरा विक्षेप होताहै और तीसरा आवरण हो-

ताहै. निष्कामकर्मसे अंतःकरणकामलदोषदूरि होताहै, उपासनासेविक्षेपदोष दूरिहोता है, ज्ञानसे आवरण दोष दूरि होताहै, जिस पुरुषने निष्कामकर्म और उपासनाकरिके मल और विक्षेप दोष दूरि किये हैं और एक अज्ञानकहिये स्वरूपका आवरण जाके चित्तमें होवे और चारसाधनसंयुक्त होवे सो पुरुष अधिकृत कहिये अधिकारी है ॥ १० ॥ ११ ॥

अथ साधनचतुष्टयनामवर्णन–दोहा ।

प्रथम विवेक विराग पुनि, शमादि षट् संपत्ति ॥
कही चतुर्थ मुमुक्षुता, ये चव साधन सत्ति ॥ १२ ॥

अथ विवेकलक्षण–दोहा ।

अविनाशी आतम अचल, जग तातै प्रतिकूल ॥
ऐसो ज्ञान विवेक है, सब साधनको मूल ॥ १३ ॥

टीका–आत्मा, अविनाशी कहिये नाशरहित हैऔर अचल कहिये क्रियारहित है और जगत् आत्माते प्रतिकूल कहिये विपरीतस्वभाववालाहै, विनाशीहै, और चल है, इस ज्ञानका नाम विवेक है. यह विवेकही सर्वसाधनका मूल है. काहेते, प्रथम विवेक होवै तो वैराग्यसे आदिलेके उत्तरसाधन होवैं हैं. और विवेक नहीं होवैं तो उत्तरसाधन होवैं नहीं. यातैं वैराग्य शमादि षट् संपत्ति, मुमुक्षुता; इनका विवेक हेतु है ॥ १२ ॥ १३ ॥

१ इस जगे षट्शमादि संपत्ति यह पाठ उत्तम है ।

अथ वैराग्य लक्षण-दोहा।

ब्रह्मलोकलौं भोग जो, चहै सबनको त्याग ॥
वेद अर्थ ज्ञाता मुनी, कहत ताहि वैराग ॥ १४ ॥

अथ शमादि षट्नाम दोहा।

शम दम श्रद्धा तीसरी, समाधान उपराम ॥
छठी तितिक्षा जानिये, भिन्न भिन्न यह नाम ॥१५॥

अथ शम दम लक्षण-दोहा।

मन विषयनते रोकनों, शम तिहिं कहत सुधीर ॥
इंद्रियगणको रोकनों, दम भाषत बुधवीर ॥१६॥

अथ श्रद्धा समाधान लक्षण-दोहा।

सत्य वेद गुरु वाक्य है, श्रद्धा अस विश्वास ॥
समाधान ताकूं कहत, मन विछेपको नाश ॥१७॥

अथ उपरामलक्षण।

चौपाई-साधनसहित कर्म सब त्यागै।
लखि विष सम विषयनते भागै ॥
दृग नारी लखि ह्वै जिय ग्लाना।
यह लक्षण उपराम बखाना ॥ १८ ॥

अथ तितिक्षालक्षण-दोहा।

आतप शीत क्षुधा तृषा, इनको सहनस्वभाव ॥
ताहि तितिक्षा कहत हैं, कोविद मुनिवरराव ॥१९॥

शमादिषट् संपत्तिको, भाषत साधन एक ॥
इम नव नहिं साधन भनै, किंतु चारि सविवेक॥२०॥

टीका-शमादि षट्क जो संपत्ति कहिये प्राप्ति सो एक साधन करिके गिनियें है, यातें नवसाधन नहीं, किंतु सविवेक कहिये विवेकी जन चार साधन कहैं हैं॥ २० ॥

अथ मुमुक्षुतालक्षण-दोहा ।

ब्रह्मप्राप्ति अरु बंधकी, हानि मोक्षको रूप ॥
ताकी चाह मुमुक्षुता, भाषत मुनिवर भूप ॥२१॥

टीका-ब्रह्मकी प्राप्ति और अनर्थकी निवृत्ति, मोक्षका स्वरूप है. ताकी इच्छाका नाम मुमुक्षुता है, मुमुक्षुताका मुमुक्षुत्व पर्यायशब्द है॥ २१ ॥

दोहा ।

ये चव साधन ज्ञानके, श्रवणादिक त्रय मेलि ॥
तत्पद त्वंपद अर्थको, शोधन अष्टम भेलि ॥२२॥

टीका-विवेकादिक चार, श्रवण, मनन, निदिध्यासन ये तीन तत्पदके अर्थका और त्वंपदके अर्थका शोधन, ये आठ ज्ञानके साधन हैं॥ २२ ॥

दोहा ।

अंतरंग ये आठ हैं, यज्ञादिक बहिरंग ॥
अंतरंग धारै तजै, बहिरंगनको संग ॥ २३ ॥

टीका–पूर्वदोहेमें कहे विवेकादिक आठ अंतरंगसाधन कहाते हैं और यज्ञादि कर्म बहिरंगसाधन कहाते हैं.उनमेंबहिरंगोंको जिज्ञासु त्यागै औरअंतरंगोंको धारै. जिनका श्रवणमें अथवा ज्ञानमें प्रत्यक्ष फल होवै सो अंतरंग साधन कहिये है. विवेकादिक चारिका श्रवणमें उपयोग है. काहेतैं, विवेकादिक विना बहिर्मुखको श्रवण बनै नहीं. तैसे श्रवण, मनन, निदिध्यासनका ज्ञानमें उपयोग है. श्रवणादिक विना ज्ञान होता नहीं तैसे तत्पदकाअर्थ और त्वंपदका अर्थ जाने,विना भीअभेदज्ञान होता नहीं, इसरीतिसे विवेकादिक चारसाधनोंका श्रवणमें उपयोग है.और श्रवणादिक चारिसाधनोंका ज्ञानमें उपयोग है.यातैं आठ अंतरंग साधन हैं।

जिसका ज्ञानमें अथवा श्रवणमें प्रत्यक्षफल नहींहोता किंतु अंतःकरणकी शुद्धि जिसका फल होवै सो ज्ञानका बहिरंगसाधन कहाता है. ऐसे यज्ञादिक कर्म हैं.यद्यपि यज्ञादिक कर्म संसारके साधन हैं, तिनतै अंतःकरणकी शुद्धिभी कहना संभव नहीं. तथापि सकामपुरुषको संसारके हेतु हैं और निष्कामकोअंतःकरणकी शुद्धिके हेतु हैं. इसरीतिसे निष्कामपुरुषके अंतःकरणकी शुद्धिद्वारा ज्ञानके हेतु हैं, यातैं बहिरंग साधन कहिये हैं, और विवेकादिक अंतरंगसाधन

कहिये हैं. बहिरंग नाम दूरिका है, और अंतरंग नाम समीपका है. यज्ञादिक कर्म और उनके साधन स्त्री धन पुत्रादिकोंको त्यागै, सो ज्ञानका अधिकारीहै, ज्ञानके अधिकारीमें यज्ञादिक संभवै नहीं, यातें दूरि हैं।

विवेकादि ज्ञानके अधिकारीमें संभवैंहैं, यातैंसमीपहैं. उनमें भी इतना भेदहै. विवेकादिकनका श्रवणमें उपयोग है और श्रवणादिकोंका ज्ञानमें उपयोगहै, यातैं विवेकादिकोंकी अपेक्षासे श्रवणादिक अंतरंग हैं, तिनकी अपेक्षातें विवेकादिक बहि रंगहैं. यद्यपि विवेकादिकभी ज्ञानके अंतरंगसाधनही सर्वग्रंथोंमें कहे हैं बहिरंग नहीं कहे. तथापि विवेकादिकोंका ज्ञानके साधन श्रवणमें प्रत्यक्षफलहै. और श्रवणादिकोंके सदृश विवेकादिक जिज्ञासुको उपादेय हैं यज्ञादिकोंके समान जिज्ञासुको हेय नहीं, याते अंतरंग कहेहैं. और यज्ञादिकनकी अपेक्षाते भी अंतरंग हैं, यातैं भी अंतरंग साधनोंमें कहे हैं।

और विचारसे देखिये तौ ज्ञानके मुख्य अंतरंगसाधन(तत्त्वमसि)आदि महावाक्य हैं,श्रवणादिक भी नहीं काहेते युक्तिसे वेदांत वाक्योंकातात्पर्यसे निश्चय श्रवण कहिये है. जीवब्रह्मके अभेदकी साधक और भेदकी बाधक युक्तियोंसे अद्वितीय ब्रह्मका चिंतवन मनन क-

हिये है, अनात्माकारवृत्तिका व्यवधानरहित ब्रह्माकारवृत्तिकी स्थिति, निदिध्यासन कहिये है । निदिध्यासनकी परिपाक अवस्थाकोही समाधि कहैं हैं यातैं समाधिका भी निदिध्यासनमें अंतर्भाव है पृथक् साधन नहीं, ये श्रवण मनन निदिध्यासन ज्ञानके साक्षात्साधन नहीं, किंतु बुद्धिके दोषजो असंभावना और विपरीत भावना ताके नाशक हैं संशयको असंभावना कहतेहैं. विपर्ययको विपरीतभावना कहैं हैं।

श्रवणसे प्रमाणका संदेह दूरि होता है, और मननसे प्रमेयका संदेह दूरि होताहै. वेदांतवाक्यअद्वितीय ब्रह्मके प्रतिपादक हैं, अथवा अन्य अर्थके प्रतिपादक हैं ऐसा प्रमाणमें संदेह होवै सो श्रवणसे दूरि होता है और जीवब्रह्मका अभेद सत्यहै, अथवा भेदसत्य है? ऐसे प्रमेयमें संदेह होवै सो मननसे दूर होवै है. देहादिक सत्य हैं और जीवब्रह्मका भेद सत्य है; ऐसेज्ञानको विपरीभावना कहैं हैं. उसीको विपर्यय कहे हैं, उसको निदिध्यासन दूरि करै है. इसरीतिसे श्रवणादिक तीनों असंभावना और विपरीतभावनाकेनाशकहैं. और अंसभावना और विपरीतभावना ज्ञानके प्रतिबंधक हैं. यातैं ज्ञानका जो प्रतिबंधक ताके नाशद्वारा श्रवणादिक ज्ञानके हेतु कहिये हैं, साक्षात् हेतु नहीं ।

ज्ञानके साक्षात्साधन श्रोत्रसंबंधि वेदांतवाक्य हैं.

सो वेदांत वाक्य दो प्रकारके हैं. एक अवांतर वाक्य हैं एक महावाक्य हैं(परमात्माके अथवा जीवके स्वरूपका बोधक जो वाक्य सो अवांतरवाक्य कहिये)जीवपरमात्माकी एकताबोधक वाक्य,महावाक्य कहिये हैं.अवांतर वाक्यसेपरोक्ष ज्ञान होता है,महावाक्यसे अपरोक्षज्ञान होताहै."ब्रह्म है"इस ज्ञानकूं परोक्षज्ञान कहेहैं 'ब्रह्म मैंहूं''इस ज्ञानकूं अपरोक्षज्ञान कहैं हैं."त्वं ब्रह्म" ऐसा आचार्यने उच्चारण किया जो वाक्य तिसका श्रोताके कर्णसे संबंध होतेही "मैं ब्रह्म हूं"ऐसा अपरोक्षज्ञान श्रोताकूं होवै है.और श्रोताके कर्णसे वाक्यका संबंध हुएविना ज्ञानहोवै नहीं.यातैंश्रोत्रसंबंधी वाक्यही ज्ञानका हेतु है. श्रोत्रसंबंधी अवांतरवाक्य परोक्षज्ञानका हेतुहै.और श्रोत्रसंबंधी महावाक्य अपरोक्षज्ञानका हेतु है. महावाक्यसे सर्वकूं अपरोक्षही ज्ञान होवै है. परोक्ष नहीं होता।

और एकदेशीका यह मत है—श्रवण, मनन, निदिध्यासनसहित वाक्यसे अपरोक्षज्ञान होवै है. केवल वाक्यतैं परोक्षज्ञान होवै है, अपरोक्ष नहीं. जो केवल वाक्यतेही अपरोक्षज्ञान होवै तौ श्रवण मनन निदिध्यासन व्यर्थ होवैंगे । यद्यपि सिद्धांतमतमें केवल वाक्यते अपरोक्षज्ञान होवैहै और श्रवणादिकोंसे असंभावना, विपरीतभावनाका नाश होवै है,यातैं श्रवणादिक व्यर्थ

नहीं, तथापि जा वस्तुका अपरोक्षज्ञान होवै ताके विषे असंभावना, विपरीतभावना किसीको भी होवै नहीं. यातैं केवल वाक्यते अपरोक्षज्ञानवादीके सिद्धांतमें 'तत्त्वमसि' आदिक वाक्योंसे ब्रह्मका अपरोक्षज्ञान होनेसे पीछे असंभावना, विपरीतभावना संभवै नहीं. यातें श्रवणादिक साधन व्यर्थ होवैंगे। और केवल वाक्यते परोक्षज्ञान होवैहै, श्रवण मनन निदिध्यासन कियेते अपरोक्षज्ञान होवै है. या मतमें श्रवणादिक व्यर्थ नहीं यह बहुत ग्रंथकारोंका मत है, तथापि यह मत समीचीन नहीं काहेतैं-

शब्दका यह स्वभावहै—जो वस्तु व्यवहित होवै ताका शब्दसे परोक्षही ज्ञान होवैहै; किसीप्रकारते व्यवहित वस्तुका शब्दसे अपरोक्षज्ञान होवै नहीं. जैसे व्यवहित-स्वर्गका और इंद्रादिक देवोंका शास्त्ररूपी शब्दते परोक्षही ज्ञान होवैहै और जो वस्तु अव्यवहित होवै ताका शब्दसे अपरोक्षज्ञान और परोक्षज्ञान दोनों होते हैं जहां अव्यवहितवस्तुकूं शब्द अस्तिरूपते बोधन करै तहां अव्यवहितका भी परोक्षज्ञान होवैहै, जैसे "दशम पुरुष है" इसरीतिसे अस्तिरूपते बोधन किया जो अव्यवहित दशम ताका शब्दसे परोक्षज्ञानही हुआ है और जहां अव्यवहितवस्तुकूं "यह है" इसरीतिसे शब्द बोधन करै तहां अव्यवहितका शब्दसे अपरोक्षज्ञानही होवै है परोक्ष नहीं, जैसे "दशवाँ तूँ है" इसरीतिसे शब्दने

बोधन किया जो दशवाँ,ताका अपरोक्षज्ञानही हुआ है तैसे ब्रह्म सर्वका आत्मा होनेते अत्यंत अव्यवहित है, ताकूं अवांतरवाक्य अस्तिरूपतैं बोधन करैं हैं यातैं अव्यवहितब्रह्मकाभी अवांतरवाक्यतेपरोक्षज्ञान होवै है. और "दशवाँ तूं है" इस वाक्यकी सदृश श्रोताका आत्मरूप करिके ब्रह्मकूं महावाक्य बोधन करै है, यातैं महावाक्यते अव्यवहितब्रह्मका परोक्षज्ञान संभवै नहीं, किंतु अपरोक्षज्ञानही होवै है।

और जो कह्या—"जा वस्तुका अपरोक्षज्ञान होवै ताके विषे असंभावना विपरीतभावना होवै नहीं.यातैं श्रवणादिक विफल होवैंगे" सो शंका बनै नहीं. काहेतैं जैसे राजाकूं भर्तृका नेत्रसे अपरोक्षज्ञान हुवेते भी विपरीतभावना दूरि हुई नहीं; तैसे महावाक्यते ब्रह्मका अपरोक्षज्ञान होवेहै;परंतु जाकी बुद्धिमें असंभावना विपरीतभावना दोषहोवैंताकादोषरूपकलंकसहितज्ञानफलका हेतु नहीं, दोषकी निवृत्तिवास्ते श्रवणादिक करै. जाकी बुद्धिमें दोष नहीं सो न करै.इसरीतिसे ज्ञानके साधन महावाक्यहैं श्रवणादिक नहीं परंतु ज्ञानका प्रतिबन्धक जो दोषहै ताके नाशकहैं यातैं श्रवणादिक ज्ञानके हेतु कहियेहैं,श्रवणादिकोंके हेतुविवेकादिक हैं.यातैं विवेकादिक ज्ञानके साधन कहिये हैं विवेकादिक चारिसाधनसंयुक्त जो पुरुष है सो अधिकारी है॥ २३॥

अथ संबंधवर्णन–दोहा ।

प्रतिपादक प्रतिपाद्यता, ग्रन्थ ब्रह्म संबंध ॥
प्राप्य प्रापकता कहत, फल अधिकृतको फन्द ॥ २४ ॥

टीका–ग्रन्थका और विषयका प्रतिपाद्यप्रतिपादकभावसंबंध है, ग्रन्थ प्रतिपादक है, और विषय प्रतिपाद्य है, जो प्रतिपादन करनेवाला होवै सो प्रतिपादक कहिये है. जो प्रतिपादन करनेकूं योग्य होवै सो प्रतिपाद्य कहिये है. अधिकारीका और फलका प्राप्यप्रापकभाव संबन्ध है, फल प्राप्य है और अधिकारी प्रापक है. जो वस्तु प्राप्त होवै सो प्राप्य कहिये है, जाकूं प्राप्त होवै सो प्रापक कहिये है. अधिकारीका और विचारका कर्तृकर्त्तव्यभाव संबन्ध है अधिकारी कर्त्ता है और विचार कर्तव्य है. जो करनेवाला होवै सो कर्ता कहिये है और करनेयोग्य होवै सो कर्तव्य कहिये है. ग्रन्थका और ज्ञानका जन्यजनकभावसंबन्धहै, विचारद्वारा ग्रंथ ज्ञानका जनक है, और ज्ञान जन्य है. जो उत्पत्ति करनेवाला होवै सो जनककहियेहै; जाकी उत्पत्ति होवै सो जन्य कहिये है इससे आदिलेके और भी संबन्ध जानिलेने ॥ २४ ॥

अथ विषयवर्णन-दोहा।

जीवब्रह्मकी एकता, कहत विषय जन बुद्धि॥
तिनको जे अन्तर लहैं,ते मति मन्द अबुद्धि॥२५॥

टीका-जीवब्रह्मकी एकता इस ग्रंथका विषय है. जो प्रतिपादन करिये, सो विषय कहिये है,या ग्रंथविषे जीवब्रह्मकी एकता प्रतिपादन करिये है,यातैं सो एकता ग्रंथका विषय है सो एकता सर्व वेदके वचन प्रतिपादन करैहैं, याते जीवब्रह्मका भेद कहैं हैं, ते पुरुष शठ हैं और वेदके विरोधी हैं॥ २५॥

अथ प्रयोजनवर्णन-दोहा।

परमानंद स्वरूपकी, प्राप्ति प्रयोजन जानि॥
जगत समूल अनर्थ पुनि,है ताकी अतिहानि॥२६॥

टीका-प्रपंचका कारण जो अज्ञान और प्रपंच,जन्म मरणरूपी दुःखका हेतु है, यातैं अनर्थ कहिये है, ता अनर्थकी निवृत्ति और परामनंदकी प्राप्ति मोक्ष कहिये है सो ग्रंथका परमप्रयोजन हैऔर अवांतरप्रयोजन ज्ञान है.जाविषे पुरुषकीअभिलाषा होवै सो परम प्रयोजन कहिये है, और ताकूं पुरुषार्थ भी कहिये है सो अभिलाषा दुःखकी निवृत्तिविषे और सुखकी प्राप्तिविषे सर्व पुरुषनकी होवै है, सोई मोक्षका स्वरूप है यातैं परमप्रयोजन मोक्ष है और ज्ञान नहीं है, काहेतैं

सुखकी प्राप्ति और दुःखकी निवृत्तिका साधन तौ ज्ञान है. और सुखकी प्राप्ति वा दुःखकी निवृत्तिरूप ज्ञान नहीं, यातैं अवांतरप्रयोजन ज्ञान है, जा वस्तुद्वारा परमप्रयोजनकी प्राप्ति होवै सो अवांतरप्रयोजन कहिये है, ऐसा ज्ञान है, काहेतैं ग्रंथकारिके ज्ञानद्वारा मुक्तिरूप परमप्रयोजनकी प्राप्ति होवै है, यातैं ज्ञान अवांतरप्रयोजन है ॥ २६ ॥

शंकापूर्वक उत्तरका कवित्त ।

जीवको स्वरूप अतिआनँद कहत वेद,
ताकूं सुखप्राप्तिको असंभव बखानिये ।
आगे जो अप्राप्तवस्तु ताकी प्राप्ति संभवत,
नित्य प्राप्त वस्तुकी तौ प्राप्ति किमि मानिये॥
ऐसी शंका लेश आनि कीजै नविश्वास हानि,
गुरुके प्रसादतैं कुतर्क भले भानिये ।
करको कंकन खोयो ऐसो भ्रम भयो जिहिं,
ज्ञानतैं मिलत इमि प्राप्तप्राप्ति जानिये ॥२७॥

टीका—पूर्व कह्या था"अनर्थकी निवृत्ति,और परमानंदकी प्राप्ति ग्रंथका प्रयोजन है"सो बनै नहीं.काहेतैं सर्व वेद जीवकूं परमानंदस्वरूप वर्णन करैं हैं, और तुम अंगीकार भी करो हो और जो वस्तु अप्राप्त होवै, ताकी प्राप्ति संभवै है, सदा प्राप्तवस्तुकी प्राप्ति

सर्वथा बनै नहीं यातें सदापरमानंदस्वरूप आत्माकूं परमानंदकी प्राप्ति कहना सर्वप्रकार करिकै असंभव है, ऐसी कोऊ शंका करै है.

ता शंकाकूं सुनिके ग्रंथके प्रयोजनमें विश्वास दूरि नहीं करना किंतु आत्मविद्याके उपदेश करनेवाला जो गुरु हैं, तिनकी कृपातें शंकारूपी जो कुतर्क है सो दृष्टांतसे दूरि करि देना. सो दृष्टांत कहिये है—जैसे काहूके हाथमें कंगन होवै, ताकूं ऐसा भ्रम होजावै कि "मेरे हाथका कंगन खोय गया." तब वाकूं किसीके कहेसे कंगनका ऐसा ज्ञान होजावे जो "मेरा कंगन हाथमें है," तब वह ऐसे कहै है—मेरा "कंगन मिल गया है." इसरीतिसे प्राप्त जो कंगन है, ताकीभी प्राप्ति कहिये है. तैसे परमानंदस्वरूप आत्माविषे अविद्याके बलसे ऐसी भ्रांति होवै है—"आत्मापरमानंदस्वरूप नहीं है, किंतु परमानंदस्वरूप ब्रह्म है. ता ब्रह्मका और मेरा वियोग होय गया है, उपासना करिके ता ब्रह्मकूं मैं प्राप्त होऊंगा." इसरीतिकी भ्रांति बहुत मूर्ख प्राणियोंको होइ रही है. यद्यपि बहुत पंडित भी ऐसे कहैहैं, तथापि वे मूर्खही हैं. काहेतें जो जीवब्रह्मका वियोग अंगीकार करें हैं मुर्ख कहियेहैं तिन पुरुषनकूं उत्तमसंस्कारसे जो कदाचित् ब्रह्मज्ञानी आचार्यसे वेदांतग्रंथके

श्रवणकी प्राप्ति होय जावै, तब सुने अर्थकूं निश्चयकरिके कहैं हैं—"परमानंद हमारेकूं ग्रंथ और आचार्यकी कृपासे प्राप्त भया है." यह उनका कहनेका अभिप्राय है. आत्मा तौ परम आनंदस्वरूप आगे भीथा, परंतु "मेरा आत्मा परमआनंदस्वरूप है" इसरीतिसे भान नहीं होवै था यातैं अप्राप्तकी न्याईं था आचार्यद्वारा ग्रंथश्रवणसे परमानंदका बुद्धिविषे भान होवै है यातैं परमानंदकी प्राप्ति कहैं हैं। इसरीतिसे प्राप्तकी भी प्राप्ति बननेतें परमानंदकी प्राप्तिरूप ग्रंथका प्रयोजन संभवै है. जैसे प्राप्तकी प्राप्तिग्रंथका प्रयोजन है तैसे नित्य निवृत्तकी निवृत्ति भी प्रयोजन संभवै है. दृष्टांत जेवरीविषे सर्प नित्यनिवृत्त है और जेवरीके ज्ञानसे निवृत्त होवै है, तैसे आत्माविषे संसार नित्यनिवृत्तहै ताकी निवृत्ति आत्माके ज्ञानसे होवै है यातैं नित्यनिवृत्तकी निवृत्ति और नित्यप्राप्तकी प्राप्ति ग्रंथका प्रयोजन है ॥ २७ ॥

"कारणसहित जगत्की निवृत्ति और परमानंदकी प्राप्ति ग्रंथका प्रयोजन है" यह पूर्व कह्या सो संभवै नहीं. काहेतें निवृत्ति नाम ध्वंसका है. ध्वंस और नाश दोनों पर्याय शब्द हैं सो नाश अभावरूप है यातैं मोक्ष विषे भावरूपता और अभाव-

रूपता दोनों प्रतीत होवै हैं अनर्थकी निवृत्ति कहनेसे अभावरूपता प्रतीत होवै है. और परमानंदकी प्राप्ति कहनेसे भावरूपता प्रतीत होवै है। सो दोनों एकपदार्थ विषे बनें नहीं काहेतें, भावरूपता और अभावरूपता दोनों आपसमें विरोधी हैं जो विरोधीधर्म होवै, सोएक कालमें एक वस्तुविषे रहै नहीं यातें ग्रंथका प्रयोजन संभवै नहीं. ऐसी कोई शंका करै है।

ता शंकाके उत्तरका–दोहा।

अधिष्ठानते भिन्न नहिं, जगतनिवृत्ति बखान॥
सर्पनिवृत्ती रज्जु जिमि, भये रज्जुको ज्ञान॥ २८॥

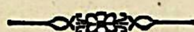
टीका–कारणसहित जगत्की निवृत्ति अधिष्ठान ब्रह्म रूप है, यातें पृथक् नहीं. जैसे सर्पकी निवृत्ति अधिष्ठान रज्जुरूप है "सारे कल्पितवस्तुकी निवृत्ति अधिष्ठानरूप होवै है, यातें पृथक् नहीं," यह भाष्यकारका सिद्धतां है यातें इस स्थानविषे अनर्थकी निवृत्ति ब्रह्मरूप है काहेतें, जो सर्व अनर्थका अधिष्ठान ब्रह्म है सो ब्रह्म भावरूप है. यातें अनर्थकी निवृत्ति भावरूप होनेतें ग्रंथ-का प्रयोजन बनै है. यह वार्त्ता सिद्ध भई॥ २८॥

दोहा।

जो जन प्रथमतरंग यह, पढै ताहि तत्काल॥
करहु मुक्त गुरुमूर्ति ह्वै, दादू दीनदयाल॥ २९॥

इति अनुबंधसामान्यनिरूपणं नाम प्रथमस्तरंगः समाप्तः

द्वितीयस्तरङ्गः २.



अथानुबंधविशेषनिरूपणम्-दोहा ।

याके प्रथमतरंगमैं, किया अनुबंध विचार ।
कहूँ ब द्वितियतरंगमैं, तिनहीको विस्तार ॥ १ ॥

टीका-च्यारसाधनयुक्तअधिकारीकह्या. तिनच्यारि साधनमें मुमुक्षुता गिनी है. मोक्षकी इच्छाका नाम मुमुक्षुता है. कारणसहित जगत्की निवृत्ति और ब्रह्म की प्राप्ति मोक्षकहिये है. ताके विषे कारणसहित जगत्की निवृत्तिरूप मोक्षका अंश, ताकूं कोऊ चाहै नहीं यह वार्त्ता-

पूर्वपक्षी प्रतिपादन करै है ।

अथ अधिकारीखंडन ।

मूलसहित जगध्वंसकी, कोउ करत नहिं आश ॥
किंतु विवेकी चहतहै, त्रिविधदुःखको नाश ॥२॥

टीका-मूलअविद्यासहित जो जगत्का ध्वंस कहिये निवृत्ति ताकी आश कहिये इच्छा, कोऊ पुरुष करै नहीं है किंतु कहिये कहा करै है ? तीनि प्रकारके जो दुःख हैं, तिनका नाश विवेकी पुरुष चाहै है. याका यह अभिप्राय है-दुःख तीनिप्रकारके हैं-एक तौअ-

ध्यात्म दुःख है, दूसरा अधिभूत दुःख है और तीसरा अधिदैव दुःख है. रोग क्षुधादिकोंसे जो दुःख होवै सो अध्यात्मदुःख कहिये है. चोर व्याघ्र सर्पादिकोंसे जो दुःख होवै, सो अधिभूत दुःख कहिये है. यक्ष राक्षस प्रेत ग्रहादिक और शीत वात आतपतैं जो दुःख हो सो अधिदैव दुःख कहिये है. इसरीतिसे तीनभांतिके जो दुःख हैं तिनके नाशकी सर्व पुरुषोंकूं इच्छा है. दुःखसे भिन्नजो पदार्थ हैं, तिनके नाशकी:विवेकी पुरुष इच्छा करैनहीं यातैं अज्ञानसहित सकलजगत्की निवृत्तिकी काहूकूं इच्छा बनै नहीं और जो सिद्धांती ऐसे कहै-" यद्यपि सकलपुरुष दुःखनिवृत्तिकी इच्छा करैं हैं, तथापि अज्ञानसहित सर्व जगत्की निवृत्ति बिना दुःखोंकी निवृत्ति होवै नहीं यातैं दुःखनिवृत्तिके :निमित्त अज्ञान सहित जगत्की निवृत्तिकूं भी चाहैं हैं,, सो बनै नहीं काहेतैं—

जो आयुर्वेदमें औषध कहे हैं, तिनतैं रोगजन्य दुःखकी निवृत्ति होवै है. और भोजनसे क्षुधाजन्य दुःखकी निवृत्ति होवै है इसरीतिसे अपने अपने उपायनतैं सर्व दुःखोंकी निवृत्ति होवै है. यातैं अज्ञान सहित जगत्की निवृत्ति विना भी

दुःखोंकी निवृत्ति बनै है दुःखोंकी निवृत्तिके निमित्त अज्ञान सहित जगत्की निवृत्तिकी चाहना बनै नहीं. "कारणसहित जगत्की निवृत्ति. और ब्रह्मकी प्राप्ति मोक्ष कहिये है" ताके विषे कारण सहित जगत्की निवृत्तिरूप मोक्षके अंशकी भी इच्छा काहूकूं बनै नहीं. यह वार्ता प्रथम दोहा विषे कही.

ब्रह्मप्राप्तिरूप मोक्षके द्वितीयअंशकी भी इच्छाकाहूकूं बनै नहीं यह वार्ता—

पूर्वपक्षी कहै है—दोहा।

किय अनुभव जा वस्तुको, ताकी इच्छा होइ।
ब्रह्म नहीं अनुभूत इम, चहै न ताकू कोइ॥ ३॥

टीका-जा वस्तुका अनुभवकहिये ज्ञान होयतावस्तुकी प्राप्तिकी इच्छा होवै है. जा वस्तुका ज्ञान होवै नहीं ताकी प्राप्तिकी इच्छाभी होवै नहीं. जैसे अन्यदेशके अनंत पदार्थ अज्ञात हैं तिनकी प्राप्तिकी इच्छा काहूपुरुषकूं होवै नहीं और अधिकारी पुरुषकूं ब्रह्मका ज्ञान है नहीं और जाकूं ब्रह्मका ज्ञान है सो अधिकारी नहीं किंतु मुक्त है ताकूं ब्रह्मप्राप्तिकी इच्छा बनै नहीं, यातैंवेदांतश्रवणतैं पूर्व अज्ञात जो ब्रह्म, ताकी प्राप्तिकी इच्छा बनै नहीं इसरीतिसे अज्ञानसहित-जगत्की निवृत्ति और ब्रह्मकी प्राप्तिरूप जो मोक्ष ताकी इच्छा

काहूकूं बनै नहीं यातैं मुमुक्षु कोऊ है नहीं ॥ ३ ॥

अन्यरीतिसे अधिकारीका अभाव,

पूर्वपक्षी प्रतिपादन करै है-दोहा।

चहत विषयसुख सकल जन, नहीं मोक्षको पंथ।
अधिकारी यातैं नहीं, पढै सुनै जो ग्रंथ ॥ ४ ॥

टीका-सर्वपुरुष विषयसुखकूं चाहै हैं, और जोकोई सकल विषयनका त्यागकरिकै तपविषे आरूढ है सो भी परलोकके उत्तम भोगनकी इच्छाकरिकै नानाक्लेश संहारै है यातैं इसलोकका अथवा परलोकका विषयसुख सर्व चाहै हैं सो विषयसुख मोक्षविषे है नहीं यातैं मोक्षका पंथ कहिये साधन, ताकूं कोई पुरुष चाहै नहीं इसरीतिसे मोक्षकी इच्छारूप मुमुक्षुता बनै नहीं और सकलपुरुषनकूं विषयसुखकी इच्छा होवै है यातैं वैराग्य, शम, दम, उपरति भी काहूविषे बनै नहीं यातैं चतुष्टयसाधनसहित अधिकारीका अभाव होनेतैं ग्रंथ का आरंभ निष्फल है ॥ ४ ॥

अथ विषयखण्डन पूर्वपक्ष दोहा।

जीवब्रह्मकी एकता, कह्यो विषय सो कूर ॥
क्लेशरहित विभु ब्रह्म इक, जीव क्लेशको मूर ॥ ५ ॥

टीका-पूर्व कह्या जो "जीवब्रह्मकी एकता, याग्रंथका विषय है" सो संभवै नहीं काहेतैं ब्रह्म तौ अविद्या,

अस्मिता, राग, द्वेष, अभिनिवेश इन पंचक्लेशोंतें रहित हैं और विभु कहिये व्यापक है, एक है, सजातीयभेद-रहित है, काहेतें, ब्रह्मके सजातीय और ब्रह्म है नहीं और जीवविषे सर्वक्लेश हैं और परिच्छिन्न हैं, और जीव नाना हैं काहेतें जितने शरीर हैं, उतने जीव हैं जो सर्व शरीर विषे जीव एक होवै तो एकशरीरमें सुख अथवा दुःख होनेतें सर्वशरीरविषे सुख और दुःख हुवा चाहिये ॥

और जो वेदांती कहैं हैं "सुखसे आदिलेके अंतः-करणके धर्म हैं सो अंतःकरण नाना हैं, यातें एकके सुखी दुःखी होनेतें सर्व सुखी दुःखी नहीं होवैं हैं, और साक्षी सुखदुःखते रहित है एक है और सर्वक्लेशतें रहित है और ताकी ब्रह्मके साथ एकता बनै है" ॥

सो वार्त्ता बनैनहीं, काहेतें जो कर्त्ता भोक्ता जीव है तिसतें भिन्न साक्षी वंध्यापुत्रके समान है. और जो साक्षी अंगीकार भी करो, सो भी एक बनै नहीं; नाना साक्षी मानने होवैंगे काहेतें यह वेदान्तका सिद्धांत है—अंतःकरण और सुख दुःखसे आदिलेके अंतःकरणके धर्म; इंद्रिय और अंतःकरणके विषय नहीं, किंतु साक्षीके विषय हैं. काहेतें, इन्द्रिय तौ पंचीकृतभूतनकूं विषय करै है यह इतना भेद है—नेत्रइं-द्रिय तौ रूपवान जो वस्तु है, ताके रूपकूं और

रूपके आश्रयकूं दोनुवांकूं विषय करै है; जैसे नील पीतादिक घटका रूप और तिस रूपकूं आश्रय घटहै, नेत्रइंद्रिय विषय करै है; और त्वचाइंद्रिय भी स्पर्शकूं, और ताके आश्रयकूं. दोनुवांकूं विषय करै है और रसना, घ्राण, श्रवण, ये तीनि तौ रस गंध, शब्दमात्रकूं विषय करै हैं, तिनके आश्रयकूंविषय करैंनहीं, यातैं इन तीनोंहीसे तौ अंतःकरणका ज्ञान बनैनहीं और नेत्रसे तथा त्वचासे अंतःकरणका ज्ञान बनै नहीं, काहेतैं, पंचीकृतभूत अथवा पंचीकृत भूतनका कार्य जो रूपवान् अथवा स्पर्शवान होवै सो नेत्रऔर त्वचाका विषय होवै है अंतःकरण अपंचीकृतभूतनका कार्य है यातैं नेत्र और त्वचाका भी विषय नहींइसी कारणतैं अपंचीकृतभूतनका कार्य नेत्र इंद्रिय भी नेत्र का विषय नहीं है और बाह्यवस्तु इन्द्रियका विषय होवै है और अंतःकरण इंद्रियकी अपेक्षाते अंतर है, यातै इन्द्रियनका विषय नहीं ॥

और अंतःकरणकी वृत्तिका भी अंतःकरण विषय नहीं काहेतैं अंतःकरण वृत्तिका आश्रयहै यातैं अंतःकरण अपनी वृत्तिका विषय बनै नहीं, जैसे अग्नि दाहका आश्रय है, सो दाहका विषय नहीं होवै है किंतु अग्निसे भिन्न जो काष्ठसे आदि लेके वस्तु हैं

सो दाहका विषय होवैं हैं; वैसे अंतःकरणसे भिन्न जो वस्तु हैं, सो अंतःकरणजन्य वृत्तिकेविषय हैं, औरअंतः-करण नहीं ॥

तैसे अंतःकरणके धर्मभी अंतःकरणकी वृत्तिके विषय नहीं. काहेतैं, अंतःकरणकूं विषय करनेवास्ते जो अंतःकरणकी वृत्ति होवै तौ अंतःकरणकूंधर्म जो सु-खादिक हैं, तिनकूं भी विषय करै, सो अंतःकरणकूं विषय करनेवाली वृत्ति तौ अंतःकरणके सन्मुखहोवै नहीं, यातैं अंतःकरणके धर्म भी अंतःकरणकी वृत्तिके विषय नहीं और यह नियम है–जो वृत्तिकेआश्रयसेकिं-चित् दूरिवस्तुहोवै, सो वृत्तिका विषय होवे है, जो वस्तु वृत्तिके आश्रयसे अत्यन्तसमीप होवे, सोवृत्ति-का विषय होवै नहीं जैसे नेत्रकी वृत्तिका आश्रय जो नेत्र, ताके अत्यन्त समीप अंजन, नेत्रकी वृत्तिका विषय नहीं. तैसे अंतःकरणकी वृत्तिका आश्रय जो अंतःकरण ताके अत्यन्तसमीप जो सुखसे आदि लेके धर्म सो अंतःकरणकी वृत्तिके विषय बनै नहीं, इसरीतिसे धर्मसहित अंतःकरणका इन्द्रियतैं अथवा अपनेतैं भान बनै नहीं किंतु साक्षीके विषय हैं ॥

सो साक्षी एक अंगीकार करैं तो जैसे एक अंतः-करणके सुखदुःखका साक्षीसे भान होवै है, तैसे सर्वके

सुखदुःखका भान हुआ चाहिये यातैं साक्षी नाना हैं जब नाना साक्षी अंगीकार करिये; तब दोष नहीं. काहेतैं जासाक्षीकी उपाधि अंतःकरण है ता साक्षीसे अपनी उपाधिके धर्मका भान होवै है. यातैं सर्वके सुखदुःखका भान होवै नहीं.

इसरीतिसे नाना जो साक्षी, तिनूंकी एकब्रह्मके साथ एकता बनै नहीं ॥

अथ प्रयोजनखंडन पूर्वपक्ष-दोहा ।

बंधनिवृत्ती ज्ञानते, बनै न विन अध्यास ॥
सामग्री ताकी नहीं, तजो ज्ञानकी आस ॥ ६ ॥

टीका-"अहंकारसे आदिलेके जो अनात्मवस्तु हैं सो बंध कहिये हैं" सो बंध जो अध्यासरूप होवै तौ ज्ञानते निवृत्त होवै, और अध्यासरूप नहीं होवै तौ ज्ञानतैं निवृत्त होवै नहीं. काहेतैं ज्ञानका यह स्वभाव है-जावस्तुका ज्ञानहोवै, ताकेविषे अध्यास औरअज्ञान, तिनकूं; दूर करै है; जैसे जेवरिका ज्ञान, जेवरीविषे सर्प अध्यासकूं; और जेवरीके अज्ञानकूं दूरकरैहै, भ्रांति ज्ञानका विषय जो मिथ्यावस्तु और भ्रांतिज्ञान, ताका नाम अध्यास है, जाके विषे जो वस्तु मिथ्या नहीं है, किंतु सत्य है ताकी ज्ञानसे निवृत्ति होवै नहीं तैसे आत्माविषे अहंकारसे आदिलैके बंधजो अध्यास कहिये

मिथ्या होवै तौ ज्ञानसे निवृत्ति होवै सो आत्माविषे मिथ्याबंधकी सामग्री है नहीं और बंधप्रतीति होवै है; यातें बंध सत्यहै, ता सत्यबंधकी ज्ञानसैं निवृत्तिकी आशा निष्फल है ॥

अथ अध्याससामग्री निरूपण-दोहा ।

सत्यवस्तुके ज्ञानते, संस्कार इकजान ॥
त्रिविधदोष अज्ञान पुनि, सामग्री पहिचान ॥७॥

टीका-१सत्यवस्तुके ज्ञानजन्य संस्कार। और तीनप्रकारके दोष; २ प्रमेयका दोष ३ प्रमाताका दोष ४ प्रमाणका दोष और ५ अधिष्ठानके विशेषरूपका अज्ञान; इतनी अध्यासकी सामग्री है. या बिना अध्यास होवै नहीं; जैसे सीपोमें रूपेका, और जेवरीमें सर्पका अध्यास होवै है;सो जिस-पुरुषनैंसत्य रूपा और सर्प देखाहै ताकूं होवै है, और जाकूं सत्य रूपेका और सर्पकाज्ञान नहीं,ताकूंहोवै नहीं यातैंसत्य-वस्तुके ज्ञानके संस्कार अध्यासके हेतु हैं और सीपीमें सर्पका, जेवरीमें रूपेका अध्यास होवे नहीं, यातैं प्रमेयविषे सादृश्यदोष अध्यासका हेतु है. इसरीतिसे प्रमाताविषे लोभ भयसे आदिलेके, और नेत्रादिक प्रमाणविषे पित्तकामलासे आदि लेके जो दोष, सो अध्यासके हेतु हैं. और सीपीका " इदं " रूपकरिके

सामान्यज्ञान होवै और " यह सीपी है" ऐसा विशेष ज्ञान नहीं होवै, जब अध्यास होवै है "सीपी है" ऐसा विशेषरूपकरिकै ज्ञान होवै, जब अध्यास होवै नहीं, और सामान्यरूपकरिकै ज्ञान नहीं होवै, तौ भी अध्यास होवै नहीं, यातैं अधिष्ठानका विशेषरूप करिकै अज्ञान और सामान्यरूपकरिकै ज्ञान, अध्यासका हेतु है ॥ इतनी अध्यासकी सामग्री है इनमें कोई एक नहीं होवे तौ भी अध्यास होवै नहीं जैसे कुलाल चक्र, दंड, मृत्तिका, घटकी सामग्री है कोई एक नहीं होवै तौ घट होवै नहीं. तैसे अध्यास भी सारी सामग्रीसे होवै है ॥

तैसे बंधके अध्यासमें एक भी कारण है नहीं, बन्ध कहूँ सत्य होवै तौ ताके ज्ञानजन्य संस्कारते आत्मा विषे मिथ्याबंध प्रतीत होवै सो सिद्धान्तमें आत्मासे भिन्न कोई सत्यवस्तु है नहीं, यातैं सत्य बंधके ज्ञानजन्य संस्कारका अभाव होनेतैं आत्माविषे बन्धका अध्यास बनै नहीं ॥

तैसे आत्माका और बन्धका सादृश्यभीहै नहीं उलटा तमःप्रकाशकी न्याईं विपरीतस्वभाव है, आत्मा प्रत्यक् है; और बन्ध पराक् है, प्रत्यक् नाम अंतरका है और पराक् नाम बाह्यका है; आत्म विषयी है और बंध

विषय है;जो प्रकाश करनेवाला होवै सो विषयी कहिये है, जाका प्रकाश करिये सो विषय कहिये है प्रत्यक्‌विषे पराक्‌का,तथा पराक्‌विषे प्रत्यक्‌का अध्यास होवैनहीं जैसे पुत्रादिकनकी अपेक्षा तैं देह प्रत्यक्‌ है। ताके विषे पुत्रादिकनका और पुत्रादिकविषे देहका अध्यास होवै नहीं और विषयमें विषयीका,तथा विषयीमें विषयका अध्यास होवै नहीं;जैसे विषय जो घटादिक तिनविषे विषयी दीपकका, और दीपकविषे घटादिकनका अध्यास होवै नहीं,तैसे सादृश्यके अभाव होनेतैं प्रत्यक्‌ विषयी जो आत्मा,ताविषे पराक्‌विषयरूप बंधका अध्यास बनै नहीं. प्रत्यक्‌का और पराक्‌का विरोध है विषयका और विषयीका विरोध है, सादृश्य नहीं. यातैं बंधका अध्यास आत्माविषे बनै नहीं ॥

तैसे प्रमाताके दोषका और प्रमाणके दोषकाभी अभाव है. काहेतैं, प्रमातासे आदिलैके सर्वप्रपंच अध्यासरूप है; सोई बंध है. यह वेदांतका सिद्धान्तहै इसरीतिसे बंधके अध्याससे पूर्व प्रमाता प्रमाणका स्वरूप असिद्ध है और ताका दोष भी असिद्ध है यातैं बंधका अध्यास बनै नहीं ॥

और अधिष्ठानका विशेषरूप करिकै अज्ञान भी

बनै नहीं काहेतैं जो बंधका अधिष्ठान ब्रह्म है, सो स्वयम्प्रकाश ज्ञानरूप है. ता स्वयं प्रकाश ज्ञानरूप ब्रह्मविषे सूर्यविषे तमकीन्याई अज्ञान बनै नहीं जैसे प्रकाशमान सूर्यसे तमका विरोध है. तैसे चेतन प्रकाश और तमरूप अज्ञानका परस्पर विरोध है और अधिष्ठानका अज्ञान अंगीकार करै, तौ भी बंधका अध्यास बनै नहीं काहेतैं अत्यन्तअज्ञातविषे, तथा अत्यन्त ज्ञातविषे अध्यास होवै नहीं. किंतु विशेषरूपसे अज्ञात और सामान्यरूपसे ज्ञातविषे होवै है और ब्रह्म सामान्यविशेष भावसे रहित है, निर्विशेष है यह सिद्धांत है यातैं विशेषरूपसे अज्ञात और सामान्यरूपसे ज्ञात ब्रह्म बनै नहीं और अध्यासके लोभसे ब्रह्मविषे सामान्य विशेषभाव अंगीकारकरोगे तो सिद्धांतका त्याग होवेगा इसरीतिसे निर्विशेष जो प्रकाशरूप ब्रह्म, ताका विशेष रूपसे अज्ञान और सामान्यरूपसे ज्ञानका अभाव होनेतैं ताके विषे अध्यास बनै नहीं;यातैं ब्रह्म विषे बंध अध्यासरूप है. यह कहना बनै नहीं, किंतु बंध सत्य है . ता सत्यबधकी ज्ञानसे निवृत्तिका असंभव है.यातैं ज्ञानद्वारा मोक्षरूप ग्रन्थका प्रयोजन बनै नहीं. और ज्ञानसे मोक्षका प्रतिपादक जो सिद्धांत सो समीचीन

नहीं, किंतु कर्मसे मोक्ष होवे है. यह वार्ता एकभविक-वादककी रीतिसे प्रतिपादन करें हैं.

दोहा।

सत्यबंधकी ज्ञानते, नहीं निवृत्ति सयुक्त ॥
नित्य कर्म संतत करै, भयो चहै जो मुक्त ॥ ८॥

टीका-सत्यबंधकी ज्ञानसे निवृत्ति माननी, संयुक्त कहिये युक्ति सहित नहीं; किंतु अयुक्त है. यातें जो पुरुष मुक्त हुआ चाहै सो संतत कहियें निरंतर नित्य कर्म करै. याका यह अभिप्राय है-

कर्म दोप्रकारकाहै;एक विहित हैऔर एक निषिद्धहैपुरुषकी प्रवृत्तिके निमित्त जाका स्वरूप वेदने बोधन किया है सो विहितकर्म कहिये है.और पुरुषकी निवृत्ति जासों बोधन करी है सो निषिद्ध कर्म कहिये है.और स्वभावसिद्ध:जो क्रियाहै सो कर्म नहीं, काहेतें जो वेदने प्रवृत्ति अथवा निवृत्तिके निमित्त बोधन किया है सो कर्म कहिये है उदासीनक्रिया कर्म नहीं यातें दोप्रकारका कर्म है, तीनप्रकारका नहीं.

विहितकर्म चारप्रकारका है:-१प्रायश्चित्तहै और २ काम्यहै और ३ नैमित्तिक है और ४ नित्य है पापनाशके निमित्त विधान किया जो कर्म,सो प्रायश्चित्त कहिये है जैसे प्रमादसे द्रव्यके ग्रहणजन्य जो यतीकूं

पाप ताके नाशके निमित्त द्रव्यका त्याग और तीन उपवास हैं. २ फलके निमित्त विधान किया जो कर्म सो काम्य कहिये है; जसे वृष्टिकामकूं कारीरीयागहै, और स्वर्ग कामकूं अग्निहोत्र सोमयागसे आदिलेके हैं। ३ जाकर्मके नहीं कियेसैं पापहोवै और किये-सैंपुण्यपापरूप फल होवै नहीं और सदा जाका विधा-ननहीं, किंतु किसीनिमित्तकूं लेके विधान किया होवै सोकर्म नैमित्तिक कहियेहै, जैसं ग्रहणश्राद्ध है और अवस्थावृद्ध, जातिवृद्ध आश्रमवृद्ध विद्यावृद्ध धर्मवृद्ध ज्ञानवृद्ध पुरुषके आगमनतें उत्थानरूप कर्म है विद्या शब्दसे शास्त्रज्ञानका ग्रहण है और ज्ञानशब्दसे अपरोक्ष विद्याकाग्रहण है.पूर्वपूर्वसे उत्तर उत्तर उत्तम हैं. ४जाके नहीं कियेसे पाप होवै. कियेसे फल होवै नहीं. और सदा जाका विधान होवै. सौ नित्यकर्म कहिये है, जैसे स्नान संध्यादिक हैं इसीरीतिसे चारिप्रकारका विहित और निषिद्धमिलिके पांचप्रकारका कर्म है.

मोक्षकी इच्छावान् काम्य और निषिद्धकर्म करै नहीं काहेतैं काम्यकर्मसे उत्तमलोककूंजावै है. औरनि-षिद्धकर्मसे नीचलोककूं जावै है यातैं दोनोंको त्याग करै और नित्य कर्म सदा करै. और नैमित्तिकका जब निमित्तहोवैंतब नैमित्तिक भी करै काहेतैं.नित्यनैमि-

त्तिक कर्म नहीं करै तो पाप होवैगा. ता पापसे नीच योनिकूं प्राप्त होवैगा यातैं पापके रोकनेवास्ते नित्यनैमित्तिककर्मकरै. नित्य नैमित्तिककर्मका और फलनहीं यही फल है, जो तिनके नहीं करनेसे पाप होवै है सो तिनके करनेसे होवै नहीं यातैं मुमुक्षु नित्यनैमित्तिककर्म अवश्य करैं ॥

और जो कदाचित् प्रमादसे निषिद्धकर्म होयजावै तो ताका दोष दूरि करनेकूं प्रायश्चित्त करै.जो निषिद्धकर्म नहीं किया होवै तौ भी जन्मांतरके जो पाप हैं,तिनके दूरि करनेवास्ते प्रायश्चित्त कर्म करै, परन्तु इतना भेद है–प्रायश्चित्त दो प्रकारका है, एकतो असाधारणहै, और एक साधारणहै. १ जो किसी पाप विशेषके दूरि करनेवास्ते शास्त्रने विधान किया होवै सो असाधारण प्रायश्चित्त कहिये है. २ जैसे पूर्वकह्या उपवास है और सर्वपापके दूरि करनेवास्ते शास्त्रने जो विधान किया कर्म, सो साधारणप्रायश्चित्त कहियेहै, जैसे गंगास्नान और ईश्वरके नामकाउच्चारण है, इनते आदिलेके और भी जानि लेने. इसरीतिसे दो प्रकारके प्रायश्चित्त हैं. १ जो ज्ञातपाप होवै तौ तिस पापका नाशक जो असाधारण प्रायश्चित्त शास्त्रने बोधन किया है, ताकूं करै.

और २ जो जन्मांतरके अज्ञातपाप हैं तिनके दूर कर-
नेवास्ते साधारण प्रायश्चित्तकरै.काहेते,१ असाधारण-
प्रायश्चित्तका यह स्वभाव है–जापापकानाश करने
वस्ते शास्त्रने जो प्रायश्चित्त विधान किया है सो पाप
प्रायश्चित्तसे दूर होवै है. और नहीं और २ जन्मान्तर
के पापका ऐसाज्ञान है नहीं.जो कौनसा पाप है किस
प्रायश्चित्तसे दूर होवैगा. यातैं साधारण प्रायश्चित्तकरै.
साधारणप्रायश्चित्तसे सर्व पाप दूरि होवै है. यद्यपि
गंगा स्नानसे आदि लैके जो साधारणप्रायश्चित्त कहे
सो केवल प्रायश्चितरूप नहीं किंतु, काम्यरूप और २
प्रायश्चित्तरूप हैं. काहेतैं, "गंगास्नानसे उत्तमलोक
की प्राप्ति" शास्त्रमें कही है.तैसे " ईश्वरके नाम उच्चा-
रणसे भी उत्तमलोककी प्राप्ति" कही है. यातैं काम्यरू
र, और पापके नाशक हैं, यातैं प्रायश्चित्तरूप हैं, जैसे
अश्वमेध ब्रह्महत्यादिक पापका नाशक है, और स्वर्ग
की प्राप्तिरूप फलका हेतु है, तैसे गंगास्नानादिक हैं,
केवल प्रायश्चित्त नहीं यातैं गंगास्नानादिकोंतैं उत्तम
लोककीप्राप्ति होवै ह, सो मुमुक्षुकूं वांछित है नहीं.
तथापि जाको उत्तम लोककी वांछा है, ताको तो गंगा
स्नानादिक पाप नाश करिकै उत्तम लोककूं प्राप्त कर

हैं. जाको लोककी कामना नहीं है, ताके केवल पाप-हीके नाशक हैं. यातें कामना सहित अनुष्ठान किये काम्यरूप प्रायश्चित्त हैं.लोक कामनासे बिना अनुष्ठान कियेकेवल प्रायश्चित्तरूप हैं,जैसे वेदांतमतमें,संपूर्णकर्म सकामपुरुषकूं संसारके हेतु हैं, और निष्कामकूं अंतः-करणकी शुद्धि करिके मोक्षके हेतु हैं, तैसे एकही गंगास्नान तथा ईश्वरका नाम उच्चारण सकामकूं तो काम्यरूप प्रायश्चित्त हैं और निष्कामकूं केवल प्रायश्चि-त्तरूप हैं.यातैंमुमुक्षु साधारणप्रायश्चित्त करै. इसरीतिसे जन्मांतरके संपूर्ण पापका ज्ञानसे विनाही नाश होवै है तैसे मुमुक्षुके जन्मांतरके काम्यकर्म भी वंध्याके समान हैं; फलके हेतु नहीं.काहेतें जैसे कर्मके अनुष्ठान काल-विषे पुरुषकी इच्छा फलका हेतु वेदांत मतमें अंगीका-रकरी है, इच्छासहित अनुष्ठान किये कर्म स्वर्गादि फलके हेतु हैं. और निष्काम अनुष्ठान किये स्वर्गादि फलके हेतु नहीं; यह वेदांतका सिद्धांत है.तैसे कर्मकी सिद्धिसे अनंतर भी पुरुषकीइच्छाफलकाहेतु हैसोपुरुष-की इच्छा जिस कालमें पुरुष मुमुक्षु हुवा तबदूरि होगई यातें जन्मांतरके काम्यकर्म भी फलके हेतु नहीं जैसे किसी पुरुषने धनकी प्राप्तिकी इच्छाते:धनीपुरुषकाआ-राधन किया होवै, ता धनीके आराधनसे अनंतर भी

जो धनकीइच्छा दूरि होय जावै तौ धनकी प्राप्तिरूप फल होवै नहीं. तैसे जन्मांतरके काम्य कर्मका भी मुमुक्षुकूं इच्छाके अभावतैं फल होवै नहीं. इसरीतिसे केवल कर्मसे मोक्ष होवै है.

वर्त्तमानजन्मविषेकाम्य और निषिद्ध कियेनहीं, जातैं ऊर्ध्वलोक अधोलोककूं जावै. जन्मांतरके प्रारब्ध जो निषिद्ध और काम्य, तिनका भोगसे नाश होवै है.नित्य और नैमित्तिकके नहीं करनेते जो पाप होवै सो तिनके करनेतैं मुमुक्षुकूं होवै नहीं. और जन्मांतरके संचित जो निषिद्ध हैं,तिनका साधारण प्रायश्चित्तसे नाश होवै है, जन्मांतरका संचितकाम्य कर्म मुमुक्षुकूं इच्छाके अभावते फल देवै नहीं. यातैं मुमुक्षु नित्यनैमित्तिक और साधारण प्रायश्चित्तरूप कर्म करै और वर्त्तमानजन्मका ज्ञात निषिद्धकर्म होवै तौ असाधारण प्रायश्चित्त करै. अथवा नित्य और नैमित्तकही करै. प्रायश्चित्त नहीं करै काहेतैं जो संचित निषिद्धकर्म और काम्यकर्म,सो मुमुक्षुके नाश होय जावैं हैं जैसे ज्ञानवान्के संचितकर्मका नाश वेदांतमतमें अंगीकार किया है. तैसे निषिद्धकाम्यका त्यागकरिकेनित्यनैमित्तिक कर्मविषे वर्त्तमान जो मुमुक्षु ताके संचितकर्मका नाशहोवै हैं. अथवा संचित जो काम्य और

निषिद्ध सो सारे मिलिके एकजन्मका आरंभ करे हैं. यातैं मुमुक्षुकूं एक जन्म और होवै है. अथवा योगीके कायव्यूहकी न्याईं एक ही कालविषे सारे संचित अनंतशरीरोंका आरंभ करै हैं, तिनतैं मुमुक्षु उत्तरजन्मविषे सर्वका फल भोग लेवै है. अथवा नित्य और नैमित्तिककर्मके अनुष्ठानते जो क्लेश होवे है, सोजन्मांतरके संचितनिषिद्धकर्मका फल है. यातैंजन्मांतरका संचितनिषिद्ध और जन्मका आरंभ करै नहीं. काम्य जो संचित हैं सो एकजन्म अथवा एककालमैं, अनंत शरीरोंका आरंभ करै है यातैं मुमुक्षुकूं उत्तरजन्मविषे दुःखका लेशभी होवै नहीं केवल सुखका भोगहोवै है. काहेतैं,जन्मांतरके संचित जो विहितकर्म हैं,तिनते शरीर हुवा है,और चित जो निषिद्धहैं सो नित्यनैमित्तिकके अनुष्ठानके क्लेशतैं पूर्वजन्मविषे भोगिलिये.इसरीतिसे प्रायश्चित्तसे विना केवल नित्य औरनैमित्तिककर्मके अनुष्ठानतैं मोक्षहोवैहै. यातैं नैमित्तिक कर्मके समय नैमित्तिक अनुष्ठान करै और नित्य कर्म संतत अनुष्ठान करै या मतकूं शास्त्रमें एकभविकवाद कहैं हैं.

यातैं भी बंधकी निवृत्ति ज्ञानद्वारा ग्रंथका प्रयोजन नहीं. काहेतैं, जो वस्तु औरसे होवै

नहीं. सो मुख्य प्रयोजन होवै है, जैसे रूप का ज्ञान नेत्रविना औरसे होवै नहीं. सो रूपज्ञान नेत्रका प्रयोजन है. और बंधकी निवृत्ति ग्रंथसे बिना क्रमते होवै है. यातैं बंधकी निवृत्ति ग्रंथका प्रयोजन नहीं.इसरीतिसे ग्रंथके अधिकारी, विषय; प्रयोजन बनै नहीं.

अधिकारी आदिकोंके अभावसे संबंध भी बनैं नहीं काहेतैं, विषयके अभावते ग्रंथका और विषयका प्रतिपाद्य प्रतिपादक भावसंबंध बनै नहीं. अधिकारी और फलके अभावतैं, तिनका प्राप्यप्रापकभावसंबंध बनै नहीं. अधिकारीके अभावतैं ताका और विचारका कर्तृकर्तव्यभावसंबंध बनै नहीं. ज्ञानकूं निष्फलता होनेतैं ग्रंथका और ज्ञानका जन्यजनकभावसंबंध बनै नहीं. सफलवस्तु जन्य होवै है. पूर्व कही रीतिसे ज्ञान सफल है नहीं और ज्ञानके स्वरूपका भी अभाव है. यातैं भी ज्ञानका और ग्रंथका संबंध बनै नहीं.काहेतैं. जीवब्रह्मके अभेद निश्चयका नाम सिद्धांतमें ज्ञान है सो अभेद निश्चय बनै नहीं.काहेतैं जीवब्रह्मका अभेद है नहीं. यह वार्ता विषयके निराकरणमें पूर्व प्रतिपादनकरी है.यातैं अभेदनिश्चयरूप ज्ञान बनैं नहीं इसरीतिसे अधिकारी आदिक अनुबंधनके अभावतैं ग्रंथका आरंभ बनै नहीं॥

अथ पूर्वपक्षीक्रमतैं उत्तर,

पूर्वपक्षीने प्रथम कह्या "जो मोक्षकी इच्छा काहूकूं बनै नहीं काहेतैं, मोक्षविषे दो अंश हैं-एक तो कारण सहित जगत्की निवृत्ति मोक्षका अंश है,और दूसरा अंश ब्रह्मकी प्राप्तिरूप है.तिनविषे कारणसहित जगत्की निवृत्तिरूप मोक्षके प्रथम अंशकी इच्छा काहूकूं है नहीं, किंतु तीनप्रकारके दुःखकी निवृत्तिकी इच्छा सर्वपुरुषनकूं है. सो दुःखकी निवृत्ति अपने अपने उपायोंतैं होय जावै है. यातैं मूलसहित जगत्की निवृत्तिकी इच्छावाला मुमुक्षु अधिकारी बनै नहीं" ताका-

समाधान प्रथम कहैं हैं-दोहा ।

मूलसहितजगहानिबिन, ह्वै न त्रिविधदुखध्वंस ॥
याते जन चाहत सकल,प्रथम मोक्षको अंस॥ ९॥

टीका-मूल कहिये जगत्का कारण जो अज्ञान, और जगत् के नाशविना तीनप्रकारके दुःखका और उपायोंतैं ध्वंस कहिये नाश होवै नहीं, और मूलअविद्याके नाशतैं सर्वदुःख और दुःखके कारण रोगादिक, और रोगादिकोंके आश्रय शरीरादिकोंका नाश होवै है. यातैं त्रिविध दुःखके नाशके निमित्त कारणसहित जगत्की निवृत्तिरूप मोक्षके प्रथम अंशकूं सकलपुरुष चाहैं हैं. तात्पर्य यह है;जो सर्व औषध आदिक उपा-

य करनेविषे समर्थ हैं तिनके भी दुःख नियम करि दूरि होवैं नहीं. काहू पुरुषकेरोगादिजन्य दुःख औषधादिक उपायोंतैं नाश होवैं हैं, और काहूके दुःखका औषधादिक उपायोंते नाश होवै नहीं यातैं औषधादिक उपायोंतैं रोगादिजन्य दुःखकी नियम करिकै निवृत्ति होवै नहीं और जाके औषधादिक उपायोंतैं दुःखकी निवत्ति होवै है,ताके भी दुःखकी उत्पत्ति फिरि होवै है, यातैं औषधआदिक उपायोंतैं दुःखकी अत्यंत निवृत्ति होवै नहीं जाकी निवृत्ति हुई है, ताकी फेरि उत्पत्ति नहीं होवै सो अत्यंतनिवृत्ति कहिये है. औषधादिक उपायों तैं दुःखकी निवृत्ति नियमकरिके होवै नहीं और निवृत्त जो दुःख, ताकी फेरि भी उत्पत्ति होवै है यातैं अत्यंत निवृत्ति भी तिन उपायोंतैं होवै नहीं और दुःखके सकलसाधनका नाश होवै,तो सकलदुःखकी नियम करिकै निवृत्ति होवै और दुःखके साधनका नाश हुयेतें फेरि दुःख होवैनहीं. यातैं दुःखकी निवृत्तिके निमित्त दुःखके साधनकी निवृत्तिकी इच्छा सर्वकूं होवै है.

सो दुःखका साधन अज्ञान और ताका कार्य प्रपंच है. यह वार्ता छांदोग्यउपनिषद्में भूमिविद्याविषे प्रसिद्ध है. तहां यह प्रसंग है —"एक समय सनत्कुमा-

रके पास नारद प्राप्त हुये. और नारदने कहा—हे भगवन्! जो आत्मज्ञानी पुरुष है, ताकूं शोक नहीं होवै और मैं शोकसहित हूं, यातैं मैं अज्ञानी हूं मेरे सा उपदेश करो, जासे मेरा अज्ञान दूरि-होवै" तब सनत्कुमारने नारदकूं कहा कि "हे नारद! भूमा शोकरहित है, सुखरूप है. और भूमासे भिन्न सकल तुच्छ हैं, और दुःखका साधन है-भूमा नाम ब्रह्मका है इस रीतिसे कि ब्रह्मसे भिन्न जो वस्तु, सो सकलदुःखके साधन कहे हैं. अज्ञान और ताका कार्य ब्रह्मसे भिन्न है यातैं दुःखका साधन है ताकी निवृत्ति हुयेसैं सर्वदुःखकी नियम करिकै अत्यंतनिवृत्ति बनै है. यातैं सकलदुःखकी निवृत्तिके निमित्त अज्ञानसहित प्रपंचकी निवृत्तिरूप मोक्षके प्रथमअंशकी चाह बनै है ।

और जो पूर्वपक्षीने कह्या "जा वस्तुका अनुभव किया होवै, ताकी प्राप्तिकी इच्छा होवै है ब्रह्मका अनुभव काहूने किया है नहीं यातैं ब्रह्मकी प्राप्तिरूप मोक्षके द्वितीयअंशकी इच्छा काहूकूं होवै नहीं."

ताका समाधान कहैं हैं—दोहा।

किय अनुभव सुखको सबहिं, ब्रह्मश्रुत्यो सुखरूप ॥
ब्रह्मप्राप्ति या हेतुतैं, चहत विवेकी भूप ॥ १० ॥

टीका-सर्वपुरुषने सुखका अनुभव किया है, यातैं सुखकी इच्छा सर्वकूं है और ब्रह्म नित्य सुखरूप है; ऐसा सच्छास्त्रमें माना है, यातैं विवेकी भूप कहिये उत्तम विवेकी सुख स्वरूप ब्रह्मकी प्राप्तिकूं चाहैं हैं। १०

दोहा।

केवलसुख सब जन चहैं, नहीं विषयकी चाह ॥
अधिकारी यातैं बनै, है जु विवेकी नाह ॥ ११ ॥

टीका-पूर्व कह्या जो "सर्वपुरुषविषयजन्य सुख चाहैंहैं, सोविषयजन्य सुख मोक्षविषे प्राप्त होवैं नहीं किंतु जगत्में प्राप्त होवै है, यातैं मोक्षकी इच्छावान् अधिकारीकेअभावतैं ग्रंथका आरंभ निष्फल है" ताकूं यह पूछें हैं जो कोई मुमुक्षु नहीं है अथवा मुमुक्षु तो है, परंतु तिनकी ग्रंथविषे प्रवृत्ति होवै नहीं जो ऐसे कहैं "मुमुक्षुनहीं है सो बनै नहीं है" काहेतें, सर्वपुरुष सर्वदुःखकानाश, और नित्यसुखकी प्राप्ति चाहैं हैं, सो सर्वदुःखका नाश और सुखकी प्राप्तिरूप मोक्षहै, यातैं सर्वपुरुष मुमुक्षु हैं.

और कह्या जो "विषयजन्यसुख चाहैं हैं" सो नहीं किंतु सुख मात्र चाहैं हैं. सो सुख विषयसे होवै, अथवा विषय बिना होवै, जो विषयजन्य सुखकूंही चाहै, तोकेसुषुप्तिके सुखकी इच्छा नहीं होनी चाहिये. सुषुप्ति-

कासुख विषयजन्य है नहीं यातैं सुखमात्रकूं चाहैं हैं केवल "विषयजन्यकूंही नहीं; उलटा अत्मसुखको चाहैं हैं, विषयजन्यकूं नहीं चाहैं हैं, काहे तें, सर्वपुरुषोंको न्यून अथवा अधिक विषयसुख प्राप्त भी है, परंतु ऐसी इच्छा सदा रहै है–"हमारेकूं ऐसा सुख प्राप्त होवै, जा सुखका नाश कभी होवै नहीं" ऐसा सुख आत्मस्वरूप मोक्ष है, यातैं सर्व पुरुष मुमुक्षु हैं, "कोउ मुमुक्षु नहीं" ऐसा कहना बनै नहीं.

और जो ऐसे कहै, 'मुमुक्षु तो हैं परंतु ग्रंथमें प्रवृत्ति होवै नहीं, यातैं ग्रंथका आरंभ निष्फल है" ताकूं यह पूछैं हैं–ग्रंथ मोक्षका साधन नहीं है ! यातैं ग्रंथविषे प्रवृत्ति नहीं होवै अथवा ग्रंथसे और भी कोई साधन है. जाके विषे प्रवृत्ति होनेसे ग्रंथ विषे प्रवृत्ति होवै नहीं. अथवा जिन शमादिकोंतैं ग्रंथमें अधिकार कह्या सो शमादिमान् ज्ञानके योग्य कोई अधिकारी नहीं है, यातैं ग्रंथमें प्रवृत्ति होवै नहीं। ऐसे कहै–"ग्रंथ मोक्षका साधन नहीं" सो वार्ता बनै नहीं. काहेतैं मोक्ष ज्ञानतैं नियम करिकै होवै है; यह वेदका सिद्धांत है सो ज्ञान श्रवणसे होवै है.

श्रवण दोप्रकारका है–एक तो वेदांतवाक्यका और श्रोत्रकासंयोगरूप है, और दूसरा वेदांतवाक्यका विचा-

रूप है. ज्ञानका हेतु प्रथम श्रवण है; दूसरा नहीं. काहेतैं, शब्दजन्य ज्ञानविषे इंद्रियके साथ शब्दकासंयोग ही सर्वत्र हेतु है, यातैं वेदांतवाक्यका और श्रोत्रका संयोगरूप श्रवण ब्रह्मज्ञान का हेतु है, अवांतर वाक्यका श्रवण परोक्षज्ञानका हेतु है. और महावाक्यका श्रवण अपरोक्ष ज्ञानका हेतु है. यह वार्ता पूर्व प्रतिपादन करी है. जाको ज्ञान हुवे तैं भी असंभावना और विपरीत भावना होवै, सो दूसरा श्रवण और मनन निदिध्यासन करै. वेदांतवाक्यका विचाररूप जो श्रवण, तासूं वेदान्तवाक्यविषे असंभवना दूरि होवै है. वेदांतवाक्य ब्रह्मके प्रतिपादक हैं.अथवा और अर्थके प्रतिपादक हैं ! ऐसा संशय वेदांतवाक्यकी असंभावना है, सो तिनके विचारसे दूरि होवैहै, और मननसे प्रमेय की असंभवना दूरि होवै है. जीवब्रह्मकी एकता वेदांतका प्रमेय कहिये है. सो एकता सत्य है। अथवा जीवब्रह्मका भेद सत्यहै, ऐसा जो संशय;सोप्रमेयकी असंभावना कहिये है, सो मननसे दूरि होवै है विपरीत भावना निदिध्यासनतैं दूरि होवै है. इसरीतिसे प्रथम श्रवण तो ज्ञानद्वारा मोक्षका हेतु है, और विचाररूप श्रवण और मनन और निदिध्यासन, ये असंभावना और विपरीतभावनाकीनि-

वृत्तिद्वारा मोक्षके हेतु हैं. वेदांत नाम उपनिषद्का है सो यद्यपि या ग्रंथतैं भिन्न है तथापि तिनके समान अर्थवाले भाषावाक्य या ग्रंथमें हैं. तिनके श्रवणतैं भी ज्ञानहोवै है यह वार्ता आगे प्रतिपादन करैंगे.इसीरीतिसे ज्ञानद्वारा ग्रंथ मोक्षका हेतु है और विचाररूप मननरूप यह ग्रन्थ है यातैं असंभावनादोषकी निवृत्तिद्वारा मोक्षका हेतु है; यातैं "ग्रंथसे मोक्ष होवै नहीं;" यह केवल हठमात्र है.

और जो ऐसे कहै"ग्रंथसे मोक्ष तो होवै है" परंतु और साधनसे भी मोक्ष होवै है. यातैं ग्रंथका आरंभ निष्फल है. ताकूं यह पूछे हैं–सो और साधन कौन है जातैं मोक्ष होवै है?जो ऐसे कहै–"उपनिषद् सूत्रभाष्यसे आदिलेके संस्कृत ग्रंथ जीव ब्रह्मकी एकताकेप्रतिपादक बहुत हैं, तिनसे भी ज्ञानद्वारा मोक्ष होवै है याका भिन्न अधिकारी नहीं.यातैं यह ग्रंथ निष्फल है"सोवार्त्ता यद्यपि सत्य है, तथापि तिनका अर्थ ग्रहणकरनेविषे जाकी बुद्धि समर्थ नहीं है, जो ऐसा मुमुक्षु, ताको तिनसे ज्ञान होवै नहीं यातैं मंदबुद्धि मुमुक्षुकी तिनविषे प्रवृत्ति होवै नहीं; या ग्रंथ विषेही प्रवृत्ति होवैगी.

और जो ऐसे कहै "ग्रंथसे मोक्ष भी होवे है और संस्कृतग्रंथनसे मंदबुद्धिकूं बोध भी होवै नहीं. और

मुमुक्षु भी है तो भी ग्रंथविषे प्रवृत्ति होवै नहीं. काहेतैं जो विवेक वैराग्य शमादिमान अधिकारी कह्या सो दुर्लभ है. यातैं आपणेविषे साधनके अभाव देखिके ग्रंथमें प्रवृत्ति होवै नहीं " ताकूं यह पुछैं हैं- बहुत अधिकारी नहीं ! अथवा कोई भी नहीं जो ऐसे कहै-" बहुत अधिकारी नहीं " सो तो हमभी अंगीकार करैं हैं और जो ऐसे कहै-" कोइ भी ज्ञानके योग्य अधिकारी नहीं " सो वार्त्ता बनै नहीं काहेतैं, अंतःकरणविषे तीनदोष हैं-एक मल है और विक्षेप है, और स्वरुपका आवरण है। मल नाम पापका है, विक्षेप नाम चंचलताका है और आवरण नाम अज्ञानका है शुभकर्मतैं मलदोष दूरि होवै है और उपासनातैं विक्षेपदोष दूरि होवै है. ज्ञानतैं आवरणदोष दूरि होवै है जिनके अन्तःकरणविषे मल और विक्षेप दोष हैं, सो अधिकारी भी नहीं परंतु इस जन्मविषे अथवा पूर्वजन्मविषे शुभकर्म, और उपासनाके अनुष्ठानतैं जिनके मल और विक्षेपदोष नाश हुवे हैं. ऐसे ज्ञानयोग्य अधिकारी हैं तिनकी ग्रंथमें प्रवृत्ति बनै है.

और जो ऐसे पूर्व कह्या " सर्वकूं विषयसुखमें अलंबुद्धि है नित्यसुखकूं कोई चाहै नहीं. " सो बनै नहीं. काहेतैं चारि प्रकारके पुरुष हैं-पामर, विषयी,

जिज्ञासु, मुक्त.१ इस लोकके निषिद्ध और विहित भोगनविषे आसक्त जो शास्त्रसंस्काररहित पुरुष सो पामर कहिये है. २ शास्त्रके अनुसार विषयनकूं भोगता हुवा परलोकके अथवा इसलोकके भोगनके निमित्त जो कर्म करै सो विषयी कहिये है.

और ३ ऐसा पुरुष जिज्ञासु कहिये है–जो पुरुषकूं उत्तम संस्कारते सच्छास्त्रका श्रवण होवै, ता उत्तमकूं ऐसा विवेक होवै है विषयसुख अनित्य है. जितना काल विषयसुख होवै है तबभी कोई दुःख अवश्य रहै है. और परिणाममें विनाशी सुखदुःखका हेतु है, और वर्त्तमान कालमें भी नाशके भयतैं दुःखका हेतु है, इस रीतिसे विषयसुख दुःखतैं ग्रसाहुआ है, यातैं दुःखरूप है. और दुःखकी निवृत्ति लौकिक उपायतैं होवै नहीं काहेतैं जो उपाय करैं हैं, तिनके भी सारे दुःख निवृत्ति होवैं नहीं, और निवृत्त हुवे भी फेरिहोवैं हैं, और जितनेकाल शरीर है, तबपर्यंत दुःखकी निवृत्ति संभव भी नहीं. काहेतैं, जो शरीर हैं सो सारे पुण्य और पापसे होवैं हैं, मनुष्यशरीर तो मिश्रितकर्मका फल प्रसिद्ध है, और देवशरीर भी मिश्रित कर्मकाही फल है, जो केवल पुण्यका फल देवशरीर होवै, तो अपन से अधिक अन्यदेवकी विभूति देखके जो देवनकूं ताप

होवै है, सो नहीं हुवा चाहिये. सर्व देवनमें प्रधान जो इंद्र ताकूं भी अनेक दैत्यदानवके भयजन्य दुःख शास्त्रमें कहे हैं. जो देवशरीर केवलपुण्यकाही फल होवै तो देवनकूं दुःख नहीं हुवा चाहिये. यातैं देवशरीरभी पुण्य पाप दोनोंका फल है. और जो श्रुतिमें कहाहै-देवता पापरहित हैं ताका यह अभिप्राय है.-कर्मका अधिकार केवल मनुष्यशरीरमें है, और में नहीं, यातैं देवशरीरमें किया जो शुभ अथवा अशुभ, तिनका फल देवनकूं होवै नहीं. और देवशरीरसे पूर्वशरीरमें किया जो शुभ और अशुभ, तिनका फल तो देवशरीर में भी होवैहै, इसरीतिसे देवशरीर मिश्रित कर्मका फलहै

और तिर्यक् पशु पक्षीका शरीर भी मिश्रितकर्मक फल है काहेतैं, जो तिनकूं प्रसिद्ध दुःख है सो तो पापका फलहै; और मैथुनादिकनका सुख है, सो पुण्यका फलहै, उदरसे जो गमनकरै, सो तिर्यक् कहिये है. पक्षसे गमनकरै, सो पक्षी कहिये है. चार पादसे गमन करै सो पशु कहिये है कहुं, पशु पक्षी भी तिर्यक्ही कहियें हैं इसरीतिसे सर्व शरीर पुण्य और पापसे रचित हैं, कोई शरीर तो न्यूनपाप और अधिकपुण्यतैं रचित है, जैसे देवशरीर अपने अपने जो पुण्य हैं, तिनहीते सबदेवनविषे पाप न्यून है. यातैं न्यूनपाप अधिकपुण्यतैंरचितदेवशरीर कहिये है. या अभिप्रायतैं

ही शास्त्रमें केवल पुण्यका फल देवशरीर कहा है; यातैं विरोध नहीं जैसे बहुतब्राह्मणोंसे ब्राह्मणग्राम कहिये है, तैसे अधिकपुण्यकाफल होनेतैं देवशरीर केवल पुण्यका फल कहिये है. परंतु केवल पुण्यका फल नहीं.

तिर्यक् पशु पक्षीका शरीर अधिकपाप न्यूनपुण्यसे रचितहै. जो उत्तम मनुष्य हैं, तिनकी देवनकेसमान रीति है. और नीचनकी सर्पादिकनके समान है.इसरीतिसे सर्वशरीर पुण्यपाप रचित हैं. और पापका फल दुःख है, यातैं शरीररहै तबपर्यंतदुःखकीनिवृत्ति होवै नहीं. सो शरीर, धर्म और अधर्मका फल है. तिनकी निवृत्ति बिना शरीरकी निवृत्ति होवै नहीं काहेतैं, वर्तमानशरीर दूरि हुये से भी पुण्यपापतैं और शरीर होवेगा. यातैं पुण्य पापकी निवृत्ति बिना शरीरकी निवृत्ति होवै नहीं, सो पुण्यपाप रागद्वेषके नाश बिना दूरि होवे नहीं, काहेतैं वर्तमानपुण्यपापके भोगसे निवृत्तिहुयेसे भी रागद्वेषतैं और पुण्यपाप होवैंगे. यातैं रागद्वेषकी निवृत्ति बिना पुण्य पाप दूरि होवैं नहीं सो राग द्वेष अनुकूलज्ञान और प्रतिकूलज्ञानसे होवैं हैं; जाविषे अनुकूलज्ञान होवै; ताविष राग होवै है, और जाविषे प्रतिकूलज्ञान होवै ताविषे द्वेष होवै है यातैं अनुकूलज्ञान और प्रतिकूलज्ञानकी निवृत्तिबिना रागद्वेष

कीनिवृति होवै नहीं. सो अनुकूलज्ञान और प्रतिलकूज्ञान भेदज्ञानसे होवै है. काहेतें जावस्तुको अपने स्वरूपतैं भिन्न जानैं ताके विषे अनुलकूज्ञान अथवा प्रतिकूलज्ञान होवै है. अपने स्वरूपमें अनुकूलज्ञान और प्रतिकूलज्ञान होवै नहीं सुखके साधनका नाम अनुकूल है. और दुःख के साधनका नाम प्रतिकूल है, अपना स्वरूप सुखका अथवा दुःखका साधन नहीं यद्यपि सुखरूप है तथापि सुखका साधन नहीं. यातें स्वरूपसें भिन्न जोवस्तु जानी है, ताविषे अनुकूलज्ञान और प्रतिकूलज्ञान होवैहै, इसरीतिसे पदार्थनविषे अपनेसें जो भेदज्ञान, सो अनुकूलज्ञान और प्रतिकूलज्ञानका हेतु है. ता भेदज्ञानकी निवृत्तिविना अनुकूलज्ञान प्रतिकूलज्ञानकी निवृत्ति होवै नहीं. सो भेदज्ञान अविद्याजन्य है काहेतें, संपूर्णप्रपंच और ताका ज्ञान स्वरूपके अज्ञानकालमें है, यह संपूर्ण वेद अरु शास्त्रका ढंढ़ोरा है. इसरीतिसे संपूर्णदुःखका हेतु स्वरूपका अज्ञान है, सो स्वरूपका अज्ञान, स्वस्वरूपज्ञानबिना दूरि होवै नही. काहेतें जा वस्तुका अज्ञान होवै, सोताके ज्ञानसेदूरि होवै है, जैसे रज्जुका अज्ञान रज्जुकेज्ञानसेदूरि होवैहै, औरसेनही. यातैंस्वस्वरूपकाज्ञानही अज्ञानकी निवृत्तिद्वारा दुःखकी निवृत्तिकाहेतुहै. और स्वरूप

ज्ञानसे ब्रह्मकी प्राप्ति होवै है. सो ब्रह्म नित्य है और आनंदस्वरूप है, दुःखसंबंधसे रहित है. यातें स्वरूपज्ञानसे नित्य और दुःखके संबंधसे रहित, जो ब्रह्म स्वरूप आनंद ताकी प्राप्ति भी होवै है इसरीतिसे दुःखकी निवृत्ति और परमानंदकी प्राप्तिका हेतु स्वरूपज्ञान है. यातें स्वरूप जाननेकूं योग्य है. ऐसा जाके विवेक होवे सो जिज्ञासु कहिये है, ४ स्थूल सूक्ष्म कारण शरीरतें भिन्न जो अपना स्वरूप, ताका ब्रह्मरूप करिकै अपरोक्षज्ञान जाकूं होवै, सो मुक्त कहिये है.

इसरीतिसे चारिप्रकारके पुरुष हैं तिनविषे १ पामर और २ विषयीकूं तो यद्यपि विषयसुखमेंही अलंबुद्धि है, और किसी विषयीकूं परमसुखकी इच्छाभी होवै, तब भी ताके जो उपाय नहीं हैं तिनमें उपाय बुद्धि करिकै प्रवृत्त होवै है. काहेतें उपायका ज्ञान सत्संग और सच्छास्त्रके श्रवणतें होवै है, सो ताके है नहीं यातें पामर और विषयीकी सुखप्राप्तिकेनिमित्त ग्रंथमें प्रवृत्ति होवै नहीं दुःखकी निवृत्तिके निमित्त भी दोनों अन्यउपायनमें प्रवृत्त होवैं हैं, ताके निमित्त भी ग्रंथमें प्रवृत्ति होवै नहीं यातें विषयी और पामरकी ग्रंथमें प्रवृत्ति होवै नहीं. तथापि जिज्ञासुजो पुरुष है, ताकूं विषयसुखमें अलंबुद्धि होवै नहीं. किंतु परम सुखकी ताकूं इच्छा है, और

दुःखकी अत्यंत करिके निवृत्तिकी इच्छा है, सो परम सुखकी प्राप्ति और दुःखकी अत्यंत निवृत्ति, ज्ञानसे बिना होवैं नहीं. ऐसा जाकूं सत्संगसे विवेक है ताकी ग्रंथमें प्रवृत्ति बनैहै.और ४ मुक्तकी प्रवृत्ति भी होवै नहीं काहेतैं ज्ञानवान् मुक्त कहिये है.सो ज्ञानी कृतकृत्य है ताकूं कुछ कर्तव्य नहीं यह वार्ता आगे प्रतिपादन करैंगे और लीलाकरिके मुक्त प्रवृत्त होवै,तो भी मुक्तकूं ग्रंथमें प्रवृत्तिसे कोई प्रयोजन सिद्ध होवै नहीं यातैं मुक्तके निमित्त भी ग्रंथ नहीं.इसरीतिसे मोक्षकी इच्छावान् अधिकारी बनै है ॥

दोहा ।

साक्षी ब्रह्म स्वरूप इक, नहीं भेदको गंध ।
राग द्वेष मतिके धरम, तामैं मानत अंध ॥ १२ ॥

टीका–पूर्व कह्या जो "जीव रागादिक क्लेशसहित है और ब्रह्म क्लेशरहित है. यातैं जीवब्रह्मकी एकता ग्रंथका विषय बनै नहीं" यह वार्ता यद्यपि सत्य है, तथापि रागद्वेषसैं रहित जो साक्षी है, ताकी ब्रह्मसे एकता बनै है,और जो पूर्व कह्या "कर्त्ताभोक्तासे भिन्न साक्षी वंध्यापुत्रके समान असत् है" सो बनैं नहीं. काहेतैं कर्ता भोक्ता जो संसारी, ताके विशेषभागका नाम साक्षी है.जो साक्षीका निषेध करै,तो संसारीके विशेषभागका

निषेध होनेतैं, कर्ता भोक्ता जो संसारी, ताकाहीनिषेध होवेगा. एकही चेतनके विषे साक्षीभावकी अंतःकरण उपाधि है. और कर्ता भोक्तापनेका विशेषण है.विशेषणसहित विशिष्ट कहिये है.उपाधिवाला उपहित कहिये है. जो वस्तु जितने देशमें आप होवैं, उसदेशमें स्थित वस्तुकूं जनावै, और आप पृथक् रहे,सो उपाधि कहिये है. जैसे नैयायिक मतमें कर्णगोलकवृत्ति आकाश श्रोत्र कहिये है सो कर्णगोलक श्रोत्रकी उपाधि है. काहेतैं सो कर्णगोलक जितने देशमें आपहै उतने देशमें स्थित आकाशकूं श्रोत्ररूप करिके जनावै है, और आप पृथक् रहै है. यातैं कर्णगोलक श्रोत्रकी उपाधि है तैसे अंतःकरणभी जितने देशमें आपहै, उतने देशमें स्थित चेतनकूं साक्षी संज्ञा करिके जनावै है, आप पृथक् रहै है. यातैं अंतःकरण साक्षीकी उपाधि है. यातैं यह अर्थ सिद्ध हुआ—अंतःकरण विषे वृत्ति जो चेतन मात्र सो साक्षी कहिये है.

अपनेसहित वस्तुकूं जो जनावै,सो विशेषण कहिये है जैसे "कुण्डलवालापुरुष आया है" या स्थानमें पुरुषका कुंडल विशेषण है काहेतैं अपनेसहित पुरुषका आगमन कुंडल जनावै है यातैं विशेषण है "नीलरूप-

वान् घटकूं मैं देखूं हूं" या स्थानमेंभी नीलरूप घटका विशेषण है तैसे अंतःकरणभी कर्त्ता भोक्ता जो जीव चेतन, ताका विशेषण है. काहेतें, अंतःकरणसहित चेतनकूं कर्त्ताभोक्तारूपकरिकै अंतःकरण जनावै है. यातैं संसारीका अंतःकरण विशेषण है.यातैं यह सिद्ध हुआ—अंतःकरणविषे वृत्तिचेतन और अंतःकरण, संसारी कहिये हैं. या अर्थकूं विस्तारसे आगे कहैंगे.

रागद्वेषादिक क्लेश संसारीविषे हैं. और साक्षीविषे नहीं.संसारीका भी जो विशेषण अंतःकरण है,ताके विषे है और विशेष्य जो चैतन्य, ताके विषे नहीं. काहेतें संसारविषे विशेष्य जो चैतन्यभाग, ताका साक्षीसे भेद नहीं.काहेतें,एकही चैतन्य अंतःकरणसहित संसारी हैं और अंतःकरणभागत्यागिकै साक्षी कहिये है, यातैं साक्षीका और संसारीके विशेष्यभागका भेद नहीं.जो विशेष्यभागमें क्लेश अंगीकार करै, तब साक्षीमें भी अंगीकारकरने होवैंगे. और "साक्षी सर्वक्लेशरहित है" यह वेदका सिद्धांत है. यातैं संसारीके विशेष्यभागमें क्लेश नहीं किंतु विशेषणमात्र अंतःकरणमें है. इस अभिप्रायतैं दोहेके तृतीयपादमें रागद्वेष बुद्धिके धर्म कहे, और जीवके नहीं कहे, इसरीतिसे अंतःकरणवि-

शिष्टकी ब्रह्मसे एकता नहीं भी बनै, परंतु अंतःकरणं उपहित जो साक्षी ताकी ब्रह्मसे एकता बनै है.

और जो पूर्व कह्या, "साक्षी नाना है, और ब्रह्म एक है यातैं नानासाक्षीकी एकब्रह्मसे एकता बनै नहीं. और जो व्यापक एकब्रह्मतैं साक्षीका अभेद अंगीकार करोगे, तो साक्षीका भी सर्वशरीरमें व्यापक एकही होवैगा.यातैं सर्वशरीरके सुख दुःख भानहुए चाहिये" सो शंका बनै नहीं, काहेतैं, यद्यपि ईश्वरसाक्षी एकहै, और जीवसाक्षी नाना हैं, और परिच्छिन्न हैं, तौभी व्यापक ब्रह्मसेभिन्ननहीं. जैसे घटाकाश नाना हैं, और परिच्छिन्न हैं, तो भी महाकाशसे भिन्न नहीं. किंतु महाकाशरूपही घटाकाश हैं.तैसे नाना जो परिच्छिन्न साक्षी, सो भी ब्रह्मस्वरूपही हैं.

पत्र २६

और जो पूर्व कह्या, "सुखदुःख अंतःकरणकी वृत्तिके विषय नहीं" सो असंगत है काहेतैं, यद्यपि सुखदुःख साक्षी भाष्य है, सो साक्षी नाना है, तथापि जब अंतःकरणका परिणाम सुखरूप वा दुःखरूप होवे,ताही समय अंतःकरणकीज्ञानरूप वृत्तिसुखदुःखकूं विषय करनेवाली होवै है.ता वृत्तिमें आरूढ साक्षी तिनकूं प्रकाशै है इसरीतिसे ग्रंथकारोंने सुखदुःख साक्षीके विषय कहे हैं. वृत्तिविना केवल साक्षीके विषय नहीं या स्थानमें

यह रहस्य है जैसे आकाशमें घटाकाश नाम और जलका आनयनरूप जो कार्य प्रतीत होवै है, सो घटरूप उपाधिकी दृष्टिसे प्रतीत होवै है, घटरूप उपाधिकी दृष्टि विना घटाकाश नाम और जलका आनयनरूप कार्य प्रतीत होवै नहीं. किंतु आकाशमात्रही प्रतीत होवै. याते घटाकाश महाकाशरूप है. तैसे चेतनविषे साक्षी नाम और धर्मसहित अंतःकरणका प्रकाशरूप कार्य, अंतःकरणरूप उपाधिकी दृष्टिसे प्रतीत होवै है. और अंतःकरणरूप उपाधिकी दृष्टिविना साक्षी नाम और धर्मसहितअंतःकरणका प्रकाशरूप कार्य प्रतीतहोवैनहीं. किंतु चैतन्यमात्र ब्रह्मही प्रतीत होवै, यातैं साक्षी ब्रह्मरूप है. या अभिप्रायतैं दोहेके प्रथमपादमें साक्षी एक कह्या. काहेतैं, उपाधिकी दृष्टिविना साक्षीमें नानापना और परिच्छिन्नभाव प्रतीत होवै नहीं. सो साक्षी जीवपदका लक्ष्य है, यह वार्ता आगे कहैंगे. इसरीतिसे जीव ब्रह्मकी एकता ग्रंथका विषय बनै है ॥ १२॥

अथ कार्याध्यासनिरूपणम्—कवित्त।

सजातीयज्ञान संसकारते अध्यास होत,
सत्यज्ञानजन्य संसकारको न नेम है।
दोषको न हेतु ता अध्यासविषे देखियत,
पटविषे हेतु जैसे तुरी तंतु वेम है॥

आतमा द्विजाति शंख पीत सिता कटु भासे,
सीपमें विरागी रूप देख बिनप्रेम है।
नभ नील रूपवान भासत कटाह तंबू,
जिनके न कोउ पित्त प्रभृति अक्षेम है॥१४॥

टीका-पूर्व कह्या जो "बंध सत्य है, ताकी ज्ञानसे निवृत्ति होवै नहीं." और मिथ्यावस्तुकी ज्ञानसे निवृत्ति होवै है, आत्मामें मिथ्याबंधकी सामग्री है नहीं, यातैं बंध सत्य है "ताकी ज्ञानसे निवृत्ति होवै नहीं." सो वार्त्ता बनै नहीं. काहेतैं बंध मिथ्या है, ताकी ज्ञानसे निवृत्ति बनै है.

और पूर्व कह्या जो "सत्यवस्तुका ज्ञान संस्कारद्वारा अध्यासका हेतु है, जैसे सत्यसर्पका ज्ञान संस्कारद्वारा सर्पअध्यासका हेतु है, तैसे सत्यबंध होवै तो सत्यबंध का ज्ञान होवै, सो सिद्धांतमें अनात्मवस्तु कोई सत्य है नहीं. यातैं सत्यवस्तुका ज्ञान जो संस्कारद्वारा अध्यासकी सामग्री, ताका अभाव होनेतैं बंध अध्यास नहीं." किंतु सत्य है सो शंका बनै नहीं. काहेतैं अध्यासविषे संस्कारद्वारा सत्यवस्तुका ज्ञान हेतु नहीं किंतु वस्तुका ज्ञान हेतु है. सो वस्तु सत्य होवै अथवा मिथ्या होवै. जो सत्यवस्तुका ज्ञान ही अध्यास विषे हेतु होवै, तो जा पुरुषने सत्य छुहा-

रेका वृक्ष नहीं देख्या होवै और बाजीगरका बनाया मिथ्या छुहारेका वृक्ष बहुतबार देखा होवै, और बाजीगरसे ऐसा सुन्या होवे, जो "यह छुहारेका वृक्ष है" और खजूरका वृक्ष कभी देखा सुन्याहोवै नहीं, ताकूं खजूरका वृक्ष देखिके छुहारेका अध्यास होवै है, सो नहीं हुवा चाहिये. काहेतैं सत्य छुहारेका ताकूं ज्ञान है नहीं और हमारी रीतिसे तौ बाजीगरका देखा जो मिथ्या छुहारा ताका ज्ञान है, यातैं अध्यास बनै है. यातैं सजातीय वस्तुके ज्ञानजन्य संस्कारही अध्यासके हेतु हैं. सो संस्कारका जनक ज्ञान, और ताका विषय मिथ्या होवै, अथवा सत्य होवै, संस्कारद्वारा ज्ञान हेतु है. और "ज्ञानजन्य संस्कारहेतु हैं." या कहनेमें अर्थका भेद नहीं, एकही अर्थ है काहेतैं संस्कारद्वारा ज्ञान हेतु है. याका अर्थ यह है:—ज्ञान संस्कारका हेतु है और संस्कारअध्यासका हेतु है, यातैं संस्कारद्वारा ज्ञानकूं हेतुता कहनेतैं ही ज्ञानजन्य संस्कारकूंही अध्यासविषे हेतुता सिद्ध होवैहै.

और केवल वस्तुके ज्ञानकूंही अध्यासविषे हेतुकहैं तो बनै नहीं, काहेतैं, यह नियम है:—"जो हेतु होवै सो कार्यसे अव्यवहितपूर्वकालमें होवै है." जैसे घटका हेतु दंड है, सो घटसे अव्यवहितपूर्वकालमें होवै है. ते-

से जो अध्यासका हेतु ज्ञान अंगीकार करें, सो भी अध्यासतैं अव्यवहितपूर्वकालमें चाहिये, सो बनै नहीं. काहेतैं, जा पुरुषकूं सर्पका ज्ञान होवै ताकूं ज्ञानसे महीने पीछेभी रज्जुविषे सर्पका अध्यास होवै है, सो नहीं हुवा चाहिये. काहेतैं जो रज्जुमें, सर्पअध्यासका हेतु सर्पका ज्ञान है. ताका नाश होगया, यातैं अव्यवहित-पूर्वकालमें है नहीं, यद्यपि पूर्वकालमें तो है, तथापि अव्यवहितपूर्वकालमें है नहीं, अंतरायरहितका नाम अव्यवहित है, और अंतरायसहितका नाम व्यवहित है. और जो ऐसे कहैं:–कार्यतैं पूर्वकालमें हेतु चाहिये, व्यवहित पूर्वकालमें होवै. अथवा अव्यवहितपूर्वकालमें होवै और "कार्यतैं अव्यवहितपूर्वकालमेंही हेतु होवै है." ऐसा नियम अंगीकार करै तो "विहितकर्म स्वर्ग-प्राप्तिका हेतु है, और निषिद्धकर्म नरक प्राप्तिका हेतु है" यह शास्त्रकी वार्त्ता अप्रमाण हो जावेगी काहेतैं कायिक, वाचिक, मानसिक क्रियाका नाम कर्म है. सो क्रिया अनुष्ठानकालसे अनंतरही नाश हो जावै है. और स्वर्ग नरक कालांतरमें होवैं हैं. यातैं स्वर्ग नरकप्राप्तिके अव्यवहितपूर्वकालमें विहित कर्म और निषिद्ध कर्म हैं नहीं जैसे व्यवहितपूर्वकालके शुभकर्म, और अशुभकर्म, स्वर्गप्राप्ति और नरकप्राप्तिके हेतु हैं.

तैसे "व्यवहितपूर्वकालमें जो सर्पका ज्ञान; सो भी रज्जुमें सर्पअध्यासका हेतु है," सो वार्त्ता बनै नहीं. काहेतें, जैसे नष्ट, ज्ञान और नष्टकर्मतें अध्यास और स्वर्गनरककी प्राप्ति अंगीकार करी; तैसे मृत कुलाल और नष्टदंडसेभी घट हुआ चाहिये. काहेतें जैसे रज्जुमें सर्पअध्यासते व्यवहितपूर्वकालमें सर्पका ज्ञानहै. स्वर्गनरककी प्राप्तितें व्यवहितपूर्वकालमें शुभअशुभकर्म हैं; तैसे घटतें व्यवहितपूर्व कालमें नष्टदंड और मृत कुलालभी हैं, तिनतैंभी घट हुवा चाहिये. सो होवे नहीं यातें व्यवहितपूर्वकालमें जो वस्तु होवे सो हेतु नहीं किंतु अव्यवहित पूर्वकालमें जो वस्तु होवै, सोइ हेतु होवे है. और शुभअशुभकर्म भी कालांतरभावी जो स्वर्गनरककी प्राप्ति. ताके हेतु नहीं किंतु शुभकर्म तो अपनेतें अव्यवहितउत्तरकालमें धर्मकी उत्पत्ति करै है. अशुभकर्म अधर्मकी उत्पत्ति करै है. सो धर्म अधर्म अंतःकरणविषे रहैं हैं, तिनतें कालांतरमें स्वर्ग और नरककी प्राप्ति होवै है. तासे अनंतर धर्म अधर्मका नाश होवै है, इस अभिप्रायसेही शास्त्रमें शुभकर्म और अशुभकर्म अपूर्वद्वारा फलके हेतु कहे हैं, साक्षात् नहीं अपूर्व नाम धर्म अधर्मका है, और अदृष्ट भी तिनकूं कहैं हैं, और पुण्यपापभी तिनकंही कहैं. और

कहूं धर्म अधर्मकी जनक जो शुभअशुभक्रिया है, ताकूंभी धर्म अधर्म कहैं हैं, जैसे कोई शुभ क्रिया करता होवै. ताकूं लोक ऐसा कहैंहैं "यह धर्म करै है" और अशुभक्रिया करनेवालेकूं ऐसा कहै है यह "अधर्म करै है" सो शुभअशुभ क्रियाका नाम धर्म अधर्म नहीं किंतु शुभअशुभक्रिया धर्म अधर्मकी जनक है. यातैं क्रियाकूं धर्म अधर्म कहैं हैं, जैसे आयुका वर्धक जो घृत है; ताकूं शास्त्रमें आयु कहे हैं. इस रीतिसे अव्यवहित-पूर्वकालमें हेतु होवै है.

और रज्जुमें सर्पअध्यासतैं अव्यवहितपूर्वकालमें सर्पका ज्ञान है नहीं। यातैं सर्पकाज्ञान रज्जुमें सर्पअध्यासका हेतु नहीं, किंतु सर्पज्ञानजन्य संस्कारही रज्जुमें सर्पअध्यासका हेतुहै, तैसे सीपीमें रूपा अध्यासके हेतु रूपाज्ञानजन्य संस्कार है. इसीरीतिसे सारे संस्कारही अध्यासके हेतु हैं और वस्तुका ज्ञान संस्कारका हेतुहै. जैसे शुभअशुभकर्मजन्य धर्म अधर्म अंतःकरणमें रहैंहैं, तैसे वस्तुके ज्ञानजन्य संस्कारभी अंतःकरणमें रहैं हैं जापुरुषकूं पूर्वसर्पकाज्ञान नहीं हुवा ताकेभी और वस्तुके ज्ञानजन्य संस्कार तो हैं; परंतुरज्जुमें सर्पका अध्यास होवै नहीं. जा वस्तुका अध्यास होवै; ताके सजातीयवस्तुके ज्ञानका संस्कार अध्यासका हेतु है,

विजातीयके ज्ञानके संस्कार हेतु नहीं सर्पके सजातीय सर्प होवैं है और नहीं. सर्पका जाकूं पूर्व ज्ञान नहीं, अन्यवस्तुका ज्ञान है, ताकूं सजातीय वस्तुके ज्ञानजन्य संस्कार नहीं, यातैं रज्जुमें सर्पका अध्यास होवै नहीं, सूक्ष्म अवस्थाका नाम संस्कार है इसरीतिसेअध्यासतैं पूर्व जो सजातीय वस्तुका ज्ञान ताके संस्कार अध्यासके हेतु हैं " और सत्यवस्तुके ज्ञानके संस्कारही अध्यासके हेतु हैं;मिथ्यावस्तुके ज्ञानके नहीं" यह नियम नहीं. यह वार्त्ता छुहारेके दृष्टांतसे प्रतिपादन करी है, यातैं मिथ्या वस्तुके ज्ञानजन्य संस्कारभी अध्यासके हेतुहैं.

सो बंधके अध्यासविषे भी बनै है.काहेतैं, जो अहंकारसे आदिलेके अनात्म वस्तु, और ताका ज्ञान बंध कहिये है. "सो अनात्मवस्तु, रज्जुके सर्पकी न्याईं जब प्रतीत होवै तबही है, और प्रतीत नहीं होवै तब नहीं" यह हमारा वेदसंमत सिद्धांत है. इस कारणतेही सुषुप्तिविषे सर्वप्रपंचका अभाव प्रतिपादन किया है. सुषुप्तिमें कोई पदार्थ प्रतीत होवै नहीं. यातैं सर्वप्रपंचका सुषुप्तिमें लय होवै है.इसका नाम शास्त्रमेंदृष्टिसृष्टिवाद कहैं हैं. या अर्थकूं आगे प्रतिपादन करैंगे. इस रीतिसे अनंत अहंकारादिक और तिनके ज्ञान उत्पन्न होवैं हैं

और लय होवैं हैं. अहंकारादिक और तिनके ज्ञानकी साथही उत्पत्ति लय होवैं हैं. जब अहंकारादिकोंकी प्रतीतिकी उत्पत्ति होवैहै; तब अहंकारादिकोंकी उत्पत्ति होवै है. और प्रतीतिका लय होवै तब अहंकारादिकन-का लय होवै है.अहंकारादिक और तिनके ज्ञानका नाम अध्यास है.यह वार्त्ता अनिर्वचनीयख्यातिके प्रतिपादनमें कहैंगे, यद्यपि अहंकार साक्षीभास्य है, यह वार्त्ता विषयप्रतिपादनमें कही है, यातें अहंकारकी प्रतीति साक्षीरूप है, ताकी उत्पत्ति और लय बनै नहीं तथापि अहंकारका भी वृत्तिसेही साक्षी प्रकाश करै है; साक्षात् नहीं ता वृत्तिकी उत्पत्ति लय होवै है.यातें अहंकारकी प्रतीति को उत्पत्ति लय कहिये है इस रीतिसे उत्तर उत्तर अहंकारादिक और तिनके ज्ञानकी जो उत्पत्ति, ताके हेतु पूर्व पूर्व मिथ्या अहंकारादिकोंके ज्ञानजन्य संस्कार बनैं हैं.

और जो ऐसे कहैं-उत्तर उत्तरअहंकारादिकोंकेअध्यास विषे तो यद्यपि पूर्व पूर्व अध्यासके संस्कार हेतु बनैं हैं तथापि प्रथम उत्पन्न जो अहंकार, और ताका ज्ञान. ताके हेतु संस्कार बनैं नहीं काहेतें जो ताके पूर्व और अहंकार उत्पन्न हुआहोवै तो ताके ज्ञानके संस्कारभी होवैं सो प्रथम अहंकारसे पूर्व और अहंकार हुवा

नहीं. तैसे " सर्ववस्तुके प्रथम अध्यासके हेतु संकार बनैं नहीं " यह शंकाभी सिद्धांतके अज्ञानसे होवै है, काहेतैं यह वेदांतका सिद्धांत है:-एक ब्रह्म, और ईश्वर, जीव, अविद्या और अविद्याका चेतन्यसे संबंध, और अनादिवस्तुका भेद, यह षट्वस्तु-स्वरूपसे अनादि हैं जा वस्तुकी उत्पत्ति होवै नहीं, सो-वस्तुस्वरूपसे अनादि कहिये है; इनषट्की उत्पत्ति होवै नहींयातें स्वरूपसे अनादिहैं और अहंकारादिकनकी तो श्रुतिमें उत्पत्ति कही है; यातैं स्वरूपसे अनादि यद्यपि अहंकारादि नहीं, तथापि प्रवाहरूपतैं सर्ववस्तु अनादि हैं, सर्ववस्तुका प्रवाह दूर होवै नहीं. अनादि कालमें ऐसा समय कोई पूर्व हुआनहीं जा समय कोई घट होवै नहीं. यातैं घटका प्रवाह अनादि है इसरीतिसे सर्ववस्तुका प्रवाह अनादि है. प्रलयकालमें भी सुषुप्ति की न्याईं सर्व वस्तु संस्काररूप होयके रहै है. यातैं प्रपंचका प्रवाह अनादि होनेते प्रपंच अनादि कहिये है. ऐसाजाकूं ज्ञान नहीं है, ताकूं यह शंका होवै है, "जो प्रथम अध्यासके हेतु संस्कार बनैं नहीं." और सिद्धांतमें किसी अहंकारादिक वस्तुका अध्यास सर्व-से प्रथम है नहीं, किंतु अपनेसे पूर्व पूर्व अध्यासते संपूर्ण उत्तर हैं; याते शंका बनै नहीं. इसरीतिसे सजा-

तीयके पूर्वज्ञानजन्य संस्कारसे अहंकारादिक बंधका अध्यास बनैहै, यह प्रथमपादका अर्थ है.

(प्रमेय दोषका खंडन)

और जो पूर्व कह्या "तीन प्रकारका दोष अध्यासका हेतु है और बंधके अध्यासमें कोई भी दोष बनै नहीं. याते बंध सत्य है," सो शंका बनै नहीं. काहेतैं, जो दोषतै विना अध्यास होवै नहीं, तो अध्यासका हेतु दोष होवै, जैसे तुरी तंतु वेम पटके हेतु हैं. तुरी तंतु वेम होवैं तो पट होवै, और नहीं होवैं तो पट होवै नहीं. तैसे दोष अध्यासके हेतु नहीं काहेतैं, सादृश्य-दोषविना आत्मामें जातिका अध्यास होवै है. ब्राह्मणत्वसे आदिलेके जो जाति है सो स्थूलशरीरका धर्म है, आत्माका और सूक्ष्मशरीरका धर्म नहीं. काहेते, और शरीरकूं प्राप्त होवै, तब आत्मा और सूक्ष्मशरीर तो जो पूर्व शरीरमें है सोई रहै है और जाति और भी होवै है यह नियम नहीं- "जो पूर्व शरीरमें जातिहै, सोई उत्तरशरीरमें होवै है." आत्माका अथवा सूक्ष्मशरीरका धर्म जाति होवे तो उत्तरशरीरविषे और जाति नहीं हुई चाहिये. यावैं आत्माका और सूक्ष्मशरीरका धर्म जाति नहीं, किंतु स्थूलशरीरका धर्म है. और "मैं द्विजाति हूं" इसरीतिसे ब्राह्मणत्व, क्षत्रियत्व, वैश्यत्व जातिका

आत्मामें भान होवेहै, याते आत्मामें जातिका अध्यास है जैसे रज्जुमें सर्प परमार्थसे नहीं है, और भान होवै है ,यातें रज्जुमें सर्पका अध्यास है. तैसे आत्मामें जाति नहीं है,और भान होवे है, याते आत्मामें जातिका अध्यास है और आत्माके साथ जातिका सादृश्य नहीं है काहेतें आत्मा व्यापक है.और जाति परिच्छिन्न है, आत्मा प्रत्यक् है, और जाति पराक् है. आत्मा विषयी है, और जाति विषय है इसरीतिसे आत्मामें विरोधी जातिकाभी अध्यास होवै है. द्विजाति नाम त्रिवर्णका है. जेसे आत्माविषे सादृश्यते विना जातिका अध्यास होवै है,तैसे सादृश्यविना अहंकारादिक बंधका अध्यास भी आत्मामें बनै है. सादृश्यदोष अध्यासका हेतु नहीं जो सादृश्यदोष अध्यासका हेतु होवे,तो आत्मामें जातिका अध्यास नहीं हुवा चाहिये,और शंखमें पीत कटुताका अध्यास नहीं हुवा चाहिये काहेतें श्वेत और ताका अध्यास नहीं हुवा चाहिये, और शंखमें पीतताका अध्यास नहीं हुवा चाहिये, और मिश्रीमें पीतका विरोध है, सादृश्य नहीं. तैसे मधुर औरकटुका विरोध है, सादृश्य नहीं. यातें अधिष्ठानमें मिथ्यावस्तु-का सादृश्यदोष अध्यासका हेतु नहीं.

तैसे प्रमाताका,लोभ भयादिक दोष भी अध्यासका हेतु नहीं काहेतें जो लोभरहित वैराग्यवान पुरुष हैं ताकूं भी सीपीमें रूपेका अध्यास होवै है; सो नहीं हुआ चाहिये याते प्रमाताका दोष भी अध्यासका हेतु नहीं और प्रमाणका दोष भी अध्यासका हेतु नहीं. काहेते, सर्वपुरुषनकूं रूपरहित जो आकाश है सो नीलरूपवाला प्रतीत होवै है और कटाहके तथा तंबूके आकार प्रतीत होवैं हैं, याते सर्वकूं आकाशमें नीलरूपका कटाहका, तथा तंबूका अध्यास है और सबके नेत्ररूपप्रमाणमें दोष कहना बनै नहीं याते प्रमाणका दोष अध्यासका हेतु नहीं, आकाशमें नीलादिकोंका जो अध्यास है, ताके विषे एक प्रमाण दोषकाही अभाव नहीं है, किंतु सर्व दोषोंका अभाव है सादृश्यभी नहीं, और प्रमाताका दोष भी नहीं,जैसे सर्वदोषके अभावमें भी आकाशमें नीलादिकनका अध्यास होवै है, तैसे आत्माविषे भी बंधका अध्यास दोषविनाही बनैं है यातें "दोषके अभावतैं बंध अध्यासरूप नहीं" यह शंका बनै नहीं,काहेतैं सर्व दोषका अभाव भी है,तौभी आकाशमें नीलादिकनका अध्यास सर्वपुरुषनकूं होवै है.यातैं दोष अध्यासका हेतु नहीं कवित्तके चतुर्थपादका यह अर्थ है जि-

नके कोई पित्तप्रभृति कहिये पित्तसे आदिलेके, अक्षेम कहिये;दोष नहीं हैं तिनको भी आकाश नीलरूपवान्, कटाहाकार और तंबूके आकार भासै है यातें प्रमाणदोष अध्यासका हेतु नहीं क्षेम नाम कुशलका है ताका विरोधी जो प्रमाणदोष सो अक्षेम कहिये है, ज्ञानका साधन जो इंद्रिय सो प्रमाण कहिये हैं इस रीतिसे दोष अध्यासके हेतु नहीं याते बंधके अध्यासमें दोषकी अपेक्षा नहीं और संक्षेपशारीरकमें बंधके अध्यास समय दोष भी प्रतिपादन किये हैं विस्तारके भयसे हमने नहीं लिखे. और अध्यासके जो हेतु जो दोष होवें, तौ दोष निरूपण करते सो दोष अध्यासके हेतु नहीं हैं, यातें भी दोषका निरूपण नहीं किया ॥ १३ ॥

अथ कारणाध्यासनिरूपण-दोहा।

चित् सामान्य प्रकाशते, नहीं नशे अज्ञान ॥
लहै प्रकाश सुषुप्तिमें, चेतनते अज्ञान ॥ १४ ॥

टीका-पूर्व कह्या जो "विशेषरूपसे अज्ञातवस्तुमें अध्यास होवै है. और आत्मा स्वयंप्रकाश है, ताके विषे अज्ञान बनै नहीं काहेतें, तमका और प्रकाशका परस्पर विरोध है. यातें जैसे अत्यंतप्रकाशमे स्थित रज्जुमें सर्पका अध्यास होवै नहीं, तैसे स्वयंप्रकाश, आ-

त्मामें बंधका अध्यास बने नहीं." सो शंका भी बनै नहीं काहेतैं, यद्यपि आत्मा प्रकाशरूप है; तथापि आत्माका स्वरूपप्रकाश अज्ञानका विरोधी नहीं, जोआत्मस्वरूपप्रकाश अज्ञानका विरोधी होवे तौ सुषुप्तिमें प्रकाशरूप आत्माविषे अज्ञान प्रतीत होवै है, सो नहीं हुआ चाहिये. घोर निद्रासे जाग्या जो पुरुष है, ताकूं ऐसा ज्ञान होवै है–"मैं सुखसे सोया और कछु भी नहीं जानता हुआ." या ज्ञानका सुख और अज्ञान विषय है. सो सुख और अज्ञानका जो जाग्रत्में ज्ञान है, सो प्रत्यक्षरूप नहीं. काहेतैं, जा ज्ञानका विषय सन्मुख होवै, सो ज्ञान प्रत्यक्षरूप होवै है. और जाग्रत्कालमें सुख और अज्ञान है नहीं. यातैं जाग्रत्में सुख और अज्ञानका ज्ञान प्रत्यक्षरूप नहीं; किंतु स्मृतिरूप है. सो स्मृति अज्ञातवस्तुकी होवै नहीं किंतु ज्ञातवस्तुकी होवै है यातैं सुषुप्तिमें सुख और अज्ञानका ज्ञान है, सो सुषुप्तिका ज्ञान अंतःकरण और इंद्रियजन्य तो है नहीं काहेतैं, सुषुप्तिमें अंतःकरण और इंद्रियका अभाव है, यातैं सुषुप्तिमें आत्मस्वरूपही ज्ञान है, ज्ञान और प्रकाशका एकही अर्थ है, इसरीतिसे सुषुप्तिमें आत्मा प्रकाशरूप है. ता प्रकाशरूप आत्मासैं स्वरूपसुख और अज्ञानकी प्रतीति होवै है. जो आत्मस्वरूपप्रकाश

अज्ञानका विरोधी होवै,तो सुषुप्तिमें अज्ञानकी प्रतीति नहीं हुई चाहिये यातें आत्मा प्रकाशरूप तो है, परंतु आत्माका स्वरूप प्रकाश अज्ञानका विरोधी नहीं.उलटाआत्माका स्वरूप प्रकाश,अज्ञान,अज्ञानका साधक है इस अभिप्रायतेही वेदांतशास्त्रमें कह्या है:-"सामान्य चैतन्य अज्ञानका विरोधी नहीं,"किंतु विशेषचैतन्य ही अज्ञानका विरोधी है. व्यापक जो चैतन्य है, सो सामान्य चैतन्य कहिये है.और वृत्तिमें स्थित जो चैतन्य, सो विशेषचैतन्य,कहिये है.जैसे काष्ठमें स्थित जो सामान्य अग्नि है, सो अंधकारका विरोधी नहीं, औंर:मथनसे प्रगट किया जो अग्नि है,सो बत्तीमें स्थितहोयके अंधकारका विरोधी है, तैसे व्यापकचैतन्य अज्ञानका विरोधी नहीं भी है परंतु वेदांतके विचारसे अंतःकरणकी जो ब्रह्माकार वृत्ति हुईहै, ताकेविषे स्थित चैतन्य अज्ञानका विरोधी है. इसरीतिसे केवल चैतन्य अज्ञानका विरोधी नहीं किंतु वृत्तिसहित चैतन्य अज्ञानका विरोधी है. अथवा चैतन्यसहित वृत्ति अज्ञानकी विरोधी है.

प्रथमपक्षमें तो अज्ञानके नाशका हेतु चैतन्य है; और वृत्ति सहायकहै. दूसरे पक्षमें अज्ञानके नाशकाहेतु वृत्ति है; और चैतन्य सहायक है. यह अवच्छेदवादकी

रीति है. और आभासवादमें तो सामान्यचैतन्यकी न्याई विशेषचैतन्य भी अज्ञानका विरोधी नहीं किंतु वृत्तिसहित आभास अथवा आभाससहित वृत्ति अज्ञानका विरोधीहैइसरीतिसेप्रकाशरूप चैतन्यअज्ञानकाविरोधी नहीं यातैं चैतन्यके आश्रित अज्ञान है, ता अज्ञानसे आवृत जो आत्मा, ताके विषे बंधका अध्यास बनै है.

और पूर्व कह्या जो "सामान्य रूपतैं ज्ञात, और विशेषरूपतैं अज्ञात वस्तुमें अध्यास होवै है औरआत्मामें सामान्य विशेष भाव है नहीं. यातैं निर्विशेष आत्मा ज्ञात और अज्ञात बनै नहीं" ताकेविषे अध्यासका असंभव है. सो वार्त्ता भी बनै नहीं. काहेतैं, "आत्माहै" यह सर्वकूं प्रतीति होवै है.आत्मा नाम अपने स्वरूपका है. "मैं नहीं हूं" यह किसीकूं प्रतीति होवै नहीं किंतु "मैं हूं", यह प्रतीति सर्वकूं होवै है. यातैं सत्‌रूप करिके आत्मा सर्वकूं भान होवै और चैतन्य आनंदव्यापक नित्यशुद्ध नित्यमुक्तिरूप आत्मा है." यह सर्वकूं प्रतीति होवै नहीं यातैं चैतन्य आनंद व्यापक नित्यशुद्ध नित्यमुक्त रूपते आतमा अज्ञात है, और सत्‌रूप करिके ज्ञात है, यह वार्त्ता अनुभवसिद्ध है.सो अनुभवसिद्धवार्त्ता युक्तिसे दूरि होवै नहीं सर्वकूंप्रतीत

जो होवै है आत्माका सत्‌रूप, सोतौ सामान्यरूप है. और केवल ज्ञानीकूं जो प्रतीत होवै चेतन आनंदादिक, सो विशेषरूप है. जो अधिककालमें अधिकदेशमें होवै सो सामान्यरूप कहिये है. और न्यूनदेशमें न्यूनकालमें होवै, सो विशेषरूप कहिये है यद्यपि आत्माका स्वरूपही चेतन आनंदादिक है यातें सबकी न्याईं चेतन आनंदादिक सर्वत्र व्यापक है. सत्‌की अपेक्षातें चेतन आनंदादिकोंकूं, न्यूनदेशमें और चेतन आनंदादिकनकी अपेक्षातें सत्‌रूपकूं अधिकदेशमें कहना बनै नहीं. यातें सत्‌रूप आत्माका सामान्यअंश है; और चेतन आनंदादिकविशेषअंशहैं, यह कहना भी बनै नहीं. तथापि सत्‌की प्रतीति सर्वकूं अविद्याकालमेंभी होवैहै और "चेतन आनन्दरूप आत्माहै" यह प्रतीति सर्वकूं अविद्या कालमें होवै नहीं केवल ज्ञानीकूंही होवै है. अविद्याकालमें चेतन, आनंद, मुक्तता शुद्धता भी है परंतु प्रतीति होवै नहीं यातें अनहुयेके समान है. इस अभिप्रायतें चैतन्य आनंदादिक न्यूनकालवृत्ति कहिये है. और सत्‌रूप अधिककालवृत्ति कहिये है इसरीतिसे सत्‌रूपका और चेतन आनंदादिकोंका सामान्यविशेष भाव नहीं भी है, परंतु अल्पकाल और अधिककालमें प्रतीति होनेतें सामान्य विशेषभाव

की न्याईं है. या कारणतैं आत्माका सत्रूप सामान्य अंश कहियेहै और चेतन आनंदादिक विशेषअंश कहिये है.

और आत्मा निर्विशेष है, या सिद्धांतकी भी हानि नहीं जो आत्मामें सामान्यविशेषभाव अंगीकार करैं, तौ "निर्विशेष आत्मा है" या सिद्धांतकी हानि होवै सो सामान्य विशेष भाव अंगीकार किया नहीं किंतु अविद्यासे सामान्य विशेषकी न्याईं प्रतीति होवै है, यातैं सामान्य विशेषभाव कहे हैं. इस रीतिसे सत्यरूपकरिकै ज्ञात, और चेतन, आनंद, नित्यशुद्ध, नित्यमुक्त, ब्रह्मरूप करिकै अज्ञात, आत्मा विषे बंधका अध्यास बनै है, अध्यासरूप बंधकीज्ञानसे निवृत्ति भी बनै है, यातैं ग्रंथका प्रयोजन संभवै है।

और पूर्व कह्या जो "निषिद्धकाम्यकर्मका त्यागकरिकेनित्यनैमित्तिकप्रायश्चित्तकर्मकरै यातैंनिषिद्धकर्मके अभावतैं नीचलोककूं प्राप्त होवै नहीं, और काम्यकर्मके अभावतैं उत्तमलोककूं प्राप्त होवै नहीं, और नित्यनैमित्तिककर्मके नहीं करनेतैं जो पाप होवै सो तिनके करनेतैं होवै नहीं. और इस जन्मविषे अथवा अन्यजन्मविषे; पूर्व करे जो पापहैं, तिनका साधारण और असाधारण प्रायश्चित्तसे नाश होवै है, और पूर्व

करे जो काम्यकर्म हैं तिनके फलकी इच्छाके अभावतैं मुमुक्षुकूं तिनका फल होवै नहीं यातैं मुमुक्षुकूं ज्ञानसे विनाही जन्मका अभावरूप मोक्ष होवै है." सो बनैं नहींकाहेतैं नित्यनैमित्तिक कर्मकाभी स्वर्गरूप फल है, यह वार्त्ता भाष्यकारने युक्ति और प्रमाणसे प्रतिपादन करी है यातैं नित्यनैमित्तिककर्मसे उत्तमलोककूं प्राप्त होवैगा, जन्मका अभाव बनै नहीं औरनित्यनैमित्तिक-कर्मका जो फल अंगीकार नहीं करैं तो नित्यनैमित्ति-ककर्मका बोधक जो वेद हैसो निष्फल होवैगा काहेतैं जो नित्यनैमित्तिककर्मके नहीं करनेतैं पाप होवै, तो ता पापकी अनुत्पत्ति तिनका फल बनै सो नित्य नैमित्तिककर्मके नहीं करनेतैं पाप होवै नहीं काहेतैं जो नित्यनैमित्तिक कर्मका नहींकरना सो अभावरूप है, और पाप भावरूप है, अभावसे भावकी उत्पत्ति होवै नहीं यातैं नित्यनैमित्तिककर्मके नहीं करनेतैं पाप होवै है, यह कहना बनै नहीं. जो नित्यनै-मित्तिककर्मके नहीं करनेसे पापकी उत्पत्ति अंगीकार करै, तौ "अभावतैं भावकी उत्पत्ति होवै नहीं" यह दूसरे अध्यायमें भगवान्‌ने कह्या है, तासे विरोध होवैगा. यातैं नित्यनैमित्तिककर्मके अभावतैं भावरूप पापकी उत्पत्ति बनै नहीं इसरीतिसे नित्य-

नैमित्तिककर्मका पापकी अनुत्पत्ति फल नहीं, किंतु नित्यनैमित्तिककर्मसे विना भी पापकी अनुत्पत्ति सिद्ध है यातैं नित्यनैमित्तिककर्मका जो स्वर्गरूप फल अंगीकार नहीं करैं, तौ कर्म निष्फल होवैंगे और निष्फल जो नित्य नैमित्तिककर्म हैं, तिनका बोधक वेद भी निष्फल होवैगा यातैं नित्यनैमित्तिक कर्मसे भी स्वर्गफल होवै है ।

और पूर्व कह्या जो "जन्मांतरके जो काम्यकर्म हैं तिनका इच्छाके अभावतैं फल होवै नहीं सो वार्त्ता भी बनै नहीं काहेतैं कर्मरूपी बीजसे दो अंकुर उत्पन्न होवै हैं, एक तौ वासना, और दूसरा अदृष्ट, धर्म अधर्मका नाम अदृष्ट है, शुभकर्मसे तौ शुभवासना और धर्मरूप अंकुर होवै है, और अशुभकर्मसे अशुभवासना और अधर्मरूप अंकुर होवै है, शुभवासनासे तौ आगे शुभकर्ममें प्रवृत्ति होवै है, और धर्मसे सुखका भोग होवै है, इसरीतिसे अशुभवासनासे अशुभकर्ममें प्रवृत्ति होवै है, और अधर्मसे दुःखका भोग होवैहै, इसरीतिसे वासनारूप और अदृष्टरूप अंकुर कर्मरूपी बीजसे होवै है; तिनविषे " वासनारूप अंकुरका तौ उपायसे नाश होवै है;और अदृष्टरूप अंकुरका फलकी उत्पत्तिसे विना किसीप्रकारसे भी नाश होवै

नहीं, " यह शास्त्रका निर्णय है;अशुभकर्मसे उत्पन्न हुवा जो शुभअभवासनारूप अंकुर है ताका तौ सत्यसंग आदिक उपायनतें नाश होवै है; और शुभकर्मसे उत्पन्न जो हुई शुभवासना,ताका कुसंग आदिकोंतें नाश होवै है. शास्त्रमें जितना पुरुषार्थ कह्या है, तासे प्रवृत्ति की हेतु जो वासना ताका ही नाश होवै है.यातें पुरुषार्थ भी सफल है. और भोगका हेतु जो अदृष्ट ताका नाश होवैनहीं"यातें" फल दिये विना कर्मकी निवृत्ति होवै नहीं" यह वार्ता जो शास्त्रमें कहीहै,तासे भी विरोध नहीं, इस रीतिसे अज्ञानीकूं फल भोगविना कर्मकी निवृत्ति बनै नहीं और ज्ञानीकूं तौ भोगसे विना भी कर्मकी निवृत्ति बनै है. काहेतें,कर्म और कर्त्ता तथा फल परमार्थसे तौ हैं नहीं किंतु अविद्यासे कल्पितहैं, ता अविद्याका ज्ञान विरोधी है यातें अविद्याकल्पित जो कर्मादिक हैं,तिनका भी ज्ञानसे नाश होवै है,जैसे स्वप्नविषे निद्रासे जो पदार्थ प्रतीत होवै हैं तिनका जाग्रत् विषे निद्राकी निवृत्तिसे अभाव होवै है, तैसे अविद्यारूप निद्रासे प्रतीत जो होवै है कर्म, कर्ता, फल तिनका भी ज्ञानदशारूप जाग्रत् विषे अविद्याकी निवृत्तिसे अभाव होवै है,और ज्ञान विना अभाव होवै नहीं और इच्छाके अभावतें जो कर्मका फलभोग होवै

नहीं, तौ ईश्वरका संकल्प मिथ्या होवैगा. काहेतें, "फल भोगेविना अज्ञानीके कर्मकीनिवृत्ति होवै नहीं" यह ईश्वरका संक है जो इच्छाके अभावतें करे कर्मका फल होवै नहीं, तौ ईश्वरका संकल्प मिथ्या ही होवैगा; और "सत्यसंकल्प ईश्वर है," यह वार्ता शास्त्रमें प्रसिद्ध है यातें "इच्छाके अभावतें पूर्व करे काम्यकर्मका फल होवै नहीं" यह वार्ता विरुद्ध है, जो इच्छाके अभावतें ही काम्यकर्मफल नहीं होवै, तौ अशुभकर्मका फल किसीकूं भी नहीं हुवा चाहिये; काहेतें अशुभकर्मका फल दुःख है; ताकी किसीकूं भी इच्छा है नहीं. यातें ज्ञानविना कर्मके फलका अभाव होवै नहीं.

और जो पूर्व कह्या, " जैसे कर्मके अनुष्ठानकालमें जो इच्छारहित पुरुष है, ताकूं कर्मका फल वेदांतमतमें अंगीकार नहीं करया, तैसे कर्मके अनुष्ठानसे अनंत भी जो पुरुषकी इच्छा दूरि होय जावे, तो कर्मका फल होवै नहीं." सो वार्ता भी वेदांतमतकूं नहीं जानिके कही है. काहेतें, फलकी इच्छा सहित जो कर्म करै अथवा फलकी इच्छारहित जो कर्म करै है, ताकूं कर्मका फल भोग तौ निश्चय होवै है. परंतु इच्छारहितकर्मसे अंतःकरण शुद्ध होवै है, और इच्छासहित जो कर्म करै है. ताकूं केवल भोग तो होवै है, परंतु अंतःकरण शुद्ध

होवैनहीं. जो इच्छारहित कर्म करनेतै शुद्ध अंतःकरण होयकै श्रवणतैं ज्ञान होय जावै, ताकूं तौ कर्मका फल होवै नहीं. और" जाने कर्म तो फलकी इच्छारहित किये हैं, परंतु श्रवणके अभावतैं अथवा किसी अन्यनिमित्ततैं ज्ञान होवै नहीं. ताकूं तो इच्छारहित कर्मके फलका भोग दूरि होवै नहीं" यह वेदांतका सिद्धांत है.यातै ज्ञानसे विना कर्मका फलभोग दूरि होवै नहीं.

और पूर्व कह्या जो "प्रायश्चित्तसे संपूर्णअशुभ कर्मोंका नाश होवै है" सो वार्त्ता भी बनै नहीं, काहेतैं अनंत कल्पके जो अशुभ कर्म हैं तिनका एकजन्मविषे प्रायश्चित्त बनै नहीं और गंगास्नान और ईश्वरका नाम उच्चारणसे आदिलेके सर्वपापके नाशक जो साधारण प्रायश्चित्त कहे हैं सो भी ज्ञानकेही साधन हैं, यातैं सर्वपापके नाशक कहे हैं यातैं ज्ञानसेही सर्व पापका नाश होवै है.

और पूर्व कह्या जो "नित्यनैमित्तककर्म करनेतैं जो क्लेश होवै है,सो पूर्वसंचित निषिद्धकर्मका फल है यातैं संचित निषिद्धकर्मका फल औरहोवै नहीं" सो वार्त्ता भी बनै नहीं काहेतैं अनंत प्रकारके संचित निषिद्ध जो कर्म हैं,तिनका फलभीअनंत प्रकारकादुःख है, केवल कर्मके अनुष्ठानका क्लेशही तिनका फल

बनै नहीं। और पूर्व कह्या जो "संपूर्ण संचित काम्यकर्मतैं एकही शरीर होवैहै." सो वार्त्ता भी बनै नहीं. काहेतैं संचित काम्यकर्म अनंत हैं तिनका एकजन्मविषे भोग बनै नहीं और एक पुरुषकूं एककालमें नाना शरीरसे जो भोग कह्या सो भी सिद्धयोगीविना और कूं बनै नहीं और "सिद्धयोगीकूं भी और तौ संपूर्ण सामर्थ्य होवै है; परंतु ज्ञान विना मोक्ष तौ होवै नहीं." यह वेदका सिद्धांत है; इसरीतिसे काम्यकर्म और निषिद्धकर्मकूं त्यागिके जो केवल नित्यनैमित्तिककर्म अज्ञानी करे, ताकूं नित्यनैमित्तिक कर्मका फल भोगनेके वास्ते, और पूर्व जो शुभ अशुभ कर्म करे है तिनका फल भोगने वास्ते, अनंतशरीर होवैंगे मोक्ष होवै नहीं यातैं ज्ञानद्वारा बंधकी निवृत्ति ग्रंथका प्रयोजन बनै है. जैसे स्वप्नविषे जो मिथ्या पदार्थ प्रतीत होवै हैं, तिनकी जाग्रत् विना निवृत्ति होवै नहीं. तैसे बंध भी मिथ्या प्रतीत होवै है. ताकी भी ज्ञानरूप जाग्रत्विना निवृत्ति होवै नहीं.

इसरीतिसे ग्रंथके अधिकारी विषय प्रयोजन संभवैं हैं और अधिकारी आदिकोंके संभवतैं संबंधभी संभवै है, यातैं ग्रंथका आरंभ बनै है.

दोहा।

दादूदीनदयाल जू, सत सुख परमप्रकास ॥
जामैं मतिकी गति नहीं, सोई निश्चलदास ॥१९॥

इति अनुबंधविशेषनिरूपणं नाम द्वितीय स्तरंगः॥२॥



अथ श्रीगुरुशिष्य लक्षण.

अथ तृतीयस्तरङ्गः ३.



गुरुभक्तिफलप्रकारनिरूपणम्-दोहा।

पेख च्यारि अनुबंधयुत, पढै सुनै यह ग्रंथ ॥
ज्ञानसहित गुरुसे जु नर, लहै मोक्षको पंथ ॥ १ ॥

टीका-च्यारि अनुबन्धसहित ग्रंथकूं जानिकै ज्ञान सहित गुरुसे जो पुरुष पढै, अथवा एकाग्रचित्तकरिके सुनै, सो पुरुष मोक्षका पंथ जो ज्ञान है ताको प्राप्त होय ॥१॥

दोहा।

अनायास मति भूमिमैं, ज्ञान चिमन आवाद ॥
है इहिं कारन कहतहूं, गुरूशिष्यसंवाद ॥ २ ॥

टीका-गुरुशिष्यके संवादसे अर्थनिरूपण करनेसे श्रोताकूं बोध सुखसे होवै है. इस कारणतैं गुरुशिष्यके

संवादसे ग्रंथका आरंभ करिये है ॥ २ ॥

अथ श्रीगुरुलक्षण ।

चौपाई–वेद अर्थकूं भले पिछानै ।
आतम ब्रह्मरूप इक जानै ॥
भेद पंचकी बुद्धि नशावै ।
अद्वय अमल ब्रह्म दरशावै ॥ ३ ॥
भव मिथ्या मृगतृषा समाना ।
अनुलव इमि भाषत नहिं आना ॥
सो गुरु दे अद्भुत उपदेशा ।
छेदक शिखा न लूंचित केशा ॥ ४ ॥

टीका–"वेदके अर्थकूं भलीप्रकारसे पिछाने" यह कहनेसे अधीतवेद आचार्य होवै हैं; यह कह्या और जीवब्रह्मकी एकता निश्चयकरिके जानै यातैंआत्मज्ञानविषे जाकी स्थिति होवै,सो आचार्य होवै हैं,यह कह्या जो वेद पढ्या होवै और ज्ञानविषे जाकी निष्ठा न होवै सो आचार्य नहीं है,ज्ञानविषे जाकी निष्ठा होवै, और वेद नहीं पढ्या, सो भी आप तौ मुक्त है, परंतु उपदेशकरनेयोग्य आचार्य नहीं है. काहेतें, वाकूं जिज्ञासुकी शंका मेटनेकी युक्ति नहीं आवै है.जाके चित्तविषे शंका उठै नहीं ऐसा जो उत्तम संस्कारवाला जिज्ञासु

है,ताके तौ उपदेश करने विषे समर्थ है भी परंतु सर्वके उपदेश करने योग्य नहीं; यातैं आचार्य नहीं. किंतु अधीतवेद होवै,और ज्ञानविषे जाकी निष्ठा होवै, सो आचार्य कहिये है.और शिष्यकी बुद्धिमें भान जो होवै पंचप्रकारका भेद,ताकूं नाना युक्तिसे दूरि करने विषे समर्थ होवै– १ जीव ईशका भेद, २ जीवनका परस्पर भेद,३जीव जडका भेद, ४ ईश जडका भेद, ५जडजडका भेद,यह पंचप्रकारके भेद हैं,ताकूं खंडन करै.काहेतैं भेद भयका हेतु है. यातैं भेदका निराकारण अवश्य कर्त्तव्य है. भेदका निराकरण करिकै अद्वय और अमल कहिये अविद्यादि मलरहित जो ब्रह्म ताकूं दरशावै,कहिये आत्मरूप करिकै साक्षात्कार करवावै. और सर्व संसारकूं मिथ्या रूप करिकै उपदेश करै. सो अद्भुत उपदेश देनेवाला आचार्य कहिये है.और केवल आप मुंडन कराइकै शिष्यकी शिखा छेदन मात्र करनेवाला; अथवा और कोऊ संप्रदायके चिह्न मात्रसे अंकित करनेवाला आचार्य नहीं कहिये है ॥ ३ ॥ ४ ॥

दोहा।

करतमोक्ष भवग्राहते, दे असि निज उपदेश ॥
सो देशिक बुध जन कहत, नहिं कृत गैरिकवेष ॥५॥

अथ स्पष्ट.

दोहा।

दैशिकके लक्षण कहे, श्रुति मुनि वच अनुसार ॥
सो लक्षण हैं शिष्यके, ह्वै जिनते अधिकार॥ ६ ॥

टीका–शास्त्रके अनुसार दैशिक कहिये गुरु, ताके लक्षण कहे. और जिन साधनसे ग्रंथमें अधिकार होवै सो साधन शिष्यके लक्षण हैं याका यह अभिप्राय हैः– जो अधिकारीके लक्षण पूर्व कहे, सोई लक्षण शिष्यके जानि लेने ॥ ६ ॥

अथ गुरुभक्तिका फल वर्णन–दोहा।

ईश्वरते गुरुमें अधिक, धारै भक्ति सुजान ॥
विन गुरुभक्ति प्रवीण हूँ, लहै न आतमज्ञान ॥ ७॥

टीका–गुरुमें ईश्वरसे अधिक भक्ति करै. काहेतें जो सर्वशास्त्रमें प्रवीण भी पुरुष होवै, सो भी गुरुके उपदेशविना ज्ञानकूं प्राप्त होवै नहीं ॥ ७ ॥

जो पूर्वदोहेमें बात कही सोई दृष्टांतसे प्रतिपादन करै हैंः–

दोहा।

वेद उदधि विनुगुरु लखै, लागै लौन समान ॥
बादर गुरुमुख द्वार ह्वै, अम्मृतसे अधिकान ॥ ८॥

टीका–वेदरूपी उदधि कहिये जो समुद्र है सो गुरु विनालौनके समान क्षार है. जैसे क्षारसमुद्रमें पैठिके

वाके जलकूं जो पान करै, सो केवल क्षारताकूं अनुभव करै है, और तासूं क्लेशकूं प्राप्त होवै है. तैसे गुरुविना जो वेदके अर्थकूं विचारै है, सो भेदरूपी क्षारकूं अनुभव कारिकै जन्ममरणरूपी खेदकूं प्राप्त होवै हैं. इसी कारणसे रामानुज और मध्वसे आदिलेके जो नानापुरुष हुए हैं, तिन्होंने वेदके अर्थका विचार भी किया है,परंतु गुरुद्वारा नहीं किया, यातैं भेदविषे निश्चयकरिकै जन्ममरणरूपी खेदकूंही प्राप्त भये मुक्तिरूप आनंद उनकूं प्राप्त नहीं भया. यद्यपि रामानुज आदि जो भये हैं तिन्होंने भी वेद अपने २ गुरुसेही पढिकै विचार्या है,और विचारिकै व्याख्यान किया है, तथापि जिनके पास उन्होंने वेद पढ्या सो गुरु नहीं, काहेतैं, "जो जीवब्रह्मकी एकताका उपदेश करै सो गुरु होवै है." यह पूर्व गुरुलक्षणके प्रसंगमें कहि आये, और उनके जो पाठक हुए हैं, सो जीवब्रह्मका भेद उपदेश देनेवाले हुए हैं, यातैं उनके विषे जो गुरुशब्दका प्रयोगकरै है सो अर्हतके समान करै है. जैसे अर्हतके शिष्य अर्हतकूं गुरु कहैं हैं परंतु अर्हत गुरुपदका विषय नहीं है. तैसे भेदवादी पुरुषोंके जो शिष्य हैं, सो अपने पाठकोंकूं गुरु कहैं हैं, परंतु सो गुरु नहीं हैं. यातैं रामानुजसे

आदिलेके जो भेदवादी हुये हैं, तिन्होंने गुरुद्वारा विचार नहीं किया, इसकारणतैं भेदमें अभिनिवेशकरिकै जन्ममरणरूपी क्लेशकूंही प्राप्त भये. तैसे और भी जो कोऊ पूर्वलक्षणयुक्त गुरुसे विना आपही वेदके अर्थका विचार करै; अथवा भेदवादी पुरुषसे पढिके विचारे सो भी भेदरूपी क्षारकूं अनुभवकरिकै जन्ममरणरूपी क्लेशकूंही अनुभव करै है. यह दोहेके पूर्वार्द्धका अर्थ है. और बादररूपी ब्रह्मवित् गुरुके मुखद्वारा जो सुनिके विचारे, ताकूं अमृतसेभी अधिकआनंदका हेतु वेद होवै है. जैसे समुद्रका जल स्वरूपसे क्षार है, और बादरद्वारा मधुर होवै है; तैसे वेदका अर्थ ब्रह्मज्ञानी गुरुद्वारा आनंदका हेतु है ॥ ८ ॥

पूर्व दोहेमें यह बात कही जो" गुरुसे पढ्या जो वेदका अर्थ है, ताके विचारसे मुक्तिरूपी फलप्राप्त होवै है, तासों गुरु ज्ञानी होवै, अथवा अज्ञानी होवै, ऐसा विशेष नहीं कह्या, सो अब कहैं हैं, "यद्यपि ज्ञानहीन गुरु नहीं," यह पूर्व कहि आये, तथापि पूर्व कही वार्ताकूं दृष्टांतसे प्रतिपादन करैं हैं:–

दोहा।

दृतिपुट घट सम अज्ञजन, मेघसमान सुजान ॥
पढै वेद इहिं हेतुते, ज्ञानीपै तजि आन ॥ ९ ॥

टीका-अज्ञ कहिये अज्ञानी जो जनहै, सो दृतिपुट कहिये मशक और चरम आदि जो चर्मपात्र, अथवा घटद्वारा ग्रहण किया जो समुद्रका जल,सो विलक्षणस्वाद का हेतु नहींहै, तैसे अज्ञानीपुरुषद्वारा ग्रहण जो किया वेदरूपी समुद्रका अर्थरूपी जल, सो विलक्षण आनंदका हेतु नहीं, यातैं अज्ञानी पाठक चर्मपात्र और घटके समान हैं और सुजान कहिये ज्ञानी मेघके समान हैं यह वार्त्ता पूर्व प्रतिपादन करी है, यातैं चर्मपात्र और घटके समान जो अज्ञानीपाठक है ताकूं त्यागिकै मेघसमान जोज्ञानीताहीसूंवेदकाअर्थ पढे अथवासुने ॥९॥

"ज्ञानवान्‌के पास वेद पढे." या कहनेतैं यह शंका होवै है:-जो वेदकी श्रुति हैं,तिनही द्वारा जीवब्रह्मका स्वरूप विचारनेतैं ज्ञान होवै है. अन्य संस्कृत ग्रंथोंसे और भाषाग्रंथोंसे ज्ञान होवे नहीं. याते भाषा ग्रंथका आरंभ निष्फल होवेगा.

ताके सामाधनका-दोहा।

ब्रह्मरूप अहि ब्रह्मवित, ताकी वाणी वेद ॥
भाषा अथवा संसकृत,करत भेद भ्रम छेद ॥ १० ॥

टीका-" ब्रह्मवेत्ता जो पुरुष है सो ब्रह्मरूप है," यह वार्ता श्रुतिविषे प्रसिद्ध है, यातैं ताकी वाणी वेदरूप है, सो भाषारूप होवै, अथवा संस्कृतरूप होवै, सर्वथा

भेदभ्रमका छेद करै है, और जो कहै हैः—"वेदके वचनविना ज्ञान होवै नहीं" सो नियम नहीं,जैसे आयुर्वेदमें कहे जो रोग और तिनके निदान, और औषध, तिन संपूर्णका अन्यसंस्कृत ग्रंथोंसे और भाषा फारसी ग्रंथोंसे, ज्ञान होय जावे है तैसे सर्वका आत्मा जो ब्रह्म ताका ज्ञान भी भाषादिक ग्रंथोंसे होवै है, इसवास्ते सर्वज्ञ जो ऋषि और मुनि हुए हैं, तिन्होंने स्मृति, और पुराण और इतिहास ग्रंथोंमें ब्रह्मविद्याके प्रकरण कहे हैं, जो वेदसे विना ज्ञान न होवै तौ वे संपूर्ण प्रकरण निष्फल होय जावैंगे, यातैं आत्माके स्वरूपका प्रतिपादक जो वाक्य है तासूं ज्ञान होवै है, सो वेदका होवै, अथवा अन्य होवै यातैं भाषाग्रंथसे भी ज्ञान होवै है, यह वार्ता सिद्ध हुई ॥ १० ॥

दोहा।

वाणी जाकी वेद सम, कीजै ताकी सेव ॥
ह्वै प्रसन्न जब सेवते, तब जानै निज भेव ॥ ११ ॥

टीका—जा ब्रह्मवेत्ताकी वाणी कहिये वचन वेदके समान है ता ब्रह्मवेत्ता आचार्यकी जिज्ञासु सेवा करै; काहेतैं, सेवातैं जब आचार्य प्रसन्न होवै, तब निजभेव कहिये अपना स्वरूप जानैं यह कहनेतैं यह वार्त्ता जनाईः—जो आचार्यकी सेवा है,सो तो ईश्वरकी सेवा-

से भी अधिक है.काहेतें, जो ईश्वरकी सेवा है सो अदृष्टफलका हेतु है, और आचार्यकी सेवा है सो अदृष्टफल और दृष्टफल दोनोंका हेतु है. जो वस्तु धर्म अधर्मकी उत्पत्तिद्वारा फलका हेतु होवै, सो अदृष्टफलका हेतु कहिये है और जो वस्तु धर्म अधर्मकी उत्पत्तिसे विना साक्षात् फलका हेतु होवै सो दृष्टफलका हेतु कहिये है. ईश्वरकी जो सेवा है सो धर्मकी उत्पत्तिद्वारा अंतःकरणकी शुद्धिरूप फलका हेतु है. यातें ईश्वरकी सेवा अदृष्टफलका हेतु है. और आचार्यकी सेवा धर्मकी अपेक्षा बिना आचार्यकी प्रसन्नता करिकै उपदेशरूप फलका हेतु है, यातें दृष्टफलका हेतु है, और धर्मकी त्पत्तिद्वारा अंतःकरणकी शुद्धिरूप फलका हेतु है यातें अदृष्टफलका भी हेतु है इसरीतिसे आचार्यकी सेवा ईश्वरकी सेवासे भी उत्तम है यातें जिज्ञासु सर्वप्रकारसे ब्रह्मवेत्ता आचार्यकी सेवा करै ॥ ११ ॥

अथ आचार्यसेवा प्रकार–सोरठा।

ह्व जबही गुरुसंग, करै दंड जिमि दंडवत।
धारै उत्तम अंग, पावन पादसरोज रज ॥ १२ ॥

टीका–जब गुरु प्राप्त होवै, तब दंडकी न्याईं साष्टांग प्रणाम करै. और पावन कहिये पवित्र जो है पादरूपी

सरोज (कमल) तिनकी रज जो धूरी, ताकूं उत्तम अंग कहिये मस्तक ऊपर धारै ॥ १२ ॥

चौपाई ।

गुरु समीप पुनि करिये वासा। जो अति उत्कट है जिज्ञासा
तन मन धन वच अर्पी देवै। जो चाहै हिय बंधन छेवै ॥
अर्थ स्पष्ट.

अथ तनअर्पण प्रकार ।

चौपाई ।

तनकरि बहु सेवा विस्तारै। आज्ञा गुरुकी कबहुँ न टारै॥

अथ मन अर्पण प्रकार ।

मनमें प्रेम रामसम राखै। है प्रसन्न गुरु इमि अभिलाषै १४
दोषदृष्टि स्वपने नहिं आनैं। हरि हर ब्रह्म गंग रविजानै।
गुरु मूरतिको हियमें ध्याना। धारै जो चाहै कल्याना १५

अथ धन अर्पण प्रकार ।

चौपाई ।

पत्नी पुत्र भूमि पशु दासी। दास द्रव्य गृह श्रीहि विनाशी॥
धनपद इन सबहिनकूं भाखै। है गुरु शरण दूरि तिहिं नाखै

सोरठा ।

धन अर्पणको भेव, एक कह्यो सुन दूसरो ।
है गृहस्थ गुरुदेव, याज्ञवल्क्य सम देह तिहि॥ १७॥

टीका—पत्नीसे आदिलेके व्रीहि कहिये धान्यपर्यंत सारे धन कहियें हैं तिन सर्वकूं त्यागि कै त्यागी जो गुरु है, ताके शरणे होवै; यह धन अर्पण कहिये है; काहेतें, गुरु त्यागी हैं, सो आप तौ अंगीकार करै नहीं. परंतु तिन गुरुकी प्राप्तिवास्ते धनका त्याग किया है. यातें ऐसा जो त्याग है, सो भी गुरुकूंही अर्पण कहिये है.

और गृहस्थ जो गुरु होवै तिनकूं समग्र चढाइ देवै यह दूसरे प्रकारका धन अर्पण कहिये है. यामैं कोऊ शंका करैहैः—जो ब्रह्मविद्याके आचार्य गृहस्थ नहीं होवैं हैं. सो शंका बनै नहीं। काहेतें, याज्ञवल्क्य और उद्दालकसे आदि लेके ब्रह्मविद्याकेआचार्य गृहस्थही वेदविषे बहुत सुने जावैं हैं.यातैं गृहस्थभी आचार्य संभवैं हैं ॥ १७ ॥

अथ वाणी अर्पणविषे-छन्द.

भाषत गुणगण गुरुके वाणी शुद्ध।
दोष न कबहूं अर्पण करि इमि बुद्ध ॥ १८ ॥

सोरठा।

जो चाहै कल्याण, तन मन धन वच अरपि इम।
बसै बहुत गुरुस्थान, शिक्षातैं जीवन करै ॥ १९ ॥

टीका–जो पुरुष अपना कल्याण चाहै, सो पूर्वरीतिसे तनु आदि अर्पण करिकै आप बहुतकाल गुरु जहां हों, ता स्थानविषे, वा समीपमें वास करै, आप भिक्षातें जीवन कहिये प्राण धारण करै ॥१९॥

चौपाई।

सोभिक्षाधरिदैशिषआगै। निजभोजनकूंनहिंपुनिमांगै।
जोगुरुदेइ तु जाठरडारै। नहिं दूजेदिन वृत्तिसँभारै२०॥

टीका–जो भिक्षाका अन्न शिष्य ल्यावै सो आपही भोजन नहीं करि लेवै. किंतु दैशिक जो गुरु हैं, तिनके आगे धरिदेवै, और भिक्षा गुरुके आगे धरिकै अपने भोजनकूं गुरुसे माँगै नहीं और एकदिनमें दूसरीवार भिक्षा ग्राममें भी मांगै नहीं किंतु गुरु जो कृपा करिकै देवैं, तो भोजन करै और गुरु जो शिष्यकी श्रद्धा की परिक्षाके निमित्त नहीं देवैं, तौ दूसरे दिन वृत्ति जो भिक्षा ताकूं संभारै ॥ २० ॥

दोहा।

पुनि गुरुके आगे धरै, भिक्षा शिष्य सुजान ॥
निर्वेद न जियमें करै, सो निज चहैकल्यान ॥२१॥

टीका–निर्वेद नामग्लानिका है.अन्यअर्थस्पष्ट।२१।

चौपाई।

इम व्यवहृत अवसर जब पेखै।मुखप्रसन्नगुरुसन्मुखलेखै।
विनती करै दोउ कर जोरी।गुरुआज्ञातें प्रश्न बहोरी२२

टीका—इसरीतिका व्यवहार करते जब गुरुका अवकाश देखै, और प्रसन्नमुखसे गुरु जब अपने सन्मुख देखे तब हाथ जोरिकै गुरुकी स्तुति करै, और विनती करै हे भगवन्! "मैं पूछ्या चाहूं हूं" तब गुरु आज्ञा करैं तौ प्रश्न करै.

और कदाचित् जन्मांतरके उत्तमकर्मतें गुरु कृपाकरिकै शिष्यकूं तन अर्पण आदि सेवासे विनही उपदेश करिदेवैं, तोभी शुद्ध अधिकारीका कल्याण होय जावै है. काहेतें, गुरुसेवाके दो फल हैं, एक तौ गुरुकी प्रसन्नता, और दूसरा अंतःकरणकी शुद्धि सो दोनों वाके सिद्ध हैं ॥ २२ ॥

दोहा।

तन मन धन वाणी अरपि, जिहिं सेवत चितलाय ॥
सकलरूप सो आप है, दादू सदा सहाय ॥ २३ ॥

इति गुरुशिष्यलक्षणं, गुरुभक्तिफलप्रकारनिरूपणं नाम तृतीयस्तरंगः समाप्तः ॥ ३ ॥

चतुर्थस्तरङ्गः ४.

अथ उत्तमाधिकारी उपदेशनिरूपण।

दोहा।

गुरु शिषके संवादकी, कहूँ ब गाथ नवीन ॥
पेखि जाहि जिज्ञासु जन, होत विचारप्रवीन ॥ १ ॥

दोहा।

तीन सहोदर बाल शुभ, चक्रवर्ति संतान ॥
शुभसंतति पितु तिहिंनमें, स्वर्ग पताल जहान ॥२॥

तीनों बाल नाम।

तत्त्वदृष्टि इक नाम अहि, दूजो कहत अदृष्ट ॥
तर्कदृष्टि पुनि तीसरो, उत्तम मध्य कनिष्ठ ॥ ३ ॥

चौपाई।

बालपनो सब खेलत खोयो।तरुणपायपुनिमदनबिगोयो
धारिनारि गृह मार प्रकाशी।भोग लहै तिहुं सबसुखराशी

दोहा।

स्वर्ग भूमि पातालके, भोगहिं सर्व समाज ॥
शुभसंतति निज तेजबल; करत राजके काज ॥५॥
लहिअवसरइकतिहिंपिता; निजहियरच्यो विचार ॥
सुखस्वरूप अज आतमा,तासूं भिन्न असार ॥ ६॥
इहिं कारन तजि राज यह, जानूं आतमरूप ॥
स्वर्ग भूमि पातालके, तिहुं पुत्रहि करि भूप ॥ ७॥

चौपाई।

असविचार शुभसंततिकीना।मंत्रपेखितिहुंपुत्र प्रवीना॥
देश इकंत समीप बुलाये।निज विरागके वचन सुनाये॥
भाष्यो पुनि यह राज सँभारहु।
इक पताल इक स्वर्ग सिधारहु॥

अपर बसहु काशी भुवि स्वामी
रहत जहां शिव अंतरयामी ॥ ९ ॥
जिहिं मरतहि सुनि शिव उपदेशा।
अनयासहि तिहिं लोकप्रवेशा ॥
गंग अंग मनु कीर्ति प्रकासै।
उत्तरवाहिनि अधिक उजासै ॥ १० ॥

दोहा।

करहु राज इम भिन्न तिहुं, पालहु निज निज देश ॥
फिन विभाग भ्रातानको, भूमि काज है क्लेश ॥ ११ ॥

सवैया— राजसमाज तजौं सब मैं अब,
जानि हिये दुख ताहि असारा।
और तु लोक दुखी अपने दुख,
मैं भुगत्यो जग क्लेश अपारा ॥
जे भगवान प्रधान अजान,
समान दरिद्रन ते जन सारा।
हेतु विचार हिये जगके भग,
त्यागि लखूं निजरूप सुखारा ॥ १२ ॥
वाक्य अनंत कहे इम तात,
सुने तिहुं भ्रात सुबुद्धिनिधाना।
बैठि इकंत विचार अपार,
भनै पुनि आपसमांहि सुजाना ॥

है दुखमूल समाज इमैं यह,
आप भयो चह ब्रह्म समाना।
सो जन नागर बुद्धिकसागर,
आगर दुःख तजै जु जहाना॥ १३॥

दोहा।

याते तजि दुखमूल यह, राज करौ निज काज॥
करि विचार इम गेहते, निकस्यो भ्रातसमाज ॥१४॥
तिहुँ खोजत सद्गुरुचले, धारि मोक्ष हिय काम॥
अर्थसहितकिय तातको, शुभसंतति यहनाम॥ १५॥
खोजत खोजत देश बहु, सुरसरि तोर इकंत॥
तरु पल्लव साखा सघन, बन तामें इक संत॥ १६॥
बैठ्यो वट विटपहिं तरै, भद्रा मुद्रा धारि॥
जीवब्रह्मकी एकता, उपदेशत गुण टारि॥ १७॥
दोषरहित एकाग्रचित, शिष्यसंघ परिवार॥
लखि देशिक उपदेशहिय, चहुंघाकरत विचार॥ १८॥
मनहु शंभु कैलासमें, उपदेशत सनकादि॥
पेखिताहितिहिंलहिशरण, करीदंडवत आदि॥ १९॥
कियो मास षटमास पुनि, शिष्यरीति अनुसार॥
करी अधिक गुरुसेव तिहुं, मोक्ष काम हियधार ॥२०॥
है प्रसन्न श्री गुरु तबै, ते पूछे मृदुबानि॥
किहिंकारणतुम तात तिहुँ, बसहुकौन कह आनि २१

तत्त्वदृष्टि तब लखि हिये, निज अनुजनकी सैन ॥
कहै उभय कर जोरि निज, अभिप्रायके बैन ॥ २२ ॥

तत्त्वदृष्टिरुवाच-दोहा।

भो भगवन हम भ्रात तिहुँ, शुभसंततिसन्तान ॥
लख्यो चहैं बहुभेव हिय, दीन नवीन अजान ॥ २३ ॥
जो आज्ञा ह्वै रावरी, तौ ह्वै पूछि प्रवीन ॥
आप दयानिधि कल्पतरु,हम अतिदुखितअधीन॥२४॥

श्रीगुरुरुवाच-सोरठा।

सुनहु शिष्य मम बात, जो पूछहु तुम सो कहूँ ॥
लहो हिये कुशलात, संशय कोऊ ना रहै ॥ २५ ॥

दोहा।

गुरुकी लखी दयालुता, शिष्य हिये भो चैन ॥
कार्य सिद्ध निज मानि हिय, भाषे सविनय बैन ॥२६॥

तत्त्वदृष्टिरुवाच-चौपाई।

भो भगवन तुम कृपानिधाना। हो सर्वज्ञ महेशसमाना॥
हमअजानमतिकछूनजानैंजन्मादिकसंसृतिभयमानैं२७
कर्म उपासन कीने भारी।और अधिक जगपाशीडारी॥
आपउपाय कहौगुरुदेवा।ह्वैजाते भवदुखको छेवा॥२८॥
पुनि चाहत हम परमानंदा।ताको कहो उपाय सुछंदा॥
जबहिकृपाकरिकहिहौ ताता।तबह्वैहै हमरे कुशलाता२९

टीका– हे भगवन्! आप कृपानिधान हो; और सदाशिवके समान आप सर्वज्ञ हो. और हे भगवन्! हम जन्ममरणसे आदि लेके जो दुःखरूप संसार है, तासे डरै हैं ताकी निवृत्तिका आप उपाय कहो. और परमानंदकी प्राप्तिका उपाय कहो. और हे गुरो! उपासना और कर्मके अनंतअनुष्ठान करे भी, परन्तु उनसे हमारेकूं वांछित फल प्राप्त भया नहीं. और उलटा संसार उनसे बढतागया याते आप और उपाय बतावो, जा करिकै हम कृतार्थ होवैं ॥ २९॥

दोहा।

मोक्षकाम गुरु शिष्य लखि, ताको साधन ज्ञान ॥
वेदउक्त भाषण लगे, जीवब्रह्म भिद भान ॥३० ॥

टीका–दुःखकी निवृत्ति और परमानंदकी प्राप्तिकूं मोक्ष कहैं हैं ताकी कामना शिष्यके हृदयमें देखिके ताका साधन जो वेदउक्त ज्ञान है, सो कहते भये. यद्यपि ज्ञानकास्वरूप अनेकशास्त्रोंविषे भिन्न भिन्न वर्णन किया है, तथापि जीव ब्रह्मकी भिद कहिये भेद ताकूं दूरि करनेवाला जो ज्ञान है, सोई वेदमें मोक्षका साधन कह्या है, याते ताही ज्ञानकूं कहैं हैं ॥ ३० ॥

श्री गुरुवच-दोहा।

परमानंदमिलाप तू, जो शिष चहै सुजान ॥
जन्मादिकदुख नाश पुनि,भ्रांतिजन्य तिहिं मान३१

परमानंद स्वरूप तू, नहिं तोमें दुख लेश ॥
अज अविनाशी ब्रह्म चित,जिन आनैहियक्लेश३२॥

टीका-हे शिष्य ! परमानंदकी प्राप्तिविषे और जन्ममरणसे आदिलेके जो दुःखरूप संसार है, ताकी निवृत्तिविषे जो तेरेकूं इच्छा भई है,ता इच्छाकी भ्रांतिसे उत्पत्ति हुई है;तूं ऐसे जान, काहेते ! तू आप परम आनंदस्वरूप है; याते ताकी प्राप्तिकी इच्छा बनै नहीं. जो वस्तु अप्राप्त होवै, ताकी प्राप्तिकी इच्छा बनै है. और अपना जो स्वरूप है,सो सदा प्राप्त है. ताकी प्राप्तिविषे जो इच्छा, सो भ्रांति विना बनै नहीं और जन्मसे आदिलेके जो संसार है,सो जो कदाचित् होवै तौ वाकी निवृत्तिविषे इच्छा बनै.सो जन्मादिक संसारका लेश भी तेरेविषे नहीं है. याते अनहुये दुःखकी निवृत्तिविषे भी इच्छा भ्रांति विना बनै नहीं और हे शिष्य!जन्म और नाश करिके रहित जो चेतनरूप ब्रह्म है , सो तूं है याते अपने हृदयविषे जन्मादिक खेद मति मान ॥ ३१ ॥ ३२ ॥

तत्त्वदृष्टिरुवाच–दोहा ।

विषयसंग क्यों भान है, जो मैं आनँदरूप ॥
अब उत्तर याको कहौ, श्रीगुरु मुनिवरभूप ॥३३॥

टीका–हे भगवन् ! जो मेरा आत्मा आनन्दरूप होवै तो विषयके संबंधसे आनंदका आत्माविषे भान नहीं हुवा चाहिये. याते आत्मा आनंदरूप नहीं, किंतु विषयके संबंधसे आत्मा विषे आनंद होवै है ॥ ३३ ॥

श्रीगुरुरुवाच–चौपाई ।

आतमविमुख बुद्धि जन जोई। इच्छाताहि विषयकीहोई॥
तासूं चंचलबुद्धिबखानी। सुख आभासहोइतहाँ हानी३४
जबअभिलषित पदारथपावै। तबमतिछनकविछेपनशावै।
तामैं है अनंद प्रतिबिंबा। पुनि छनमैं बहु चाहविडंबा।
ताते है थिरताकी हानी। सोअनंद प्रतिबिंबनशानी।
विषयसंगअनंदजुहोई। बिनसतगुरुयह लखै न कोई३६॥

टीका–हे शिष्य ! आत्मासे विमुख है बुद्धि जाकी, ऐसा जो पुरुष ताकूं विषयकी इच्छा होवै है, या स्थान विषे जो भोगका साधन होवै सो विषय कहिये है. याते धन पुत्रादिकोंका भी ग्रहण करि लेना ता विषयकी इच्छाते बुद्धि चंचल रहै है. ता चंचल बुद्धिमें आत्मस्वरूप आनंदका आभासकहिये प्रतिबिंब नहीं होवै है और जिस विषयकी इच्छा हुई होवै सो विषय या-

कूं प्राप्त होइ जावे तब या पुरुषकी बुद्धि क्षणमात्र स्थित होयके अंतर्मुख बुद्धिकी वृत्ति होवै है ता अंतर्मुखवृत्तिविषे आत्माका स्वरूप जो आनंद ताका प्रतिबिंब होवै है. तिस आत्मस्वरूप आनंदके प्रतिबिंब कूंअनुभव करिके पुरुषकूं भ्रांति होवै है, जो मेरेकूं विषयसे आनंदका लाभ हुवा है परंतु विषयमें आनंद है नहीं.

जो कदाचित् विषयमें आनंद होवै, तो एकविषयसे तृप्त जो पुरुष, तासूं जब दूसरे विषयकी इच्छा होवे, तब भी प्रथमविषयसे आनंद हुवा चाहिये सो होवै तौ नहीं है. और हमारी रीतिसे स्वरूपआनंदका तो भान बनै नहीं काहेते जो दूसरे विषयकी इच्छा करिके बुद्धि चंचल है, ताकेविषे प्रतिबिंब बनै नहीं किंवा:-

जो विषयमेंही आनंद होवै तो जा पुरुषका प्रियपुत्र अथवा और कोई अत्यंत प्यारा जो अकस्मात् बहुतकाल पीछे मिलि जावै, तब वाकूं देखतेही प्रथम जो आनंद होवै, सो आनंद फेरि सदा नहीं होता सो सदाही हुवा चाहिये. काहेते आनंदका हेतु जो पुरुष है सो वाके समीप है. और हमारी रीतिसे तो प्रथमही आनंद बनै है, सदा बनै नहीं. काहेतेए, कबेरि प्यारेकूं देखिके वृत्तिस्थित होवै है, फेरिवृत्ति और पदार्थनमें लगि जावै है; याते चंचल है. याते पदार्थमें आनंद नहीं किंवा:-

जो विषयमें आनंद होवैं, तौ समाधिकालविषे जो योगानंदका भान होवै है, सो न हुवा चाहिये, काहेते, समाधिमें किसी विषयका संबंध नहीं है. किंवाः—

जो विषयमेंही आनंद होवै तौ सुषुप्तिमें आनंदका भान नहीं हुवा चाहिये. काहेते, सुषुप्तिविषे भी किसी विषयका संबंध है नहीं याते विषयमें आनंद नहीं किंतु आत्मस्वरूपआनंद सारे भान होवै है, इसी वास्ते वेदमें लिखा हैः—"आत्मस्वरूप आनंदकूं लेके सारे आनंदवाले होवैं हैं." ॥ ३४–३६ ॥

दोहा ।

विषय संगतैं है प्रगट, आतम आनँदरूप ॥
शिष्य सुनायो तोहि मैं, यह सिद्धांत अनूप॥३७॥

सोरठा ।

सो तूं मोहि ब भाख, जो याम शंका रही ॥
निजमतिमैं मति राख, मैं ताको उत्तर कहूँ ॥ ३८ ॥

तत्त्वदृष्टिरुवाच ।

चौपाई—भो भगवन तुम दीनदयाला ।
मेट्यो मम संशय ततकाला ॥
यामें कछुक रही आशंका ।
सो भाखो अब ह्व निर्बंका ॥ ३९ ॥

आतमविमुख बुद्धि अज्ञानी।
ताकी यह सब रीति बखानी॥
ज्ञानी जनको कहौ विचारा।
कोउ न तुम सम और उदारा॥ ४० ॥

टीका—हे भगवन्! आपने पूर्व विषयके संबंधसे आत्मानंदके भानकी जो रीति कही सो अज्ञानीपुरुषकी कही, और ज्ञानी की नहीं कही. काहेते, आत्मासे विमुख है बुद्धि जाकी ताका आपने नाम लिया है, सो आत्मासे विमुखबुद्धि अज्ञानीकी होवै है, ज्ञानीकी नहीं याते आप अब ज्ञानीका विचार कहो. जो ज्ञानवान्कूं विषयकी इच्छा, और ताके संबंधसे पूर्व रीति करिके सुखका भान होवै है, अथवा नहीं? यह वार्त्ता आप कहो॥ ३९॥ ४०॥

श्रीगुरुरुवाच—दोहा।

सुनहु शिष्य इक बात मम, सावधान मन कान॥
हैं द्वैविध आतमविमुख, अज्ञानी रु सुजान॥४१॥
ह्व विस्मृत व्यवहारमें, कबहुक ज्ञानी संत॥
अज्ञानी विमुखहि रहै, यह तू जान सिधंत॥४२॥

टीका—हे शिष्य! तू चित्त और श्रवणकूं सावधान करके सुन. पूर्व जो हमने आत्मविमुख कहा है, सो आत्मविमुख आज्ञानीही नहीं होवै किंतु ज्ञानवान्की

भी बुद्धि जब व्यवहारमें आइजावै तब वह तत्त्वकूं भूल जावै है. तिसकालविषे ज्ञानवान् भी आत्मविमुखही होवै है. और ज्ञानीकी बुद्धि जो सदा आत्माकार ही रहै, तौ भोजनादिक व्यवहार न होवैं, याते आत्म-विमुखबुद्धि दोनोंकी बनै है. अज्ञानीकी तौ बुद्धि सदा आत्मविमुख है. और ज्ञानीकी बुद्धि आत्मविमु-ख होवै तिसकालमें ज्ञानीकूं भी इच्छा, और विषयके संबंधसे जो आत्मस्वरूप आनंदका भान अज्ञानीके समान है, परंतु इतना भेद है विषयके संबधसे जो आनंदका भान होवै है, ताकूं ज्ञानी तो जानै है जो यह आनंद है सो मेरे स्वरूपसे न्यारा नहीं है, किंतु ताकाही आभास है. याते ज्ञानीकूं विषयभोगमेंभी समाधिहीहै. और अज्ञानी नहीं जानै है. जो मेराही स्वरूप आनंद है और दोनोंका स्वरूप आनंद है विषय से केवल अज्ञानीकूं भ्रांति होवै है. ॥ ४१ ॥ ४२ ॥

शिष्य उवाच—चौपाई ।

हे प्रभु परमानंद बखान्यो। मेरो रूप सु मैं पहिचान्यो॥
नहिं तो मैं भवबंधन लेशा। कह्यो आपपुनियहउपदेशा॥
यामें शंका मुहि यह आवे। जातेतव वच हियनसुहावे॥
नहिं मोमें यह बंध पसारो। कहो कौन तौ आश्रयन्यारो

टीका-हे भगवन् ! आपने कहा "तू परम आनंदस्वरूपहै" सो मैं भलीप्रकारसे जाना और आपने कहा जो "जन्म मरणसे आदि लेके संसाररूप दुःख तेरे विषे है नहीं, यातैं ताकी निवृत्ति बनै नहीं" याके विषे मेरेकूं शंका है जो जन्मादिक दुःख मेरेविषे नहीं है, तौ जाविषे यह संसार है सो मेरेसे न्यारा कहिये भिन्न आश्रय आप कृपा करिके बतावो, जाके विषे संसारदुःख जानिके अपनेविषे नहीं मानूं.

श्रीगुरुरुवाच सोरठा ।

सुनहु शिष्य मम बानि; जाते तव शंका मिटै ॥
है जगकी अति हानि, तो मोमैं नहिं और मैं ॥

तत्त्वदृष्टिरुवाच दोहा।

जो भगवन कहुँ है नहीं, जन्म मरण जगखेद ॥
है प्रत्यक्ष प्रतीति क्यों?,कहो आप यह भेद॥४६॥

टीका-हे भगवन्! जो जन्म मरणसें आदिलेके संसार दुःख मेरेविषे तथा और विषे कहूँ भी नहीं है. तो प्रत्यक्ष प्रतीत क्यों होवै है? जो वस्तु नहीं होवै. सो प्रतीत होवै नहीं. जैसे वंध्याका पुत्र और आकाशविविषे पुष्प नहीं है;सो प्रतीत होवै नहीं.तसे संसारभी नहीं होवै तौ प्रतीत नहीं हुवा चाहिये. और

जन्मसे आदिलेके संसार प्रतीत होवै है याते "जन्मादिकसंसार रूपी दुःख नहीं है," यह कहना बनै नहीं.

श्रीगुरुरुवाच दोहा ।

आत्मरूप अज्ञानतैं, है मिथ्या परतीति ॥
जगत स्वप्न नभनीलता, रज्जुभुजगकी रीति॥४७॥

टीका-जन्मादिक जगत् परमार्थसे नहीं है, तोभी आत्माका ब्रह्मस्वरूप करिके,अज्ञानते मिथ्या प्रतीत होवै है. जैसे स्वप्नके पदार्थ, आकाशमें नीलता और रज्जुमें सर्प परमार्थसे नहीं हैं और मिथ्या प्रतीत होवै हैं, तैसे जन्मादिक जगत् परमार्थसे नहीं है मिथ्या प्रतीत होवै है ॥ ४७ ॥

तत्त्वदृष्टिरुवाच-चौपाई ।

मिथ्यासर्प रज्जुमैं जैसैं । भाष्यो भव आतममैं तैसैं ॥
कैसेसर्परज्जुमैं भासै । यहसंशय मनबुद्धिविनाशै४८॥

टीका-जैसे रज्जुमें सर्प मिथ्या है, तैसे आत्मामें भवदुःख मिथ्या कहा, तहां दृष्टांतके ज्ञानविना दार्ष्टांतका ज्ञान होवै नहीं याते रज्जुमें सर्प कैसे भासे ? यह दृष्टांतमें प्रश्न है ॥ ४८ ॥

अथ प्रश्नअभिप्राय ।

चौपाई-असत ख्याति पुनि आतमख्याती ।
ख्याति अन्यथा अरु अख्याती ॥

सुने चारि मत भ्रमकी ठौरा।
मानो कौन कहौ यह ब्यौरा ॥ ४९ ॥

टीका-जहां रज्जुमें सर्प, और सीपीमें रूपा, इत्यादिक भ्रम हैं, तहां चारि मत सुने हैं:-शून्यवादी असत्य ख्याति कहैं हैं. क्षणिकविज्ञानवादी आत्मख्याति कहैं हैं. न्याय और वैशेषिक मतमें अन्यथाख्याति कहैं हैं, सांख्य और प्रभाकर अख्याति कहैं हैं तहां-

शून्यवादीका यह अभिप्राय है:-जेवरी देशमें सर्प अत्यंत असत् हैं. तैसे अन्य देशमें भी अत्यंत असत् हैं. ऐसे अत्यंत असत् सर्पकी जेवरी देशमें प्रतीति होवै है; याकूं असत्य ख्याति कहैं हैं. अत्यन्त असत्य सर्पकी ख्याति कहिये भान और कथन है.

विज्ञानवादीका यह अभिप्राय है:-जेवरी देशमें तथा अन्य देशमें बुद्धिके बाहिर कहूं सर्प है नहीं सारेपदार्थ बुद्धिसे भिन्न नहीं किंतु सर्व पदार्थोंके आकारकूं बुद्धिही धारै है. सो बुद्धि क्षणिकविज्ञानरूप है क्षणक्षणमें नाश और उत्पत्तिकूं प्राप्त होवै जो विज्ञान सोई सर्परूप प्रतीत होवैहै. याकूं आत्मख्याति कहैं हैं. आत्मा कहिये क्षणिकविज्ञानरूपबुद्धि ताका सर्परूपसे ख्याति कहिये भान और कथन है.

नैयायिकका और वैशेषिकका यह अभिप्राय है:-बंबी आदिक स्थानमें साँचा सर्प है, ताकूं नेत्रसे देखै

है. और नेत्रमें दोष है, ताके बलते सन्मुख समीप प्रतीति होवै है, यद्यपि साँचा सर्प और नेत्रके मध्य भीति आदिक अंतराय हैं, तथापि दोषसहित नेत्रते अंतरायसहित भी सर्प दीखै है. और यामें कोऊ ऐसी शंका करै—दोषतें सामर्थ्य घटै है, बढै नहीं. जैसे जठराग्निमें पाचनसामर्थ्य वात पित्त कफदोषते घटै है. तैसे नेत्रमें भी तिमिरादि दोषते सामर्थ्य घटी चाहिये, और बंबी आदिक स्थानमें स्थित सर्पका दोषसहित नेत्रसे ज्ञान कहा, तहां शुद्धनेत्रसे तो परदेशमें स्थितका प्रत्यक्ष ज्ञान होवै नहीं, और दोषसहितसे होवै है. याते दोषते नेत्रका सामर्थ्य अधिक होवै है; यह माननेमें कोई दृष्टांत नहीं सो शंका बनै नहीं. काहेते किसीपित्तदोषते ऐसा रोग होवै है, जो चतुर्गुणभोजन कियेतभी तृप्ति होवै नहीं. जैसे पित्तदोषतें जठराग्निमें पाचनसामर्थ्य बधै है, तैसे नेत्रमेंभी तिमिरादि दोषते परदेशमें स्थित सर्पके प्रत्यक्ष करनेका सामर्थ्य बधै है, इसरीतिसे बंबी आदिक देशमें स्थित सर्पका अन्यथा कहिये और प्रकारते सन्मुख जेवरीदेशमें जो ख्याति कहिये भान और कथन, सो अन्यथाख्याति कहिये है. और चिंतामणिकार (नैयायिक) का यह मत है:—जो दोषसहित नेत्रते बंबीमें स्थित सर्पका ज्ञान

होवै, तौ बीचके और पदार्थनका ज्ञानभी हुवा चाहिये याते परदेशमें स्थित वस्तुका नेत्रसे ज्ञान होवै नहीं, किंतु दोषसहित नेत्रते जेवरीका निजरूपते भान होवैनहीं, सर्परूपते भान होवैहै. याते जेवरीकाही अन्यथा,कहिये और प्रकारतेसर्परूपतेजो ख्यातिकहिये भान और कथन, सो अन्यथाख्याति कहिये है.

और अख्यातिवादीका यह अभिप्राय हैः—जो असत्की प्रतीति होवै, तौ वंध्यापुत्र, और शशशृंगकी प्रतीति हुई चाहिये.याते असत्ख्याति असंगत है,क्षणिकविज्ञानकाही आकार सर्पादिक होवै तो क्षणमात्रसे अधिककाल स्थिर प्रतीति नहीं हुई चाहिये. याते आत्मख्याति असंगत है.और अन्यथाख्यातिकी प्रथम रीति तौ चिंतामणिके मतसे दूषितही है, तैसे चिंतामणिकी रीतिसे भी अन्यथाख्याति मत असंगत है. काहेते ज्ञेयके अनुसार ज्ञान होवै है. ज्ञेय रज्जु और सर्पका ज्ञान, यह कहना अत्यंतविरुद्ध है. याते यह रीति माननी योग्य हैः—

जहां रज्जुमें सर्पभ्रम है, तहां रज्जुसे नेत्रका अपनी वृत्ति द्वारा संबंध होयके रज्जुका इदंरूपते सामान्य ज्ञान होवैहै और सर्पकी स्मृति होवै है. "यह सर्प है" यामें दो ज्ञान हैं-"यह" अंश तो रज्जुका सामान्य

प्रत्यक्ष ज्ञान है, और "सर्प है" ऐसे सर्पका स्मृतिरूप ज्ञान है. इसरीतिसे " यह सर्प है" यहां दो ज्ञान हैं, परंतु भयदोष प्रमातामें, और तिमिर दोष प्रमाणमें, ताके बलते पुरुषकूं ऐसा विवेक नहीं होता, जो मेरें कूं दो ज्ञान हुयेहैं. यद्यपि " यह" अंश रज्जुका सामान्य ज्ञान यथार्थ है और पूर्व देखे सर्पका स्मृतिज्ञानभी यथार्थही है. तौभी मेरेकूं दो ज्ञान हुये हैं, तिनमें रज्जुका सामान्य प्रत्यक्ष ज्ञान है, और सर्पका स्मृतिज्ञान है, यह विवेक नहीं होवै है. तिस दो ज्ञानके विवेककूंही सांख्य प्रभाकर मतमें भ्रम कहैं हैं. यही रीति सारे भ्रमस्थलमें जाननी. या रीतिसे रज्जुआदिकनमें सर्पादिकभ्रम जहां होवैं; तहां चारि मत सुने हैं. तिनमें नीका मत होइ सो कहो, ताहीकूं मैं मानो. यह शिष्यका प्रश्न है ॥ ४९ ॥

श्रीगुरुरुवाच-दोहा ।

ख्याति अनिर्वचनीय लखि, पंचम तिनतैं और ॥
युक्तिहीन मत चारि ये, मानहु भ्रमकी ठौर ॥ ५० ॥

टीका-हे शिष्य! तिन चारि ख्यातिनते औरही ठौर भ्रमकी अनिर्वचनीयख्याति पंचम लख. और असत्ख्याति, आत्मख्याति, अन्यथाख्याति, अख्याति, ये चारि मत युक्तिहीन हैं. जैसे उत्तर उत्तर मतनिरूपणमें

तीनि मत असंगत कहे तैसे अख्यातिमत भी असंगतहै; काहेतें "यह सर्प है" या ज्ञानमें प्रथम "यह"अंश तौ रज्जुका सामान्य ज्ञान प्रत्यक्ष है;और "सर्पहै" इतना अंश पूर्वदृष्ट सर्पका स्मरण ज्ञान है.यह अख्यातिवादीका मत है. तहां पूर्वदृष्ट सर्पका स्मरणही मानैं, और सन्मुख रज्जुदेशमें सर्पका ज्ञान नहीं मानैं तौ सन्मुख रज्जुते पुरुषकूं भय होयके उलटाभागै है, सो भय और भागना नहीं हुवा चाहिये. याते सन्मुख रज्जुदेशमेंही सर्पकी प्रतीति होवै है, पूर्वदृष्ट सर्पकी स्मृति नहीं किंवाः–रज्जुका विशेष रूपते यथार्थज्ञान हुयेते अनंतर ऐसा बाध होवै हैः–"मेरेकूं रज्जुमें सर्पकी प्रतीत मिथ्या होती भई." या बोधते रज्जुमेंही सर्पकी प्रतीति होवै है,पूर्व दृष्ट सर्पकी स्मृति नहीं और "यह सर्प है" इहां ज्ञान एकही प्रतीत होवै है, दो नहीं. और एककालमें अंतःकरणते स्मृतिरूप और प्रत्यक्षरूप दो ज्ञान होवैं भी नहीं. याते अख्यातिमत भी अत्यंत असंगत है इन चारोंमतनका प्रतिपादन और खंडन विवरण और स्वाराज्यसिद्धि आदिक ग्रंथनमें विस्तारसे लिखा है;प्रतिपादन और खंडनकी युक्ति कठिन है; याते संक्षेपते जिज्ञासुकूं रीति जनाई है; विस्तारसे हमने लिखा नहीं.

सिद्धांतमें अनिर्वचनीयख्याति है, ताकी यह रीति है:-अंतःकरणकी वृत्ति नेत्रादिद्वारा निकसिके विषयके समानआकारकूं प्राप्त होवै है. ताते विषयका आवरण भंग होयके ताकी प्रतीति होवै .है तहां प्रकाश भी सहायक होवै है. प्रकाशविना पदार्थकी प्रतीति होवै नहीं जहां रज्जुमें सर्पभ्रम होवै है, तहां अंतःकरणकी वृत्ति नेत्रद्वारा निकसी भी,और रज्जुसे ताका संबंधभी होवै, परंतु तिमिरादिकदोष प्रतिबंधक हैं;याते रज्जुके समानाकारवृत्तिका स्वरूप होवैनहीं यातेरज्जुकाआवरण नाशैनहीं, इस रीतिसे आवरणभंगका निमित्त वृत्तिका संबंध हुयेते भी जब रज्जुका आवरण भंग होवै नहीं तब रज्जुचेतनमें स्थित अविद्यामें क्षोभ होयके सो अविद्या सर्पाकार परिणामकूं प्राप्त होवै है. सो अविद्याका कार्य सर्प सत् होवै तो रज्जुके ज्ञान से ताका बाध होवै नहीं. और बाध होवै है, याते सत् नहीं. और असत् होवै तो वंध्यापुत्रकी न्याईं प्रतीत नहीं होवै, और प्रतीत होवै है, याते असत् भी नहीं किंतु सत् असत्से विलक्षणअनिर्वचनीय हैशुक्ति आदिकनमें रूपादिक भी यही रीतिसे अनिर्वचनीय उत्पन्न होवै है. ता अनिर्वचनीयकी जो ख्याति कहिये प्रतीति और कथन, सो अनिर्वचनीयख्याति कहिये है.

भ्रमस्थलमें अंतःकरणसे भिन्न अविद्याका परिणाम सर्पादिक विषय और तिनका ज्ञान एकही समय होवैं हैं और लीन होवै हैं, सो साक्षीभास्य हैं.

जैसे सर्प अविद्याका परिणाम है,तैसे ताका ज्ञानरूप वृत्ति भी अविद्याकाही परिणाम है अंतःकरणका नहीं काहेते, जैसे रज्जुज्ञानते सर्पका बाध होवै है तैसे ताके ज्ञानका भी बाध होवै है. अंतःकरणका ज्ञान होवै तो बाध नहीं हुवा चाहिये, यातैं ज्ञानभी सर्पकी न्याईं अविद्याका कार्य सत् असत्से विलक्षण अनिर्वचनीय है.परंतु रज्जुउपहितचेतनमें स्थित तमोगुणप्रधान अविद्याअंशका परिणाम सर्प है और साक्षीचेतनमें स्थित अविद्याके सत्त्वगुणका परिणाम वृत्तिज्ञान है. रज्जुचेतन की अविद्याका जा समय सर्पाकार परिणाम होवै है, ताही समय साक्षी आश्रित अविद्याका ज्ञानाकारपरिणाम होवै है. काहेते रज्जुचेतन आश्रित अविद्यामें क्षोभका जो निमित्त है ता निमित्तसे ही साक्षीआश्रित अविद्याअंशमें क्षोभ होवै है. याते भ्रमस्थलमें सर्पादिक विषय और तिनका ज्ञान, एकही समय उत्पन्नहोवै है, और रज्जुआदिक अधिष्ठानके ज्ञानते एकही समय लीन होवै है.या रीतिसे सर्पादिक भ्रमविषे बाह्य अविद्याअंश सर्पादिक विषयका उपा-

दानकारण है. और साक्षीचेतन आश्रित अंतर अविद्या अंश तिनके ज्ञानरूप वृत्तिका उपादानकारण है.

और स्वप्नमें तो साक्षी आश्रित अविद्याकाही तमोगुणअंश विषयरूप परिणामकूं प्राप्त होवै है. ता अविद्यामें सत्त्वगुणअंश ज्ञानरूप परिणामकूं प्राप्त होवै है याते स्वप्नमें अंतर अविद्याही विषय और ज्ञान दोनोंका उपादान कारण है. याहीते बाह्य रज्जु सर्पादिक और अंतर स्वप्न पदार्थ, साक्षी भास्य कहिये है. अविद्याकी वृत्तिद्वारा जाकूं साक्षीभासै कहिये प्रकाशैसो साक्षीभास्य कहिये है, रज्जु आदिकनमैं अनिर्वचनीय सर्पादिक और तिनका ज्ञान भ्रम कहिये है, और अध्यास कहिये है सो भ्रम अविद्याका परिणाम है, और चेतनका विवर्त्त है उपादानकारणके समान स्वभाववाला अन्यथास्वरूप परिणाम कहिये है. और अधिष्ठानतेविपरीत स्वभाववाला अन्यथास्वरूप विवर्त्त कहिये है. उपादानकारण अविद्या, सो अनिर्वचनीयहै तैसे रज्जुमें सर्प और ताका ज्ञान भी अनिर्वचनीयहै याते रज्जुसर्प और ताका ज्ञान अविद्याकेसमानस्वभाववाला अन्यथा स्वरूपकहिये अविद्याते औरप्रकारका आकार है. सो अविद्याका परिणाम है तैसे रज्जुअवच्छिन्न अधिष्ठान चेतन सत्‌रूप है, सर्प और ताका

ज्ञान सत्से विलक्षण है. याते रज्जुसर्प और ताका ज्ञान अधिष्ठानचेतनते विपरीतस्वभाववाला, अन्यथा स्वरूप कहिये चेतनसे और प्रकारका आकार है.

मिथ्या सर्पका अधिष्ठान रज्जुउपहित चेतन है,रज्जु नहीं काहेते सर्पकी न्याईं रज्जु भी कल्पित है. कल्पितवस्तु अन्यकल्पितका अधिष्ठान बनै नहीं. याते रज्जुउपहितचेतनही अधिष्ठान है,रज्जु नहीं और रज्जुविशिष्टकूं अधिष्ठान कहैं तो भी रज्जु और चेतन दोनों अधिष्ठान होवेंगे तहां रज्जुभागमें अधिष्ठानपनाबाधित है याते रज्जुउपहितचेतनही अधिष्ठान है रज्जुविशिष्ट चेतन नहीं तैसे सर्पके ज्ञानका साक्षीचेतन अधिष्ठान है. या रीतिसे भ्रमस्थानमें विषयका और ताके ज्ञानका उपाधिभेदसे अधिष्ठान भिन्न है, एक नहीं और विशेषरूपते रज्जुकी अप्रतीति अविद्यामें क्षोभद्वारा दोनोंकी उत्पत्तिमें निमित्त है तैसे रज्जुका ज्ञान दोनोंकी निवृत्तिमें भी निमित्त कही है, याके विषे ऐसी शंका होवैहै.

रज्जुके ज्ञानतें सर्पकी निवृत्ति बनै नहीं. काहेते, मिथ्यावस्तुका जो अधिष्ठान होवे ता अधिष्ठानके ज्ञानते मिथ्याकी निवृत्ति होवै है, यह अद्वैतवादका सिद्धांत है; और मिथ्यासर्पका अधिष्ठान रज्जुउपहित चेतन है; रज्जु नहीं याते रज्जुके ज्ञान-

ते सर्पकीनिवृत्ति बनै नहीं या शंकाका यह समाधानहैः-

रज्जु आदिक जडपदार्थका ज्ञान अंतःकरणकी वृत्तिरूप होवै तहां आवरणभंग वृत्तिका प्रयोजन है.सो आवरण अज्ञानकी शक्ति है. याते आवरण जडके आश्रित है नहीं, किंतु जडका अधिष्ठान जो चेतन, ताके आश्रित है. याते रज्जु समानाकार अंतःकरणकी वृत्तिते रज्जु अवच्छिन्नचेतनकाही आवरण भंग होवै है. वृत्तिमें जो चिदाभास है,ताते रज्जु का प्रकाश होवै है. चेतन स्वयंप्रकाश है, तामें आभासका उपयोग नहीं. यह प्रक्रिया संपूर्ण आगे प्रतिपादन करेंगे. इस रीतिसे चिदाभाससहित अंतःकरणकी वृत्तिरूप ज्ञानमें जो वृत्तिभाग, ताका आवरणभंगरूप फल चेतनमें होवै है, और चिदाभासभागका प्रकाशरूप फल रज्जुमें होवै है. याते वृत्तिज्ञानका केवल जडरज्जु विषय नहीं. किंतु अधिष्ठानचेतनसहित रज्जु साभासवृत्तिका विषय है. इसीकारणते सिद्धांतग्रंथमें यह लिखा है-"अंतःकरणजन्य वृत्तिज्ञान सारे ब्रह्मकूं विषय करै है." या प्रकारसे रज्जु ज्ञानसे निवारण होयके सर्पका अधिष्ठानरज्जु अवच्छिन्न चेतनका भी निजप्रकाशते भान होवै है. याते रज्जु का ज्ञानही सर्पके अधिष्ठानका ज्ञान है. ताते सर्पकी निवृत्ति संभवै है. अन्य शंका-

यद्यपि या रीतिसे सर्पकी निवृत्ति रज्जु के ज्ञानते संभवै है, तथापि सर्पके ज्ञानकी निवृत्ति संभवै नहीं काहेते; सर्पका अधिष्ठान रज्जु अवच्छिन्न चेतन है. और सर्पके ज्ञानका अधिष्ठान साक्षी चेतन है. पूर्वउक्तप्रकारते रज्जु ज्ञानसे रज्जु अवच्छिन्नचेतनकाही भान होवै है, साक्षीचेतनका नहीं याते रज्जु का ज्ञान हुयेते भी सर्पज्ञानका अधिष्ठान साक्षीचेतन अज्ञात है. और अज्ञात अधिष्ठानमें कल्पितकी निवृत्ति होवे नहीं, किंतु ज्ञात अधिष्ठानमेंही कल्पितकी निवृत्ति होवै है याते रज्जुज्ञानते सर्पज्ञानकी निवृत्ति बनै नहीं, ताका समाधान यह है:–

विषयके अधीन ज्ञान होवै है. विषय जो सर्प, ताकी निवृत्ति होतेही सर्पके ज्ञानकी विषयके अभावते आपही निवृत्ति होवै है.

और जो ऐसे कहैः–कल्पितकी निवृत्ति अधिष्ठान ज्ञान विना होवे नहीं, और सर्पका ज्ञान भी कल्पित है, ताका अधिष्ठान साक्षीचेतन है; ताके ज्ञानविना कल्पितसर्पके ज्ञानकी निवृत्ति बनै नहीं.

ताका समाधान यह है:–निवृत्ति दो प्रकारकी होवै है. एक तौ अत्यंतनिवृत्ति होवै है, और दूसरी कारणमें

जो लय, सो भी निवृत्ति कहिये है.कारणसहित कार्यकी निवृत्ति अत्यंतनिवृत्ति कहिये है,सारे कल्पितवस्तुका कारण अधिष्ठानके आश्रितअज्ञान है. ता अज्ञान सहित कल्पितकार्यकी निवृत्ति तौ अधिष्ठानज्ञानतेही होवै है. परंतु कारणमें लयरूप जो निवृत्ति, सो अधिष्ठान ज्ञानविना भी होवै है. जैसे सुषुप्ति और प्रलयमें सर्वपदार्थनका अज्ञानमें लय अधिष्ठानज्ञानसे विना होवै है, तहां सर्वपदार्थनके लयमें निमित्त, भोगके सन्मुख कर्मका अभाव है. तैसे अधिष्ठान साक्षीके ज्ञानबिनाही सर्पज्ञानका लय होवै है. तहां सर्पज्ञानका विषय जो सर्प ताका अभाव सर्पज्ञानके लयमें निमित्त है. या प्रकारसे सर्पकी निवृत्ति रज्जु ज्ञानते होवैहै. और सर्पज्ञानका विषय जो सर्प; ताके अभावते सर्पज्ञानका लय होवैहै.

अथवा, सर्प और ताका ज्ञान दोनोंकी निवृत्ति रज्जुज्ञानतेही होवै है काहेतें, जब रज्जुका प्रत्यक्षज्ञान होवै तब अंतःकरणकी वृत्ति नेत्रद्वारा निकसिके रज्जुदेशमें प्राप्त होवै है.और रज्जुके समान वृत्तिका आकार होवै है. याते रज्जुके प्रत्यक्षसमय वृत्ति उपहितचेतन और रज्जुउपहितचेतन दोनों एक होवै हैं. तिनका भेद रहै नहीं यामें यह हेतु है. चेतनका स्वरूपसे तौ

भेद कहूं भी नहीं किंतु उपाधिके भेदसे चेतनका भेद होवै है वृत्तिउपहितचेतन और रज्जुउपहितचेतनका भेदक उपाधि, वृत्ति और रज्जु है. सो वृत्ति और रज्जु भिन्न भिन्न देशमें स्थित होवे,जब तौ उपाधिवाले चेतनका भेद होवै है और दोनों उपाधि एक देशमें स्थित होवैं, तब उपहितचेतनका भेद बनै नहीं. यह वार्ता वेदांतपरिभाषादिक ग्रंथनमें लिखी है. भिन्नदेश में स्थित उपाधितेही उपहितचेतनका भेद होवै.एक देशमें जब दोनों उपाधि स्थित भी होवें,तब दोऊ उपाधिसे उपहित भी चेतन एकही होवै है. या प्रकारते रज्जुके प्रत्यक्षज्ञान समय रज्जुउपहित चेतन और वृत्तिउपहित चेतन एक है. तहां साक्षीचेतनही वृत्तिउपहितचेतन है काहेते अंतःकरण और ताकी वृत्तिमें स्थित जो तिनका प्रकाशक चेतन मात्र, सो साक्षी कहिये है. इसरीतिसे रज्जुज्ञान समय साक्षी चेतन और रज्जुउपहित चेतनका अभेद होवै है.और रज्जुउपहित चेतनका रज्जुज्ञानसे भान होवै है और रज्जुउपहितचेतनसे अभिन्न साक्षीका भी रज्जुज्ञानसे भान होवै है. या प्रकारते रज्जुज्ञान समय अधिष्ठान साक्षीका भान होनेते कल्पित सर्पज्ञानकी निवृत्ति संभवै है. किंवाः—

कूटस्थदीपमें विद्यारण्यस्वामीने यह प्रक्रियाकहीहैः—"आभाससहित अंतःकरणकी वृत्ति इंद्रियद्वारा

निकसि के घटादिक विषयकूं प्रकाशै है. घटादिक विषय, और तैसे आभास सहित वृत्तिरूप तिनका ज्ञान, तथा आभाससहित अंतःकरण रूप ज्ञाता, इनतीनोंकूं साक्षी प्रकाशै है" "यह घट है" इसरीतिसे आभाससहित वृत्तिसे घटमात्रका प्रकाश होवै है. "मैंघ-टकूं जानूं हूं" या रीतिसे "मैं" शब्दका अर्थ ज्ञाता और ज्ञेय घट, और ताका ज्ञान या त्रिपुटीका साक्षी-से प्रकाश होवै है, या प्रकारते सर्वत्रिपुटियोंका प्रकाशक साक्षी है. साक्षीआप अज्ञात होवै, तो त्रिपु-टीका ज्ञान साक्षीसे बनै नहीं. याते सर्वत्रिपुटियोंके ज्ञानमें साक्षीका ज्ञान अवश्य होवैहै.ता साक्षीज्ञानतें सर्पज्ञानकी निवृत्ति संभवै है या पूर्वरीतिसे सर्प और ताके ज्ञानका अधिष्ठान भिन्नभिन्न कहा. तामें इतने शंका समाधान हैं, या पक्षमें शंका समाधान रूप विवाद और भी बहुत हैं. याते सर्प और ताके ज्ञानका अधिष्ठान एकही है. यह पक्ष कहै हैं:—तहां बाह्य जो रज्जुचेतन है, ताकूं सर्प और ताके ज्ञानका अधिष्ठान कहैं तो बनै नहीं. काहेते, जितने ज्ञान होवै हैं, सो प्रमाता अथवा साक्षीके आश्रित होवै हैं. बाह्य जो रज्जुचेतन, ताके आश्रित ज्ञान बनै नहीं. तैसे सर्प और सर्पके ज्ञानका अधिष्ठान

अंतःकरण उपहित साक्षीचेतनकूं मानैं, तो शरीरके अंतर अंतःकरणदेशमें सर्पकी प्रतीति चाहिये;रज्जुदेशमें सर्पकी प्रतीति नहीं चाहिये. अंतर उपजे सर्पकी बाहिर प्रतीति मायाके बलते मानैं, तौ आत्मख्यातिमतकी सिद्धि होवैगी. इसरीतिसे रज्जुउपहित चेतन ज्ञानका अधिष्ठान बनै नहीं. और अंतःकरणउपहित चेतन सर्पका अधिष्ठान बनै नहीं. यातैं सर्प और ताके ज्ञानका अधिष्ठान एक नहीं बनै,तथापि रज्जुके समीप प्राप्त जो अंतःकरणकी इदमाकारवृत्ति, तामें स्थित चेतनके आश्रित अविद्या, सर्पाकार और ज्ञानाकार परिणामकूं प्राप्त होवै है. वृत्तिउपहित चेतनमें स्थित अविद्याका तमोगुण अंश सर्पका उपादानकारण है. सर्प और ताके ज्ञानका वृत्तिउपहित चेतन अधिष्ठान है. वृत्ति रज्जुदेशमें बाहिर गई, याते वृत्तिउपहित चेतन भी बाहिर है. याते सर्पका आश्रय बनै है. जितना अंतःकरणका स्वरूप होवे, उतनाही साक्षीका स्वरूप होवै है. शरीरके अंतर स्थित जो अंतःकरण, सोई वृत्तिस्वरूपपरिणामकूं प्राप्त होवै है. याते वृत्तिउपहित चेतन साक्षी है. याते ज्ञानका आश्रय बनै है.रज्जुका जब साक्षात्कार होवे, तब रज्जुचेतन और वृत्तिचेतन दोनों एक होवैं हैं. याते रज्जुके ज्ञानसे सर्प और ताके ज्ञानकी निवृत्ति भी बनै है.

जहां एक रज्जुमें दशपुरुषनकूं किसीकूं सर्प, किसीकूं दंड, किसीकूं माला, किसीकूं पृथिवीकी दरार, किसीकूं जलधारा, इसरीतिसे भिन्न २ प्रतीति होवै, अथवा, सर्वकूं सर्पही प्रतीत होवे. तहां जा पुरुषकूं रज्जुका साक्षात्कार होवै है, ताकी वृत्ति चेतनमें कल्पित अध्यासकी निवृत्ति होवे है. जाकूं रज्जुज्ञान नहीं होवे, ताके अध्यासकी निवृत्ति होवै नहीं. याते वृत्तिचेतनही कल्पितका अधिष्ठान है, रज्जुआदिकविषय उपहितचेतन नहीं. जो रज्जुउपहित चेतनकूं सर्पदंडादिकनका अधिष्ठान मानैं तौ दश पुरुषनकूं प्रतीत जो होवें दश पदार्थ, सो एक एककूं सारे प्रतीत हुये चाहिये. और हमारी रीतिसे तौ जाकी वृत्तिचेतनमें जो पदार्थ कल्पित है, सो ताहीकूं प्रतीत होवै, अन्यकूं नहीं. इस रीतिसे बाह्य सर्पादिक और तिनके ज्ञानका वृत्तिउपहित साक्षी अधिष्ठान है. स्वप्नके पदार्थ, और तिनके ज्ञानका भी अंतःकरण उपहित साक्षीही अधिष्ठान है. या प्रकारते सत् असत्से विलक्षण जो अनिर्वचनीय अविद्याका परिणाम अनिर्वचनीयसर्पादिक तिनकी ख्याति कहिये प्रतीति और कथन, सो अनिर्वचनीयख्याति कहिये है ॥ ६० ॥

शिष्य उवाच-दोहा।

यह मिथ्या परतीत है, जामें जगत अपार ॥
सो भगवान मोकूं कहो, को याकौ आधार ॥ ६१ ॥

अर्थ स्पष्ट ॥ ६१ ॥

श्रीगुरुरुवाच—दोहा ।

तव निजरूप अज्ञानतें, है मिथ्या जग भान॥
अधिष्ठान आधार तू, रज्जुभुजंग समान ॥ ६२ ॥

टीका–हे शिष्य! तेरा जो निजरूप कहिये ब्रह्मरूप करिके अज्ञान, तिससे मिथ्या जगत् प्रतीत होवै है याते जगत्का आधार और अधिष्ठान तू है. जैसे रज्जुके अज्ञानते मिथ्या भुजंग प्रतीत होवै है, तहां मिथ्याभुजंगका आधार और अधिष्ठान रज्जु है यद्यपि मिथ्यासर्पका अधिष्ठान मुख्य द्वितीयपक्षमें वृत्तिउपहित चेतन है, और प्रथम पक्षमें रज्जुउपहित चेतन है. किसी पक्षमें रज्जुअधिष्ठान नहीं; तथापि प्रथमपक्षमें चेतनमें अधिष्ठानपनेकी उपाधि रज्जु है. याते स्थूलदृष्टिसे रज्जु अधिष्ठान कहिये है. जैसे मिथ्याभुजंगका अधिष्ठान तथा आधार रज्जु है, तैसे मिथ्याजगत्का अधिष्ठान और आधार तू है.

या स्थानमें यह रहस्य है:—जैसे जेवरीके दो स्वरूप हैं एक तो सामान्यरूप है दूसरा एक विशेषरूप है, १

सामान्य रूप"इदं"है.२ विशेषरूप"रज्जु"है १ यह सर्प है"या रीतिसे मिथ्या सर्पसे अभिन्न होयके भ्रांतिकालमें भी प्रतीत होवै जो"इदंरूप"सो सामान्यरूपहै.औरजो स्वरूपकी भ्रांतिकालमें प्रतीति न होवै. किंतु जाकी प्रतीति हुयेते भ्रांति दूरिहोवे,सोरज्जुका विशेषरूप है तैसे आत्माके भी दो स्वरूप हैं.एक सामान्यरूप,दूसरा विशेषरूप. १ सद्रूप सामान्यरूप है.२असंगता कूटस्थता नित्यमुक्तादिक विशेषरूप हैं काहेते,"स्थूलसूक्ष्मसंघात है." यामें स्थूल सूक्ष्मसंघातकी भ्रांतिसमय भी मिथ्यासंघातसे अभिन्न होयके सद्रूप प्रतीत होवै है. याते आत्माका तत्स्व रूपसामान्यरूप है और स्थूलसूक्ष्मसंघातकी भ्रांतिसमय आत्माका असंग कूटस्थ नित्यमुक्तस्वरूप प्रतीत होवै नहीं, किंतु असंगादि स्वरूप आत्माकी प्रतीति हुयेते संघातभ्रांति दूरि होवै है, याते असंगता,कूटस्थता,नित्यमुक्तता, व्यापकतादिक विशेषरूप हैं. १सर्व भ्रांतिमें सामान्यरूप आधार कहिये है. और २ विशेषरूप अधिष्ठान कहिये है. १ जैसे सर्पका आश्रय जो जेवरी;ताका सामान्य "इदं" स्वरूप सर्पका आधार है और विशेष रज्जु स्वरूप अधिष्ठान है १ तैसे मिथ्याप्रपंचका आश्रय जो आत्मा ताका सामान्य सद्रूप प्रपंचका आधार है और२असंगतादि-

क विशेष रूप अधिष्ठान है.इसरीतिसे आधार और अधिष्ठानका सर्वज्ञात्म नाम मुनिने किंचित् भेद प्रतिपादन किया है.

शिष्य उवाच—दोहा।

भगवन्! मिथ्याजगत्को, द्रष्टा कहिये कौन ॥
अधिष्ठान आधार जो, द्रष्टा होय न तौन ॥ ९३ ॥

अर्थ स्पष्ट। भाव यह है:—जगत्का आधार और अधिष्ठान आत्मा है,याते जगत्का द्रष्टा आत्मासे भिन्न कह्या चाहिये,जैसे सर्पका आधार और अधिष्ठान जो रज्जु तासे भिन्न पुरुष सर्पका द्रष्टा है ॥ ९३ ॥

श्रीगुरुरुवाच-चौपाई।

मिथ्यावस्तु जगतमें जे हैं। अधिष्ठानमें कल्पित ते हैं॥
अधिष्ठानसो द्विविधपिछानहुइकचेतनदूजो जडजानहु॥
अधिष्ठान जडवस्तु जहां है। द्रष्टा ताते भिन्न तहां है॥
जहां होय चेतन आधारा। तहां न द्रष्टा होवैन्यारा ९५

अर्थ स्पष्ट। भाव यह है:—१ जहां जड अधिष्ठान होवै, तहां अधिष्ठानसे भिन्न द्रष्टाहोवै है.२जहां चेतन अधिष्ठान होवै तहां अधिष्ठान ही द्रष्टा होवै है.भिन्न नहीं ॥ ९५ ॥

दोहा।

चेतन मिथ्यास्वप्नको, अधिष्ठान निर्धार ॥
सोई द्रष्टा भिन्न नहिं; तैसे जगत विचार ॥ ९६ ॥

टीका–जैसे स्वप्नका अधिष्ठान साक्षीचेतन है,सोई स्वप्नका द्रष्टा है,तैसे जगत्का आत्मा ही अधिष्ठान है सोई द्रष्टा है, यह शंका और समाधान स्थूलदृष्टि से जेवरीकूं सर्पका अधिष्ठानमानिके कहैं हैं. और सिद्धांत मतमें तौ सर्पकाअधिष्ठान साक्षीचेतन है;सोई द्रष्टा है. याते सारे कल्पितका अधिष्ठानही द्रष्टा है. शंकासमाधान बन नहीं ॥ ९६ ॥

दोहा ।

इम मिथ्या संसारदुख, है तोमैं भ्रम भान ॥
ताकी कहा निवृत्ति तू, चाहै शिष्यसुजान॥ ९७ ॥

टीका–हे शिष्य! इसरीतिसे तेरेविषे संसाररूपी दुःख, मिथ्याही भ्रांतिसे प्रतीत होवै है ता मिथ्याकी निवृत्तिकी चाह बनै नहीं. दृष्टांतः–जैसे बाजीगरने किसी पुरुषकूं मिथ्याशत्रु मंत्रके बलसे दिखाया होवै, ताके मारनेविषे वह पुरुष उद्योग नहीं करता तैसे मिथ्या संसारकी निवृत्तिकी चाह बनै नहीं ॥९७ ॥

शिष्य उवाच–चौपाई ।

जग यद्यपि मिथ्या गुरुदेवा।तथापि मैं चाहूं तिहि छेवा॥
स्वप्नभयानकजाकूंभासै।करिसाधनजन जिमितिहि नासै
याते है जाते जग हाना। सो उपाय भाषो भगवाना ॥
तुमसमानसतगुरुनहिंआना।श्रवण फूंक दें बंचककाना ॥

टीका-हे भगवन्! आपने कहा जो "जगत् तेरेविषे मिथ्या रूप करिके है, और सत्यरूप करिके नहीं" सो यद्यपि सत्य है तथापि हे भगवन्! सो मिथ्यारूप करिके वा जा उपाय करिके मरणादिक संसार मेरे विषेभान न होवै, सो उपाय आप कहो. और आपने कहा था जो "मिथ्याकी निवृत्तिवास्ते साधन चाहिये नहीं" सो वार्ता भी सत्य है परंतु हे भगवन्! जाकूं मिथ्यापदार्थ भी दुःखका हेतु होवै, ताकूं वह मिथ्या भी साधनसे दूरि करना योग्य है. जैसे किसी पुरुषकूं प्रतिदिन भयानक स्वप्न आवते होवैं. सो मिथ्या भी हैं परंतु तिनके भी दूरि करनेकूं जप और पादप्रक्षालनादिक नानासाधन अनुष्ठान करैं हैं, तैसे यह संसार मिथ्या भी है परंतु जन्मादिक दुःखका हेतु मेरेकूं प्रतीत होवै है. याते संसारकी निवृत्ति चाहूहूं. आप कृपा करिके उपाय बतावो.॥५८॥ ॥५९॥

श्रीगुरुरुवाच-सोरठा।

सो मैं कह्यो बखानि, जो साधन तैं पूछियो ॥
निज हिय निश्चय आनि, रहै न रंचक खेदजग ॥६०

टीका-हे शिष्य! जो तैं जगत्रूपी दुःखकी निवृत्तिका साधन पूछ्या सो हम तेरेकूं प्रथमही कह दिया तिसविषे तूं दृढ निश्चय कर. ताते जगत्रूपी खेद रहैं नहीं ॥ ६० ॥

दोहा।

निज आतम अज्ञानते, है प्रतीत जग खेद ॥
नशै सु ताके बोधतैं, यह भाषत मुनि वेद ॥ ६१ ॥
जग मोमें नहिं "ब्रह्ममें," "अहं ब्रह्म" यहज्ञान ॥
सो तोकूं शिष मैं कह्यो, नहिं उपाय को आन ॥६२॥

टीका—हे शिष्य ! अपने आत्मस्वरूपके अज्ञानते जगत्‌रूपी खेद प्रतीत होवै है;सो आत्मज्ञानते मिटै है जो वस्तु जाके अज्ञानते प्रतीत होवै, सो ताके ज्ञानते मिटै है, यह नियम है. जैसे रज्जुके अज्ञानते सर्प प्रतीत होवै है, सो रज्जुके बोधते मिटै है, तैसे आत्मज्ञानते जगत् मिटै है, सो आत्मज्ञान हम कहि दिया, जगत् तौ मेरे विषे तीनकालमें है नहीं काहेतैं मिथ्या है,जो मिथ्यावस्तु होवै है,सो अधिष्ठानकी हानि नहीं करै है.जैसे मरीचिकाका जो जल है,सो पृथिवीकूं गीली नहीं करै है, तैसे "जगत् प्रतीत भी होवै है," परंतु मिथ्या है. कछु मेरी हानि करनेविषे समर्थ है नहीं और मैं "सत्-चित् आनंदरूप ब्रह्मस्वरूप हूं" ऐसा जो निश्चय, ताका नाम ज्ञान है सोई मोक्षका साधन है. और कोई नहीं सो ज्ञान हमने प्रथम उपदेश करिदिया ॥ ६२ ॥

दोहा।

कर्म उपासनते नहीं, जगन्निदान तम नाश ॥
अंधकार जिमि गेहमें, नश न विन परकाश ॥ ६३॥

टीका–हे शिष्य! जगत्का निदान कहिये उपादान कारण तम कहिये अज्ञान है. ता अज्ञानके नाशते जगत्का आपही नाश होय जावै है. काहेतें, उपादानके नाश हुये पीछे कारज रहै नहीं है ता अज्ञानका नाश केवल ज्ञान करिके है. कर्म और उपासना करिके नाश होवै नहीं. काहेते अज्ञानका विरोधी ज्ञान है, कर्म उपासना विरोधी नहीं. दृष्टांतः–जैसे गृहके विषे जो अंधकार है सो काहू क्रियासूं दूरि होवै नहीं केवल प्रकाशसे दूरि होवै है. तैसे अज्ञानरूपी जो अंधकार है, सो ज्ञानरूपी प्रकाशसे दूरि होवैहै, और काहू साधनसे नहीं ॥ ६३ ॥

दोहा।

भाष्यो शिष उपदेश मैं, जगभंजक हिय धारि ॥
जो यामें संशय रह्यो, सो तूं पूछविचारि ॥ ६४ ॥

शिष्य उवाच–चौपाई।

भोभगवनजोकछुतुमभाष्यो। सोसबसत्यजानिहिय राख्यो॥जगनिदान अज्ञान बखान्यो। ताकोभंजक ज्ञानपिछान्यो॥ज्ञानरूपवर्णनपुनिकीना। जगमिथ्या सो मैं भलचीना॥ सुखस्वरूप आतमपरकाश्यो। दया तिहारीसोंमुहिभास्यो॥पुनिभाष्यो तूं ब्रह्मस्वरूपं। यह मैं लख्यो न भेदअनूपं॥ यामैंमुहि, शंकाइकआवै। जीवब्रह्मको भेदजनावै ॥ ६७ ॥

टीका-हे भगवन्! आपने जो कहा, सो मैं आपके वचन सत्य जानूं हूँ. आपने कहा जो "जगत्का कारण अज्ञान है, ता अज्ञानके नाश करिके, जगत्की निवृत्ति ज्ञानकरिके होवै है; सो वार्ता मैं जानी. सो ज्ञानका स्वरूप आपने कहाः-जगत् मिथ्या है और जीव आनंदस्वरूप है. सो ब्रह्मसे भिन्न नहीं. किंतु ब्रह्मरूप है, ऐसे निश्चयका नाम ज्ञान है. ताकेविषे जगत् मिथ्या है और जीव आनंदस्वरूप है." यह वार्ता मैं जानी. परंतु "जीव ब्रह्म दोनों एक हैं." यह वार्ता नहीं जानी. काहेतैं, जीव ब्रह्मके भेदकूं जनावनेवाली शंका मेरे हृदयमें फुरै है ॥ ६७ ॥

अथ शंकाकी-चौपाई।

पुण्यपापका हूँ मैं कर्त्ता। जन्म मरण औसुख दुख धर्त्ता॥
और अनेक भाँति जग भासै। चहूँज्ञानअज्ञानजु नासै॥
जोयातेविपरीतस्वरूपा। ताकूं ब्रह्म कहत मुनि भूपा॥
कहोएकता कैसे जानूं। रूपविरुद्धहियेपहिचानूं ॥६९॥

टीका-हे भगवन्! मैं पुण्यपापका कर्त्ता हूं औरर तिनका जो फल जन्म मरण, और सुख दुःख तिनकूं धारणकरूं हूँ, और नानाप्रकारका जगत् मेरेविषे प्रतीत होवै है; और जगत्का कारण जो अज्ञान है, ताके दूरि करनेकूं मैं ज्ञान चाहूं हूँ. और ब्रह्मविषे न पुण्य

है, न पाप है. न जन्म है, न मरण है. न सुख है, न दुःख है और कोई क्लेश ब्रह्मविषे नहीं, और ज्ञानकी इच्छा नहीं है. याते ब्रह्मका और मेरा स्वरूप परस्पर विरुद्ध है. याते दोनोंकी एकता बनै नहीं. यद्यपि मेरेविषे भी जन्मादिक संसार परमार्थ करिके हैं नहीं, तथापि मिथ्या जो जन्मादिकहैं, सो मेरेकूं भ्रांतिसे प्रतीत होवै हैं और ब्रह्म मैं नहीं. यातैं इतना भेद है, एकता बनै नहीं.

अथ शंकाकी-चौपाई।

सुनहु गुरु दूजो पुनिसंशै। जीवब्रह्म एकत्व प्रनंशै ॥
एकवृक्षमें सम द्वै पच्छी।फलभोगै इकदूजो स्वच्छी७०॥
भोगरहित परकाश असंगा।वेद वचन यहकहत प्रसंगा॥
कर्म उपासनपुनि बहुभाखै। जीव ब्रह्म याते द्वय राखै॥

टीका-हे गुरो ! मेरे एक और संशय है, सो आप सुनो कैसा वह संशय है:-जासूं जीवब्रह्मकी एकताका निश्चय प्रनंशै कहिये दूरि होय जावै, सो संशय मैं आपकूं कहूँ हूँ आप सुनिके तिस संशयकूं दूरि करो. वेदविषे मैंने ऐसे देख्या है:-एक बुद्धिरूपी वृक्षमें दो पक्षी हैं, सो दोनों समान हैं तिनविषे एक तौ कर्मके फलकूं भोगै है, एक स्वच्छ कहिये शुद्ध है; भोग रहित है, असंग है. और ता भोगनेवालेकूं

प्रकाशै है. याके विषे एक भोगनेंवाला जीव प्रतीत होवै है, और दूसरा परमात्मा प्रतीत होवै है, याते उनकी एकता बनै नहीं.

और वेदके विषे कर्म और उपासना बहुत प्रकारके कहेहैं. सो जीव ब्रह्मकी एकताविषे निष्फल होय जावैंगे. काहेते जो आप जीवब्रह्मकी एकता कहो हो, सो ब्रह्मविषे जीवके स्वरूपकूं अंतरभाव कहो हो, अथवा जीवविषे ब्रह्मके स्वरूपकूं अंतरभाव कहो हो।जो कदाचित्, ब्रह्मविषे जीवके स्वरूपकूं अंतरभाव कहोगे; तौ जीवकूं ब्रह्मरूप होनेते अधिकारीका अभाव होवेगा याते कर्म और उपासना निष्फल होवैंगे. और जो जीव विषे ब्रह्मके स्वरूपका अंतरभाव कहोगे, तौ ब्रह्म, जीवरूप होनेते जाकी उपासना करिये है; ता उपास्यका अभाव होवेगा. याते उपासना निष्फल होवैगी. और कर्मका फल देनेवाला जो परमात्मा, ताका अभाव होवेगा; याते कर्म निष्फल होवैंगे और मीमांसक जो कहैं हैं, कर्मही ईश्वर है तिनसे ही फल होवै है सो वार्ता समीचीन नहीं. काहेते, जो कर्म हैं सो जड हैं तिनकूं फल देनेका सामर्थ्य बनै नहीं; याते कर्मका फल ईश्वरही देवैहै, या रीतिसे परमात्मा और जीवकी एकता बनै नहीं ॥ ७१ ॥

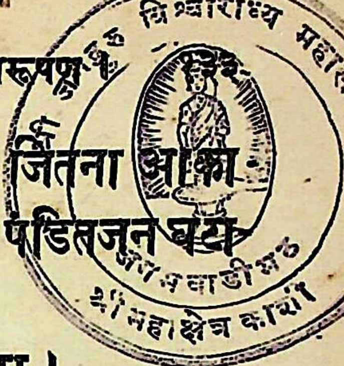
श्रीगुरुरुवाच-चौपाई।

सुनहु शिष्य इक कहूं विचारा। है जाते शंका निस्तारा॥
घटाकाश इक जल आकाशा। मेघाकाश महा आकाशा॥ ७२
च्यारि भेद ये नभके जानहु। पुनि चेतनके तथा पिछानहु॥
इक कूटस्थ जीव पुनि कहिये। ईश ब्रह्म हिय जाने रहिये॥
जब इनको तू रूप पिछानै। निज शंका तबही सब भानै॥
याते सुन इनको अब भेदा। नशै सुनत जन्मादिक खेदा॥

टीका-जो तेरेकूं शंका हुई है, तिसका निस्तार कहिये निराकरण जातैं होवै, सो विचार मैं कहूं हूं तूं सुन; जैसे एक आकाशमें च्यारि भेद हैं-१ घटाकाश है और २ जलाकाश है, और ३ मेघाकाश है, और ४महाकाश है. तैसे एक चेतनके च्यारि भेद हैं. एक कूटस्थ है और २ जीव है, और ३ ईश्वर है. और ४ ब्रह्म है. ये च्यारि भेद आकाशकी न्याई चेतन विषे हैं. हे शिष्य! जब इनके स्वरूपकूं तूं भलीप्रकारसे पिछानेगा, तब अपनी शंकाका तू आपही समाधान जानि लेवेगा. यातैं मैं इनका स्वरूप वर्णन करूं हूं तू सुन, जाकूं सुनिके संशयरहित ज्ञान होइके जन्मादिक दुःखका नाश होवेगा॥ ७२-७४॥

अथ घटाकाशवर्णन-दोहा।

जलपूरित घटकूं जु दे, जितनो नभ अवकाश॥
युक्तिनिपुण पंडित कहैं, ताकूं घट आकाश॥ ७५॥



टीका—हे शिष्य ! जलते भरे घटकूं जितना आकाश अवकाश देवै है, तितने आकाशकूं पंडितजन घटाकाश कहैं हैं ॥ ७५ ॥

अथ जलाकाश वर्णन—दोहा।

जलपूरित घटमैं जु पुनि, है नभको आभास ॥
घटाकाशयुत विज्ञजन, भाषत जल आकाश॥७६॥

टीका—हे शिष्य! जलसे भऱ्या जो घट है, ताकेविषे नक्षत्रादिसहित आकाशका प्रतिबिंब होवै है, सो आकाशका प्रतिबिंब और घटाकाश, दोनों मिले हुये जलाकाश कहिये है. याकेविषे, कोई शंका करै है, आकाशका प्रतिबिंब नहीं होवै है. किंतु केवल नक्षत्रादिकनकाही प्रतिबिंब होवै है. काहेते; आकाश स्वरूप करिके रहित है, और रूपवाले पदार्थका प्रतिबिंब होवै है. याते आकाशका प्रतिबिंब बनै नहीं। ऐसी शंका करै है ॥ ७६ ॥

ताके समाधानका—दोहा।

जो जलमैं आकाशको, नहिं प्रतिबिंब लखाइ ॥
थोरेमैं गंभीरता, है प्रतीत किहिं भाइ ॥ ७७ ॥
यातैं जलमैं व्योमको, लखि आभास सुजान ॥
रूपरहित जिमि शब्दतैं, है प्रतिध्वनिको भान ॥७८॥

टीका-जो जलके विषे आकाशका प्रतिबिंब नहीं होवै तौ गोडेपरिणाम जलविषे मनुष्यपरिणाम गंभीरताकी जो प्रतीति होवै है सो नहीं हुई चाहिये. याते आकाशका प्रतिबिंब अंगीकार करना योग्य है. और जो कहै है."रूपरहित पदार्थका प्रतिबिंब नहीं होवै है"सो भी नियम नहीं है. काहेतैं, रूपरहित जो शब्द है, ताकी प्रतिध्वनि होवै है, सो शब्दका प्रतिबिंब है.याते रूपरहित जो आकाश है,ताका भी प्रतिबिंब बनै है७८

अथ मेघाकाश वर्णन-दोहा ।

जो मेघहि अवकाश दे, पुनि तामैं आभास ॥
तिन दोनोंकूं कहत हैं, बुधजन मेघाकास ॥७९॥

टीका-मेघ जो बादल, तिनकूं जो आकाश अवकाश देवै है और मेघके जलमें जो आकाशका प्रतिबिंब है, तिन दोनोंकूं मेघाकाश कहैहैं. याकेविषे कोई शंका करै है ॥७९॥

जो मेघ तो आकाशविषे हैं, तिनमें जल और आकाशका प्रतिबिंब दीखे विना कैसे जानेजावै हैं ताका समाधान-

दोहा ।

वर्षत मेघ अनंत जल, उदकसहित इहि हेत ॥
दक नहिं नभ आभास बिन; इमि प्रतिबिंबसमेत॥

टीका-यद्यपि मेघविषे जल और आकाशका प्रतिबिंब प्रत्यक्ष नहीं है, तथापि अनुमानकरिके जाने जावैं हैं मेघ जो जलकी वृष्टिकरै है, याते ऐसा अनुमान होवै है, जो मेघविषे जल है जो मेघविषे जल न होवे तौ जलकी वृष्टि मेघसे नहीं होवे और मेघविषे जल है, सो आकाशके प्रतिबिंबसहित है, काहेतैं जो जल होवै है, सो आकाशके प्रतिबिंब विना नहीं होवै है. याते मेघविषे जो जल है, सो भी आकाशके प्रतिबिंबवाला है. इसरीतिसे मेघविषे जल और आकाशके प्रतिबिंब-का अनुमान होवै है. उदक और दक ये दोनों जल के नाम हैं ॥ ८० ॥

अथ महाकाश वर्णन-दोहा।

बाहिर भीतर एकरस; व्यापक जो नभरूप ॥
महाकाश ताकूं कहैं, कोविद बुद्धि अनूप ॥ ८१ ॥

टीका-बाहिर और भीतर सारे एकरस व्यापक जो नभ कहिये आकाशका स्वरूप है, ताकूं अनूप कहिये अद्भुत बुद्धिवाले पंडित महाकाश कहे हैं ॥ ८१ ॥

दोहा।

चतुर्भांति नभके कहे, लक्षण श्रुति अनुसार ॥
अब चेतनके शिष्य सुन, जासूं लहै विचार॥८२॥

टीका—हे शिष्य! च्यारिप्रकारके आकाशके लक्षण कहे अब च्यारी भाँतिके चेतनके लक्षण सुन जाके सुनेते विचार कहिये विचारका फल ज्ञान प्राप्त होवे ॥ ८२ ॥

अथ कूटस्थवर्णन-दोहा।

मति वा व्यष्टि अज्ञानको, अधिष्ठान चैतन्य।
घटाकाश सम मानिये, सो कूटस्थ अजन्य॥८३॥

टीका—बुद्धि अथवा व्यष्टि अज्ञानका जो अधिष्ठान चेतन है सो कूटस्थ कहिये हैं. १ला पक्षमें बुद्धिसहित चेतन जीव है, ता पक्षमें बुद्धिका अधिष्ठान कूटस्थ हैं. और २जा पक्षमें व्यष्टिअज्ञानसहित चेतन जीव कहियं है, ता पक्षमें व्यष्टि अज्ञानका जो अधिष्ठान है, सो कूटस्थ कहिये है. या स्थानविषे यह सिद्धांत हैः—जीवपनेका जो विशेषण है, ताके अधिष्ठानका नाम कूटस्थ कहिये है. सो कूटस्थ अजन्य है. उत्पत्तिसे रहित है याका अभिप्राय यह हैः—ब्रह्मसे न्यारा जैसे चिदाभास उत्पन्न होवै है, तैसे यह उत्पन्न नहीं हुआ. किंतु ब्रह्मरूपही है जैसे घटाकाश महाकाशसे न्यारा नहीं होय गया, किंतु महाकाशरूप है. यह जो कूटस्थ है सोई आत्मपदका लक्ष्य अर्थ है. और याहीकूं प्रत्यक् कहे हैं और याहीकूं निजरूप कहैं हैं. और यही जीव साक्षी है ॥ ८३ ॥

अथ जीववर्णन-दोहा।

काम कर्मयुत बुद्धिमें, जो चेतन प्रतिबिंब ॥
जीव कहै विद्वान तिहिं, जलनभतुल्य सबिंब ॥८४॥

टीका-नाना काम्य और कर्मसहित जो बुद्धि है, तामें जो चेतनका प्रतिबिंब है,ताकूं विद्वान कहिये ज्ञानी,जीव कहैं हैं.सो केवल प्रतिबिंबमात्रकूं जीव नहीं कहैं हैं; किंतु जैसे घटाकाशसहित आकाशके प्रतिबिंबकूं जलाकाश कहैं हैं. तैसे सबिंब कहिये बिंब जो कूटस्थ, ता सहित चिदाभासकूं जीव कहैं हैं.यातैं यह सिद्धांत हुवाः-बुद्धिमें जो चिदाभास और बुद्धिका अधिष्ठान चेतन, दोनों का नाम जीव है ॥८४॥

दोहा।

अधिष्ठान कूटस्थसे, है आभास बहाल ॥
रक्तपुष्प ऊपर धऱ्यो, स्फटिक होइ जिमि लाल॥८५॥

टीका-पूर्व दोहेविषे बिंब जो कूटस्थ तासहित आभासकूं जीव कह्या, याते यह प्रतीति होवैं हैः-जो बुद्धिमें प्रतिबिंब है सो कूटस्थका है;और बाहिरके ब्रह्मचेतनका नहीं. काहेते, जाका प्रतिबिंब होवे, सो बिंब कहिये है.सो कूटस्थकूं बिंब कह्या. याते ताका प्रतिबिंब है; यह प्रतीति होवै है. सो या दोहेसे प्रतिपादन करैं हैः- जैसे बडे लाल पुष्पके ऊपर धऱ्या

जो सफेद स्फटिक है ताके विषे फूलकी लालीकी दमक होवै है, सो लालफूलका प्रतिबिंब है, तैसे कूटस्थके आश्रित जो बुद्धि,ताकेविषे कूटस्थके प्रकाशकी दमक होवै है,जैसे स्फटिक अत्यंत उज्ज्वल है.तैसे बुद्धिभी अत्यंत शुद्ध है. काहेते बुद्धि सत्त्वगुणका कार्य है; याते कूटस्थकी दमकका नाम प्रतिबिंब है.

२ अथवा ब्रह्मचेतनका प्रतिबिंब है. जैसे महाकाशका घटके जलमें प्रतिबिंब होवैहै,और भीतरके आकाशका नहीं. काहेतैं जितनी गंभीरता जलविषे प्रतीत होवैहै, उतनी गंभीरता भीतरके आकाशमें है नहीं, सो गंभीरता आकाशका प्रतिबिंब है याते बाहिरके आकाशका प्रतिबिंब है. १ यह जो कहैं हैं," व्यापक चेतनका प्रतिबिंब बनै नहीं." सो आकाशके दृष्टांतसे शंका दूरि होवै है. काहेते, जो आकाश भी व्यापक है, और ताका प्रतिबिंब होवे है तैसे व्यापक चेतनका भी प्रतिबिंब बनै है.

और जो कहैं हैं. "रूपवाले पदार्थका रूपवाले पदार्थमें प्रतिबिंब होवे है," सो भी नियम नहीं है, काहेते रूपरहित शब्दका रूपरहित आकाशमें प्रतिबिंब होवै है, यह पूर्व कहि आए. याते चेतनका प्रतिबिंब बनै है.

इसरीतिसे बुद्धिमें आभास और बुद्धिका अधिष्ठान चेतन, दोनोंका नाम जीव है, यह कह्या १ सो जीव त्वंपदका वाच्य कहिये है, और २ताकेविषे चिदाभासका त्याग करिके केवल जो कूटस्थ है, सो त्वंपदका लक्ष्य कहिये है. और १ अहंशब्दका वाच्य भी जीव है. २केवल कूटस्थ अहं शब्दका लक्ष्य है ॥ ८५ ॥

दोहा ।

बुद्धिमाहिं आभास जो, पुण्य पाप फल भोग ॥
गमन आगमन सोकरै, नहिं चेतनमैं जोग ॥८६॥
मिथ्या नभ घट संग ज्यों, लहै क्रिया बहु भाँति ॥
घटाकाश अक्रिय सदा, रहै एकरस शांति ॥ ८७ ॥

टीका–यद्यपि जीव नाम चिदाभास और कूटस्थ दोनोंका है, तथापि जीवपनेके जो धर्म हैं, सो सारे आभासविषे हैं. पुण्य और पाप और पुण्य पापके फल सुख दुःख, और लोकांतरविषे गमन, और या लोकविषे आगमन, इसते आदिलेके सारे आभाससहित बुद्धि करै है. और कूटस्थ नहीं करै है. कूटस्थविषे केवल भ्रांतिसे प्रतीति होवैहै सो भ्रांतिसे प्रतीति भी बुद्धिसहित आभासकूं होवै है. कूटस्थकूं नहीं. काहेते १कूट, जो लुहारका अहरन ताकीन्याईं निर्विकाररूपसे स्थित होवै सो कूटस्थ कहियेहै. २ अथवा कूट कहिये

मिथ्या जो बुद्धि और चिदाभास, ताकेविषे असंगरूपसे स्थित होवै, सो कूटस्थ कहिये है. याते कूटस्थविषे भ्रांति आदिक बनै नहीं, किंतु चिदाभासमें बनै हैं.

और अत्यंत विचारसें देखिये तो पुण्य, पाप, सुख, दुःख लोकान्तरमें गमन और आगमन केवल बुद्धिमें हैं, आभासमें भी नहीं. बुद्धिके संयोगसे आभासमें हैं, जैसे जलसहित जो घट है, सो टेढा होवै है, और सीधा होवै है, और जावै आवै है, और ताके संबन्धसे व्योमका आभास संपूर्ण क्रिया करै है. और स्वतंत्र कछु भी नहीं करै है. तैसे काम्यकर्मरूपी जलसे भऱ्या जो बुद्धिरूपी घट है, सो पुण्यसे आदिलेके संपूर्ण विकार धारै है, और ताके संबंधसे चिदाभास धारै है. और कूटस्थ सर्व विकारसे रहित है. जैसे जलपूरित घटके विकारसे रहित घटाकाश है. ताकी न्याईं कूटस्थकूं जान, यातें जीवपनेके धर्म चिदाभासमें हैं, तथापि कूटस्थमें अज्ञानसे प्रतीत होवैं हैं. याते बुद्धिके विषे कूटस्थसहित जो चिदाभास सो जीव कहिये है ॥ ८६ ॥ ८७ ॥

यह जो जीवका स्वरूप वर्णन किया याके विषे प्राज्ञकी हानि होवै है. काहेते जो सुषुप्तिके अभिमानी जीवका नाम प्राज्ञ है, ता सुषुप्तिविषे बुद्धिका अभाव

होवै है यातैं बुद्धिमें आभासभी बनै नहीं. यातैं प्राज्ञके स्वरूपका प्रतिपादक जो शास्त्र है, ताका विरोध होवेगा इस कारणते जीवका स्वरूप और प्रतिपादन करैं हैंः–

दोहा।

अथवा व्यष्टिअज्ञानमैं, जो चेतन आभास।
अधिष्ठान कूटस्थयुत, कहै जीवपद तास ॥८८॥

टीका–१अज्ञानके अंशका नाम व्यष्टिअज्ञान कहिये है. और २ सम्पूर्ण अज्ञानका नाम समष्टिअज्ञानहै. ता अज्ञानके अंशविषे जो चेतनका आभास और अज्ञानके अंशका अधिष्ठान जो कूटस्थ है; तिन दोनोंकूं जीव-वपद कहैं हैं, याते प्राज्ञका अभाव नहीं होवै है. का-हेते, सुषुप्तिविषे अज्ञान रहै है. जो सुषुप्तिविषे चेतनके प्रतिबिंबसहित अज्ञानका अंश है, सोई बुद्धिरूपकूं प्राप्त होवै है. और चेतनका प्रतिबिंब साथही होवै है, ता चिदाभाससहित बुद्धिमें पुण्यादिक संसार प्रतीत होवै है.इस अभिप्रायते बुद्धिही कहूं शास्त्रनविषे जीव-पनेकी उपाधि वर्णन करी है और विचारदृष्टिसे जीव-पनेकी उपाधि अज्ञान है ॥ ८८ ॥

अथ ईशवर्णन-दोहा।

चितछाया मायाविषे, अधिष्ठान संयुक्त ॥
मेघव्योम सम ईश सो, अंतर्यामी मुक्त ॥ ८९ ॥

टीका-मायाके विषे जो चेतनकी छाया कहिये आभास और मायाका अधिष्ठान चेतन, दोनोंकूं ईश्वर कहे हैं सो ईश्वर मेघाकाशके सम है. १ सो ईश्वर अंतर्यामी है. काहेते, सर्वके अंतर प्रेरणा करै है, याते अंतर्यामी है. और २ सदा मुक्त है. काहेते वाकूं अपने स्वरूपमें आवरण नहीं, याते जन्ममरणादिक बन्धकी प्रतीति नहीं. इस हेतुते ईश्वर नित्यमुक्त है. और ३ सर्वज्ञ है, सर्व पदार्थके जाननेवाला है, याकेविषे यह हेतु है:-मायाविषे शुद्धसत्त्वगुण है. तमोगुण और रजोगुणसे दबा हुआ सत्त्वगुण नहीं होवै, किंतु रजोगुण और तमोगुणकूं आप दबावनेवाला होवै, सो शुद्ध सत्त्वगुण कहिये है. सत्त्वगुणसे ज्ञानकी उत्पत्ति होवै है याते प्रकाशस्वभाववाला सत्त्वगुण है. ऐसी सत्त्वगुणवाली मायाके विषे जो चेतनका आभास ताकूं स्वरूपविषे अथवा और पदार्थविषे आवरण संभवै नहीं याते मुक्त है, और सर्वज्ञ है, अधिष्ठान जो चेतन है सो तो जीव और ईश्वर दोनोंविषे बंधमोक्षभेदसे रहित है; आकाशकी न्याई एकरस है

परंतु आभास अंशविषे बंधमोक्ष है. अधिष्ठानविषे आभासकूं भ्रांतिसे प्रतीत होवै है. याते केवलआभासमें बंधमोक्षहै. तिसविषे भी इतना भेद हैः—१जा आभासमें आवरण है ताके विषे बंध है. २जाविषे स्वरूपका आवरण नहीं है, सो मुक्त हैं. १ईश्वरमें आवरण नहीं, याते ईश्वर सदामुक्त है. और २ जीवविषे आवरण है, सो बद्ध है. बद्धकहिये बँध्या हुवा है. काहेते जा अविद्याके अंशमें चेतनके आभासको जीव कह्या, ता अविद्याका आवरण करनेका स्वभाव है. यद्यपि १ अविद्या और २ अज्ञान और ३मायाएकहीवस्तुकूं कहैंहैं. तथापि शुद्धसत्वगुणकी प्रधानतासे माया कहिये है, और २–३ मलिन सत्वगुणकी प्रधानतासे अज्ञान और अविद्या कहे हैं, रजोगुण और तमोगुणसे दबा जो सत्वगुण है, सो मलिनसत्वगुण कहिये है याते तमोगुण और रजोगुणकी अधिकता होनेते अविद्यामें जो जीवका आभासअंश ताकूं अविद्या, स्वरूपका आवरणकरे है, याते जीवमें बंधन है. और ईश्वरमें नहीं. १ अधिष्ठानचेतनसहित जो मायामें आभासरूप ईश्वर है सो तत्पदका वाच्य कहिये हैं, २और केवल अधिष्ठानचेतन तत्पदका लक्ष्य है, जो ईश्वर है, सोई जगत्‌की उत्पत्ति और पालनऔर संहार करै है. यह संपूर्ण शास्त्रमें कह्या है ताका यह अभिप्राय

है:-चेतनअंश तौ आकाशकी न्याईं असंग है और आभासअंश जगत्की उत्पत्ति आदि करै है. और ताहीविषे सर्वज्ञता है. और भक्तजनके ऊपर अनुग्रह जो करै है, सो भी केवल आभासअंश करै है. और जो कछु ऐश्वर्य है, सो केवल आभासमें है. और चेतन अंश एकरस है, वाकेविषे सत्तास्फूर्ति देनेबिना और ऐश्वर्य बनै नहीं ॥ ८९ ॥

अथ ब्रह्मस्वरूप वर्णन-दोहा।

अंतर बाहिर एकरस, जो चेतन भरपूर ॥
विभु नभ सम सो ब्रह्म है, नहिं नेरे नहिं दूर ॥ ९० ॥

टीका-ब्रह्मांडके अंतर कहिये भीतर, और बाहिर जो महाकाशकी न्याईं भरपूर चेतन है, सो ब्रह्म कहिये है. सो ब्रह्म नेरे नहीं और दूरि नहीं काहेते जो वस्तु अपनेसे भिन्न होवै, और देशरूप उपाधिवाला होवै, सो नेरे और दूरि कहा जावैहै. ब्रह्म भिन्न नहीं किंतु सबका आत्मा है, और देशादिक सर्व उपाधिते रहित है, याते नेरे और दूरि नहीं कहा जावे, यद्यपि ब्रह्म शब्दका वाच्यभी सोपाधिक है. काहेते व्यापकवस्तु का नाम ब्रह्म है.सो व्यापकता दो प्रकारकीहै:-एकतो आपेक्षिकव्यापकता है, और एक निरपेक्षिकव्यापकता है. १ जो वस्तु किसी पदार्थकी अपेक्षासे व्यापक

होवै और किसीकी अपेक्षासे न होवे ताके विषे आपेक्षिकव्यापकता कहिये है. जैसे पृथ्वी आदिकी अपेक्षासे माया व्यापक है, और चेतनकी अपेक्षासे नहीं है. याते मायाविषे आपेक्षित व्यापकता है. और २ जो वस्तु सर्वकी अपेक्षासे व्यापक होवे. ताकेविषे जो व्यापकता, सो निरपेक्षिकव्यापकता कहिये है, सो निरपेक्षिक व्यापकता चेतनविषे है.काहेते चेतनके समान अथवा चेतनसे अधिक और कोई व्यापक है नहीं, किंतु चेतन ही सर्वसे व्यापक है, याते चेतनविषे निरपेक्षिकव्यापकता है. यह दोनों प्रकारकी व्यापकतासहित जो वस्तु है, सो ब्रह्मशब्दका वाच्य है.सो दोनों प्रकारकी व्यापकता मायाविशिष्टचेतनविषे है. काहेते,१ विशिष्ट विषे जो मायाअंश है, ताकेविषे तो आपेक्षिकव्यापकता है. और २ चेतन अंश विषे निरपेक्षिकव्यापकता है. यद्यपि मायाविशिष्ट चेतनविषे निरपेक्षिकव्यापकता बनै नहीं. काहेते; माया चेतनके एकदेशविषे है. ता मायाविशिष्ट चेतनसे शुद्ध चेतनकी व्यापकता अधिक है; याते शुद्धचेतनविषे निरपेक्षिकव्यापकता है; तथापि मायाविशिष्ट जो चेतन है; सो परमार्थ दृष्टि करिकै शुद्धिसे भिन्न नहीं किंतु शुद्धरूपही है, याते मायाविशिष्टमें

भी जो चेतनअंश है, ताकेविषे निरपेक्षिकही व्यापकता है. इसरीतिसे १ मायाविशिष्टही ब्रह्मशब्दका वाच्य बनै है. और २ शुद्ध चेतन ब्रह्म शब्दका लक्ष्य है याते ईश्वर शब्द और ब्रह्म शब्द दोनोंका समानही अर्थ प्रतीत होवै है; भिन्न अर्थ नहीं. तथापि १ ब्रह्मशब्दका तो यह स्वभाव है जो बहुत स्थानविषे लक्ष्य अर्थकूं बोधन करै है; और काहू स्थानविषे वाच्य अर्थकूं कहै है. और २ ईश्वर शब्दका यह स्वभाव है:- जो बहुत स्थानमें वाच्य अर्थका बोधन करै है; इतना भेद है. यातें लक्ष्य अर्थकूं लेके ब्रह्मशब्दका अर्थ भिन्न निरूपण किया है॥९०॥

दोहा।

चतुर्भांति चेतन कह्यो, तामें मिथ्या जीव॥
पुण्य पाप फल भोगवै, चित्कूटस्थ सुशीव॥९१॥

टीका-हे शिष्य! चारि प्रकारका चेतन कह्या, तामें जीवके स्वरूपमें जो मिथ्या आभासअंश है, सो पुण्य पाप करै है. और तिनके फलको भोगै है. और २ कूटस्थ जो चेतन है सो शीव कहिये शिवरूप है. शिव नाम कल्याणका है. याते प्रथम जो शंका करी थी; "जो बुद्धिरूपी वृक्षमें दो पक्षी हैं, एक परमात्मा और जीव" ताका यह उत्तर कह्या,

परमात्मा और जीवका ग्रहण नहीं करना किंतु कूटस्थ तो प्रकाशमान है;और आभास भोगे है ॥ ९१ ॥

दोहा।

कर्मी छाया देत फल, नहिं चेतनमें योग ॥
सो असंग इकरूप है, जानैं भिन्न कुलोग॥ ९२॥

टीका–जीवके स्वरूपमें जो चेतनकी छाया कहिये आभासअंश है,सो कर्मी कहिये कर्म करै है, ता कर्म करनेवालेकूं छाया जो ईश्वरका आभाशअंश है,सो फल देवै है,छाया शब्दका देहलीदीपकन्याय करिके पूर्व उत्तर दोनोंओरकूं संबंध है,जैसे देहलीके ऊपर धरचा जो दीपक है, सो दोनों ओरकूं प्रकाशै है.

"छाया कर्मी"और"छाया देत फल"याते यह वार्त्ता सिद्ध हुईः–जीवके स्वरूपमें जो आभासअंश है,सो तौ पुण्य पाप करै है, और तिनका फल भोगै है;और ईश्वरमें जो आभासअंश है, सो कर्मका फल देवै है. और दोनोंविषे जो चेतनअंश है;तिसविषेकिसी बातका योग नहीं. जीवमें जो चेतनअंश है,ताविषे तो कर्म और फलका योग नहीं. और ईश्वरमें जो चेतन-अंश है, तामें फल देनेका योग नहीं है. ता चेतनमें जो कहै है,सो मूर्ख है,काहेतैं चेतन दोनोंविषे असंग है, और एकरूप है,चेतनमें भेद नहीं जीवचेतनकूं जो ई-

श्वरचेतनसे अथवा ईश्वरचेतनकूं जो जीवचेतनसे भिन्न कहियेन्यारा जाने सो कुलोग कहिये निंदन करनेयोग्य लोग हैं. या कहनेते दूसरा जो प्रश्न कियाथा जो "जीव और परमात्माकी एकता अंगीकारकरनेसे कर्म और उपासनाका प्रतिपादक वेद निष्फल होवेगा"ताका उत्तर कह्या. जो जीव और ईश्वरमें चेतनभाग हैं,तिनका तो अभेद है, और आभासका भेद है.याते दोनोंप्रकारके वचन बनें हैं ॥ ९२ ॥

चौपाई ।

अहो शिष्य तैं प्रश्न जुकीने। तिनके ये उत्तर मैं दीने ॥
कहे जु तैं तरुमैं द्वैपक्षी।इक भोगै इक आहि अनिक्षी९३॥
ते चेतन आभास लखाये।नभछाया ज्यों भिन्न बताये ॥
कह्यो भिन्न कर्मी फलदाता।मति माया छायासो ताता९४
जीव ईशमैं चेतनरूपं । भेदगंधतैं रहित अनूपं ॥
यातैं"अहं ब्रम्ह"यह जानौं।"अहं"शब्दकूटस्थपिछानौं
"ब्रह्म" शब्दको अर्थसुभाख्यो।महाकाशसमलक्ष्यजुरा-ख्यो " अहंब्रह्म " नहिं जौलौं जानैं। तौलौं दीन दुखितभय मानैं ॥ ९६ ॥

टीका–हे शिष्य ! जो तैंने प्रश्न करे, तिनके मैं उत्तर कहे १ जो तैंने कह्याथा " एक वृक्षमें दो पक्षी हैं एक भोगै है, और एक इच्छाते रहितहै. याते जी-

वब्रह्मकी एकता बनै नहीं " याका हमने उत्तर कह्या जो "या स्थानमें जीवब्रह्मका ग्रहण नहीं करना किंतु कूटस्थ और बुद्धिमें जो आभास, तिनका ग्रहण करना. सो आपसमें घटाकाश और आकाशकी छायाकी न्याईं भिन्न हैं" और जो तैंने प्रश्न कियाथाः—"जीवतौ कर्मउपासना करनेवाला है, और परमात्मा फल देनेवाला है, तिनकी एकता बनै नहीं." याका भी हमने यह उत्तर कह्या जो " १ कर्म करनेवाला जीव नहीं है, और फल देनेवाला ईश्वर नहीं है, किंतु जीव में जो आभास अंश है सो करै है. २ ईश्वरमें जो आभासअंश है, सो फल देवै है. और जीव ईश्वरमें जो चेतन अंश है, सो घटाकाश महाकाशकी न्याईं भेदका जो गंध कहिये लेश, तासे रहित है" इसरीतिसे हे शिष्य ! जीव और ब्रह्मकी एकता बनै है. याते "अहं" कहिये " मैं ब्रह्म हूँ " ऐसे तू जान अहंशब्दका अर्थ तौ कूटस्थकूं पिछान और ब्रह्मशब्दका, जो महाकाशके सम लक्ष्य अर्थ कह्या है. सो जान "अहं" शब्दका और " ब्रह्म " शब्दका वाच्यअर्थका अभेद नहीं भी है परंतु लक्ष्य अर्थका अभेद है. और हे शिष्य ! १ जबलग तू " अहं ब्रह्मास्मि " ऐसे नहीं जानेगा, तबलग तू अपनेकूं दीन मानेगा

और दुःखी मानेगा. और २ न्यारा जो परमात्मा जान्या है, सो तेरेकूं भयका हेतु होवैगा. यातें "मैं ब्रह्म हूं" ऐसे जान । ९३-९६ ॥

तत्त्वदृष्टिरुवाच-दोहा

कहो गुरू है कौनकूं, "अहं ब्रह्म" यह ज्ञान॥
नहिं जानू मैं आपके, भाषे बिना सुजान ॥ ९७॥

टीका—हे गुरु ! आप कृपा करिके कहो. "अहं ब्रह्मास्मि" ऐसा ज्ञान किसकूं होवै है ? आपके कहेविना यह वार्त्ता मैं जानू नहीं हूं. शिष्यके चित्तमें यह गूढ़ अभिप्राय हैः—"मैं ब्रह्म हूं," ऐसा ज्ञान कूटस्थविषे होवै हैं, अथवा आभाससहित बुद्धिमें होवै है ? १ जो कूटस्थमें कहोगे, तौ कूटस्थविकारी होवेगा, और २ अभाससहित बुद्धिमें कहोगे तौ वाकूं "मैं ब्रह्म हूं." ऐसा ज्ञान भ्रांतिरूप होवैगा. काहेतें आपने ऐसा पूर्व कह्या जो "कूटस्थकी और ब्रह्मकी एकता है, और आभास भिन्न है." याते ब्रह्मसे भिन्न जो आभास ताका ब्रह्मरूपकरके जो ज्ञान सो भ्रांतिही होवेगा. जैसे सर्पतें भिन्न जो रज्जु, ताका सर्परूप करिके ज्ञान भ्रांति है. इस रीतिसे आभाससहित बुद्धिकूं "मैं ब्रह्म हूं" यह ज्ञान यथार्थ नहीं होवैगा. किन्तु भ्रांतिरूप होवैगा. और जो कदाचित् "अहं ब्रह्मास्मि" इस ज्ञानकूं भ्रांतिरूपही

अंगीकार करोगे, तौ या ज्ञानते मिथ्याजगत्की निवृत्ति नहीं होवैगी, किंतु यथार्थज्ञानसे मिथ्याकी निवृत्ति होवैहै.जैसे रज्जुके यथार्थज्ञानसे मिथ्यासर्पकी निवृत्ति होवै है. इसरीतिसे आभाससहित बुद्धिकूं "मैं ब्रह्म हूँ" यह ज्ञान बनै नहीं ॥ ९७ ॥

श्रीगुरुरुवाच-सोरठा।

कहूँ अवस्था सात, सुन शिष्य ब आभासकी ॥
नहिं चेतनकी तात, तिनहींमैं यह ज्ञान है ॥ ९८ ॥

टीका-हे शिष्य! अब आभासकी सात अवस्था मैं कहूं हूं सो तू सुनः-(अबकी ठौर बकार पढ्या है.) तिन सात अवस्थामें कोई भी चेतन जो कूटस्थ, ताकी नहीं है; और " मैं ब्रह्महूँ" यह ज्ञान भी तिन सातके भीतरही है ॥ ९८ ॥

अथ सप्तअवस्था नाम-चौपाई।

इकअज्ञानआवरणजानौ। भ्रांति द्विविधपुनि ज्ञान पिछानौ॥ शोकनाशअतिहर्षअपारा। सप्तअवस्था इमिनिर्धारा॥ ९९ ॥

अर्थ-स्पष्ट ॥ ९९ ॥

अथ १ अज्ञान और २ आवरणस्वरूप-वर्णन-दोहा।

नहिं जानूं मैं ब्रह्मकूं, याकूं कहत अज्ञान ॥
ब्रह्म है न नहिं भान है, यह आवरण सुजान १००॥

टीका-हे शिष्य ! १ "मैं ब्रह्मको नहीं जानू हूँ" यह जो पुरुष कहैं या व्यवहारका हेतु अज्ञान है. २ "ब्रह्म है नहीं, और भान नहीं होवै है" इस व्यवहारका हेतु आवरण है आवरणसे यह व्यवहार होवै है. काहेतें; दो प्रकारकी अज्ञानकी शक्ति है:- एक तौ असत्त्वापादक है और एक अभानापादक है तिन दोनोंको आवरण कहै हैं. "वस्तु नहीं है" ऐसी प्रतीति करावनेवाली जो शक्ति, सो असत्त्वापादक कहिये है. और वस्तुका भान नहीं होवै है, ऐसी प्रतीति करावनेवाली जो अज्ञानकी शक्ति, सो अभानापादक कहिये है. इस रीतिसे "ब्रह्म नहीं है" इस व्यवहारकी हेतु अज्ञानकी असत्त्वापादक शक्ति है और "ब्रह्म भान नहीं होवैहै" इस व्यवहारकी हेतु अज्ञानकी अभानापादक शक्ति है इन दोनोंका नाम आवरण है ॥ १०० ॥

अथ भ्रांतिवर्णन-दोहा ।

जन्ममरण गमनागमन, पुण्यपाप सुखखेद ॥
निजस्वरूपमैं भानहै, भ्रांति बखानी वेद ॥ १०१॥

टीका-जन्मसे आदिलेके जो संसार है, ताकी जो निजस्वरूप कहिये कूटस्थ प्रतीति, सो वेदमें भ्रांति कहिये है. और याहीकूं शोक कहैं हैं ॥ १०१ ॥

अथ द्विविधज्ञानवर्णन-दोहा।

द्वैविधज्ञान बखानिये, इक परोक्ष अपरोक्ष ॥
"अस्ति ब्रह्म" परोक्ष है, "अहं ब्रह्म" अपरोक्ष ॥
"नहीं ब्रह्म" या अंशको, करै परोक्ष विनाश ॥
सकल अविद्याजालकूं, दूजो नशै प्रकाश ॥ १०३ ॥

टीका-१ब्रह्म"नहीं है"याआवरणके अंशकूं"ब्रह्म है" ऐसा परोक्षज्ञान विनाशै है. काहेते"सत्य ज्ञान अनन्त रूप ब्रह्म है"ऐसा जो ज्ञान,ताका नाम परोक्षज्ञान है, सो "ब्रह्म नहीं है"ऐसी प्रतीतिका विरोधी है औरकानहीं.और"मैं ब्रह्म हूँ"ऐसा जो अपरोक्ष ज्ञान सो सकल अविद्याजालका विरोधी है.कारणते"मैं ब्रह्मकूं नहीं जानूं हूं" यह अज्ञान,और"ब्रह्म नहीं है" और "भान नहीं होवै है"यह आवरण;और"मैं ब्रह्म नहीं हूँ, किंतु पुण्यपापका कर्त्ता और सुख दुःखका भोक्ता जीव हूँ"यह भ्रांति;इतना जोअविद्याजाल है,ताकूं अपरोक्षज्ञान नाश करै है १०३॥

अथ भ्रांतिनाशवर्णन—दोहा।

जन्म मरण मोमैं नहीं, नहिं सुखदुखको लेश ॥
किंतु अजन्यकूटस्थमैं, भ्रांतिनाश यह वेश॥ १०४॥

टीका-१ मेरेविषे जन्म और मरण नहीं है.और २ सुख दुःखका लेश भी नहीं है. और ३ कोई भी संसारधर्म मेरेविषे नहीं है किन्तु ४ अजन्य कहिये जन्मसे

रहित जो कूटस्थ, सो "मैं हूं" हे शिष्य! इस रीतिसे सर्व अनर्थका जो निषेध यह भ्रांति नाशका वेष कहिये स्वरूप है. अथवा यह भ्रांतिनाश वेष कहिये उत्तम है या जगह कूटस्थमें जन्मका निषेध करनेते सर्वका निषेध जानि लेना. काहेते, जन्मप्रतीतिसे अनंतर और अनर्थ प्रतीति होवै है. याते जन्मके निषेधते सर्व अनर्थका निषेध है. यह जो भ्रांतिनाश है, याहीकूं शोकनाश भी कहैं हैं ॥ १०४ ॥

अथ हर्षस्वरूपवर्णन-दोहा।

संशयरहित स्वरूपको, होय जु अद्वयज्ञान ॥
तब उपजै हिय मोद तब, सो तू हर्ष पिछान १०५

टीका-हे शिष्य! जब तेरेकूं संशयरहित अपने स्वरूपका ऐसा ज्ञान होवेगा, जो "मैं अद्वय ब्रह्मरूप" हूं तब तेरेकूं जो मोद होवैगा; ताकूं तूं हर्ष पिछान ॥ १०५ ॥

दोहा।

कही अवस्था सात मैं, तोकूं शिष्य सुजान ॥
सो सगरी आभासकी, है तिनही मैं ज्ञान ॥१०६
"ज्ञान होत है कौनकूं," यह पूछी तैं बात ॥
मैं ताको उत्तर कह्यो, चहै सु पूछब तात ॥१०७॥

अर्थ-स्पष्ट है ॥ १०६ ॥ १०७ ॥

जा गूढ अभिप्रायतें प्रश्न कर्या था, ताकूं अब शिष्य प्रगट करैहै:–

दोहा।

भगवन है आभासकूं, "अहं ब्रह्म" यह ज्ञान ॥
तुम भाष्यो सो मैं लख्यो, पुनि शंका इक आन॥

चौपाई।

है आभास ब्रह्मतें न्यारा। अस तुम पूर्व कियो निर्धारा ॥ "अहं ब्रह्म" सो कैसे जानै। आपहि भिन्नब्रह्मतैं मानै॥जो जानैं तौ मिथ्या ज्ञाना। होइ जेवरी भुजग समाना ॥ श्रीगुरु यह संदेह मिटाऊ। युक्तिसहित निजउक्ति सुनाऊ ॥ ११० ॥

टीका–हे भगवन्! आपने यह पूर्व कह्या जोः– "कूटस्थ और ब्रह्म तौ दोनों एक हैं; और आभास ब्रह्मते न्यारा है," ता ब्रह्मसे भिन्न आभासकूं "मैं ब्रह्म हूं" ऐसा ब्रह्मरूप करिके ज्ञान बनै नहीं. १ मेरा अधिष्ठान जो कूटस्थ सो ब्रह्मरूप है, ऐसा जो आभासकूं ज्ञान होवे, तौ यथार्थ ज्ञान होवै, और २ "अहं ब्रह्म" यह ज्ञान यथार्थ नहीं बनै. काहेते, अहं नाम अपने स्वरूपका है. जाकूं मैं कहैं हैं. सो आभासका स्वरूप मिथ्या है. याते भिन्न है याते ब्रह्मसे भिन्न आभासका जो स्वरूप वाकूं ब्रह्मरूप करिके ज्ञान होवे, तौ मिथ्या

ज्ञान होवे. जैसे सर्पसे भिन्न जो जेवरी, ताका सर्परूपकरिके ज्ञान मिथ्या होवै है, मिथ्या नाम भ्रांतिका है, सो ब्रह्म ज्ञानकूं भ्रांति रूप कहना बनै नहीं ११०॥

दोहा।

" अहं शब्दके अर्थको, सुन अब शिष्य विवेक॥
तब हियके जासूँ नशैं, शंक कलंक अनेक १११॥

अर्थ–स्पष्ट है ॥ १११ ॥

है यद्यपि आभासमैं, "अहं ब्रह्म" यह ज्ञान ॥
तथापि सो कूटस्थको, लहै आप अभिमान ११२॥
ताको सदा अभेद है, विभुचेतनतै तात ॥
बाध समैं निज रूपहू,ब्रह्मरूप दरशात॥११३॥

टीका–हे शिष्य! यद्यपि" मैं ब्रह्म हूं" ऐसा ज्ञान बुद्धि सहित आभासकूं होवै है, और कूटस्थकूं नहीं, तथापि सो आभास कूटस्थकूं और अपने स्वरूपकूं दोनोकूं अपना आतमा जानै है. ता आत्माका मैं शब्द करिके ग्रहण होवै है सोई अहं शब्दका अर्थ है.

१ ता अहं शब्दमें भान होवै है कूटस्थ, ताका तो ब्रह्मके साथ सदा अभेद है जैसे घटाकाशका और महाकाशका सदा अभेद है इसी कारणते कूटस्थका ब्रह्मके साथ मुख्यसमानाधिकरण वेदांतशास्त्रमें कहा है. जा वस्तुका जा वस्तुके संग सदाअभेद होवै, ता

वस्तुका ताके संग मुख्यसमानाधिकरण कहिये हैं, जैसे—घटाकाशका महाकाशके संग सदा अभेद है. याते घटाकाश महाकाश है. इसरीतिसे घटाकाशका महाकाशके साथ मुख्य समानाधिकरणहै. इसरीतिसे कूटस्थका ब्रह्मके संग मुख्यसमानाधिकरण है.काहेते कूटस्थका ब्रह्मते सदा अभेद है याते मैं— शब्दमें भान जो होवै है कूटस्थ, ताका तो ब्रह्मके संग सदा अभेद है और २मैं शब्दमें भान जो होवै है आभास,ताका ब्रह्मसे अपने स्वरूपकूं बाधिके अभेद होवै है;जैसे मुखका जो प्रतिबिंब ताका बिंबस्वरूप मुखके संग प्रतिबिंब स्वरूपकूं बाधिक अभेद होवै है इसीकारणते वेदांतशास्त्रविषे आभासका ब्रह्मके संग बाधसमानाधिकरण कह्या है.जा वस्तुका बाध होइके जाके संग अभेद होइ, ता वस्तुका ताके साथ बाधसमानाधिकरण कहियेहै जैसे—मुखके प्रतिबिंबका बाध होयके मुखके साथ अभेद होवै है.याते प्रतिबिंब मुख है न्यारा नहीं ऐसा प्रतिबिंबका मुखके साथ बाधसमानाधिकरण है.

किंवा,जैसे स्थाणुमें पुरुषभ्रम होयके स्थाणुज्ञानसे अनंतर " पुरुष स्थाणु है" इसरीतिसे पुरुषका स्थाणुसे बाधसमानाधिकरण होवै है, तैसे आभासका बाध होइके ब्रह्मके साथ अभेद होवै है.

याते मैं शब्दविषें भान जो होवै आभास, सो ब्रह्म है न्यारा नहीं. ऐसा बाधसमानाधिकरण आभासका ब्रह्मके साथ होवै है इस रीतिसे हे शिष्य। १अहं शब्दमें भान जो होवै है कूटस्थ ताका तौ मुख्य अभेद है, और २आभासका बाध करिके अभेद है॥११३॥

तत्त्वदृष्टिरुवाच—दोहा।

अहंवृत्तिमें भान है, साक्षी अरु आभास॥
सो क्रमतें वाक्रमविना, याको करहु प्रकास॥११४॥

टीका–हे भगवन्! आपने कह्या जो "अहंवृत्तिमें साक्षी अरु आभास दोनोंका भानहोवै है" याके विषे मैं एक वार्ता नहीं जानूं हूं सो कूटस्थ और आभासका भान अहंवृत्ति विषे क्रमसे होवै है; अथवा क्रमसे बिना होवै है याका अर्थ यह है:–१क्रमसे कहिये भिन्न२ कालमें होवै है, अथवा दोनोंका एकही कालमें भान होवै है? याका आप मेरेकूं प्रकाश कहिये बोध करो. ॥११४॥

श्रीगुरुरुवाच–दोहा।

सावधान है शिष्य सुन, भाखूं उत्तर सार॥
सुनत नशै अज्ञानतम, बोध भानुउजियार॥११५॥

टीका–हे शिष्य! जो तैंने प्रश्न किया, मैं ताका सारभूत उत्तर कहूँहूं. तूं सावधान होइके सुन. कैसा

उत्तर है, याके सुनतेही बोधरूपी सूर्यका प्रकाश होयके अज्ञानरूपी तमकूं नाशै है॥ ११५॥

दोहा।

एकसमयही भान ह्वै, साक्षी अरु आभास॥
दूजो चेतनको विषय, साक्षी स्वयं प्रकास॥११६॥

टीका–हेशिष्य! एकही समय साक्षीका और आभासका अहंवृत्तिविषे भान होवै है. सारे प्रकरणविषे आभासशब्दसे अंतःकरणसहित आभासका ग्रहण करना याते १ दूजो कहियें अंतःकरणसहित जो आभास है, सो तौ चेतन जो साक्षी, ताका विषय होइके भान होवै है. और २ साक्षी स्वयंप्रकाशरूप करिके भान होवै है. और अंतःकरणकी जो आभाससहित वृत्ति, ताका विषय साक्षी नहीं. और घटादिक बाहिरके पदार्थनविषे तो ऐसी रीति है:–जब इंद्रियका और घटका संयोग होवै; तब इंद्रिय द्वारा अंतःकरणकी वृत्ति निकसिके घटके समान आकारकूं प्राप्त होवै है. जैसे मूषामें गऱ्या जो ताम्र, ताका मूषाके आकारके समान आकार होवै है, तैसे, अंतःकरणकी वृत्तिका भी घटके आकारके समान आकार होवै है. सो वृत्ति, आभास विना नहीं होवै है, किंतु आभाससहित होवै है. काहेते वृत्ति अंतः-

करणका परिणाम है. अंतःकरणका जो परिणाम ताकूं वृत्ति कहैं हैं.जैसे अंतःकरण सत्त्वगुणका कार्य होनेते स्वच्छ है, याते अंतःकरण विषे चेतनका आभास होवै है तैसे वृत्ति भी स्वच्छ अन्तःकरणका कार्य है याते वृत्तिविषे चेतनका आभास होवै है. और वृत्ति जो उत्पन्न होवै है, सो आभाससहित अंतःकरणसे उत्पन्न होवै है. इस कारणते भी वृत्ति आभाससहितही होवै है और विषय जो घट है, सो तमोगुणका कार्य है, यातें स्वरूपसे जड है,और ताकेविषे अज्ञान और ताका आवरण है. यामें यह शंका होवै है:—अज्ञान और ताका आवरण विचारदृष्टिसे चेतनविषे हैं. घटविषे नहीं. काहेते, १अज्ञान चेतनके आश्रित है, और २ चेतनहीकूं विषय करै है, यह वेदांतका सिद्धांत है. और१सात अवस्थाके प्रसंगमें जो अज्ञानका आश्रय अंतःकरणसहित आभास कह्या, सो अज्ञानका अभिमानी है, "मैं अज्ञानी हूं" ऐसा अभिमान अंतःकरणसहित आभासकूं होवै है. इस कारणते अज्ञानका आश्रय कहिये है. और मुख्य आश्रय चेतन है. आभाससहित अंतःकरण नहीं काहेते, आभाससहित अंतःकरण अज्ञानका कार्य है. जो जाका कार्य होवै है, सो ताका आश्रय बनै

नहीं यातें चेतनही अज्ञानका अधिष्ठान रूप आश्रय है. और चेतनहीकूं अज्ञान विषय करै है. स्वरूपका जो आवरण करना सोई अज्ञानका विषय करना है; सो अज्ञानकृत आवरण जडवस्तुविषे बनै नहीं. काहेते, जडवस्तु स्वरूपसेही आवृत है वाके विषे अज्ञानकृत आवरणका कछु उपयोग नहीं इस रीतिसे अज्ञानका आश्रय और विषय चैतन्य है; जैसे गृहके मध्य जो अंधकार है, सो गृहके मध्यकूं आवरण करैहै याते घटके विषे अज्ञान और ताका आवरण बनै नहीं. ताका यह समाधान है.

जैसे चेतनके स्वरूपसे भिन्न सत् असत्से विलक्षण अज्ञान चेतनके आश्रित है, ता अज्ञानसे चेतन आवृत होवै है तैसे घटके स्वरूपसे भिन्न अज्ञान यद्यपि घटके आश्रित नहीं है, तथापि अज्ञानसे घटादिक, स्वरूपसे प्रकाशरहित जडस्वरूप रचै है. यातें सदाही अंधके समान आवृत है. सो आवृतस्वभाव घटादिकनका अज्ञानने किया है. काहेतें, तमोगुणप्रधान अज्ञानसे भूतकी उत्पत्तिद्वारा घटादिक उपजें हैं. सो तमोगुण आवरणस्वभाववाला है, यातैं घटादिक प्रकाशरहित अंध ही होवैं हैं. इसरीतिसे अंधतारूप आवरण घटादिकनमें अज्ञानकृत स्वभाव-

सिद्ध है. और घटादिकनके अधिष्ठान चेतन आश्रित अज्ञान चेतनकूं आच्छादित करिकै स्वभावसे आवृत घटादिकनकूं भी आवृत करैहै यद्यपि स्वभावसे आवृत-पदार्थके आवरणमें प्रयोजन नहीं है,तथापि आवरण-कर्ता पदार्थ प्रयोजनकी अपेक्षासे विनाही निरावरणकी न्याईं आवरणसहितमें भी आवरण करै है, यह लोकमें प्रसिद्ध है. ता अज्ञानसे आवृत घटकूं व्याप्त जो होवै है. अंतःकरणकी आभाससहित घटाकारवृत्ति तामें १ वृत्तिभाग तौ घटके आवरणकूं दूरि करै है, और २ वृत्तिमें जो आभासभाग है, सो घटका प्रकाश करै है.इसरीतिसे बाहिरके पदार्थविषे वृत्ति और आभास दोनोंका उपयोग है.

दृष्टांत।

जैसे अंधकारमें कूंडेसे मृत्तिका अथवा लोहका पात्र ढका धरा होवै, तहां दंडसे कूंडेकूं फोड़े बिगैर पीछे दीपकविना उस निरावणपात्रका भी प्रकाश होवै नहीं, किंतु दीपकसे प्रकाश होवै है तैसे अज्ञानसे आवृत जो घट, ताके आवरणकूं वृत्तिभंग भी करै है, तथापि घटका प्रकाश होवै नहीं काहेतैं, घट तो स्वरूपसे जड़ है और वृत्ति भी जड है, ताका आवरणभंगमात्र प्रयो-जन है तासे प्रकाश होवै नहीं. यातैं घटका प्रकाशक

आभास है. नेत्रका विषय जो वस्तु है; ताके प्रत्यक्ष-ज्ञानकी यह रीति कही. और श्रवणादिकका जो विषय है, ताके प्रत्यक्षकी भी रीति ऐसेही जानि लेनी.

१ वृत्ति और घट दोनों: एकदेशमें स्थित होनेतैं घटका ज्ञान प्रत्यक्ष कहिये है. और २ अंतःकरणकी वृत्ति तौ घटाकार होवै, और घटके संग वृत्तिका संबंध न होवै. किंतु अंतरही वृत्ति होवै सो घटका परोक्षज्ञान कहिये है. १ "यह घट है" ऐसा अपरोक्षज्ञानका आकार है. और २ "घट है" अथवा "सो घट है" ऐसा परोक्षज्ञानका आकार है, यद्यपि स्मृतिज्ञान भी परोक्षज्ञानही है, तथापि स्मृतिज्ञान तौ संस्कारजन्य है, और अनुमितिआदिक परोक्षज्ञान प्रमाणजन्य हैं, इतना भेद है. प्रमाणके प्रसंगसे हम प्रमाण निरूपण करैं हैं.

१ चार्वाक जो हैं, सो एक प्रत्यक्षप्रमाण अंगीकार करैं हैं और २ कणाद और सुगतमतके जो अनुसारी हैं, सो दूसरा अनुमान प्रमाणभी अंगीकार करैं हैं. काहेतैं, एक प्रत्यक्षही प्रमाण अंगीकार करैं तौ तृप्तिके अर्थीकी भोजनविषे प्रवृत्ति नहीं होवैगी. काहेतैं, अभुक्तभोजनविषे तृप्तिकी हेतुताका प्रत्यक्षप्रमाणजन्य प्रत्यक्षज्ञान है नहीं. यातैं भुक्तभोज-

नमें अनुभव जो करी है तृप्तिकी हेतुता, सो अभुक्तभोजनमें भी अनुमानसे जानिके तृप्तिके अर्थीकी भोजनमें प्रवृत्ति होनेतें अनुमानप्रमाण भी अंगीकार करना चाहिये इसरीतिसे कणाद और सुगतमतके अनु ारी प्रत्यक्ष और अनुमान दो प्रमाण अंगीकार करैहैं. और,

सांख्यशास्त्रका कर्ता जो कपिल हैं; ताके मतके अनुसारी तीसरा शब्दप्रमाण भी अंगीकार करैं हैं. काहेतें, जो प्रत्यक्ष और अनुमान दोही प्रमाण अंगीकार करैंतौ देशांतरविषे जाका पिता मरिगया होवे, ताकूं कोई यथार्थवक्ता आइके कहै, "तेरा पिता मरिगया है" तब श्रोताकूं पिताके मरनेका निश्चय नहीं हुवा चाहिये, काहेते, देशांतरविषे स्थित पिताके मरणका ज्ञान प्रत्यक्ष और अनुमानकरिकै बनै नहीं, इसरीतिसे कपिलमतके अनुसारी प्रत्यक्ष और अनुमान और शब्द तीन प्रमाण अंगीकार करैं हैं और,

न्यायशास्त्रका कर्त्ता जो गौतम है, ताके मतके अनुसारी उपमान भी चतुर्थप्रमाण अंगीकार करैं हैं. काहेतें, प्रत्यक्ष आदिक तीनही प्रमाण अंगीकार करैं, तौ जा पुरुषने गवय नहीं देखाहै, और वनवासीपुरुषसे ऐसा श्रवण किया है– "गौके सदृश गवय होवै है." सो पुरुष जो वनमें चला जावे, और गवयकूं देखलेवे

तब ताकूं वनवासी पुरुषने कह्या जो "गौके सदृश गवय होवै है" यह वाक्य; ताके अर्थका स्मरण होवैहै. ता स्मृतिसे अनंतर पुरुषकूं ऐसा ज्ञान होवै है-"यह पशु गवय है." ऐसा ज्ञान नहीं हुआ चाहिये. यातें ऐसे विलक्षण ज्ञानका हेतु उपमानप्रमाण भी अंगीकार करैं हैं. और-

पूर्वमीमांसाका एकदेशी जो भट्टका शिष्य प्रभाकर है, सो पंचम अर्थापत्तिप्रमाण भी अंगीकार करै है. दिनमें भोजनत्यागीपुरुषकूं स्थूल देखिकै ऐसा ज्ञान होवैहै-"यह पुरुष रात्रिकूं भोजन करै है" तहां रात्रि-भोजनविना दिनमें भोजनत्यागीके विषे स्थूलत बनै नहीं यातें रात्रिभोजनका, स्थूलता संपाद्य है. रात्रिभोजन संपादकहै. संपादक जो रात्रिभोजन, ताका ज्ञानका हेतु स्थूलताका ज्ञान अर्थापत्ति प्रमाण कहिये है और-

पूर्वमीमांसक जो भट्ट है, सो षष्ठ अनुपलब्धिप्रमाण भी अंगीकार करै है. और वेदांतशास्त्रविषे भी षट् प्रमाण अंगीकार किये हैं. अनुपलब्धिप्रमाणका प्रयोजन यह है-गृहादिकनमें घटादिकनके अभावका ज्ञान होवै है. तहां जा पदार्थकी प्रतीति नहीं होवैहै ताके अभावकाज्ञान होवै है. अप्रतीतिकूं अनुपलब्धि कहैं हैं.

घटकी जो अनुपलब्धि कहिये अप्रतीति, ताते घटका अभाव निश्चय होवैहै ऐसे पदार्थनके अभावनिश्चयका हेतु जो पदार्थनकी अप्रतीति ताकूं अनुपलब्धि प्रमाण कहैं हैं.

१ प्रमाज्ञानका जो करण है, सो प्रमाण कहिये है. २ स्मृतिसे भिन्न जो अबाधित अर्थकूं विषयकरने वाला ज्ञान है सो प्रमा कहिये है, स्मृतिज्ञान जो है, सो प्रमा नहीं है. काहेते जो प्रमाज्ञान है सो प्रमाताके आश्रित होवे है. और स्मृतिप्रमाताके आश्रित नहीं; किंतु साक्षीके आश्रित अंगीकार करी है और भ्रांतिज्ञान और संशयभीःसाक्षीके आश्रित अगीकारकिये हैं इसी कारणते स्मृति और भ्रांति और संशय, ज्ञान, ये तीनों आभाससहित अविद्याकी वृत्तिरूपहैं; अंतःकरणकी वृत्तिरूप नहीं. याते प्रमाताके आश्रित नहीं, किंतु साक्षीके आश्रित हैं जो अंतःकरणकी वृत्तिरूप ज्ञान होवै सो प्रमाताके आश्रित होवै है. और सोई प्रमा कहिये है. स्मृतिज्ञान अंतःकरणकी वृत्ति नहीं, यातैं प्रमाताके आश्रित नहीं, और प्रमाभी नहीं यातैं प्रमाके लक्षणविषे स्मृतिसे भिन्न कह्या चाहिये। अबाधित अर्थकूं विषय करनेवाला ज्ञान तौ स्मृतिज्ञानभी है, परंतु स्मृतिज्ञानस्मृतिसेभिन्न

नहींहै. यातैं अबाधितअर्थकूं विषय करनेवाला जो स्मृतिसे भिन्न ज्ञान है, सो प्रमा कहिये है. या लक्षण विषे कोई दोष नहीं.

और कोई स्मृतिज्ञानकूं भी प्रमारूप मानैं हैं. तिनके मतमें प्रमाके लक्षणविषे स्मृतिसेभिन्न ऐसा नहीं कहना किंतु अबाधित अर्थकूं विषय करनेवाला जो ज्ञान है, सो प्रमा कहिये है. भ्रांति ज्ञान जो है, सो अबाधित अर्थकूं विषय नहीं करै है, किन्तु बाधित अर्थकूं विषय करै है यातैं प्रमाका लक्षण भ्रांतिज्ञानमें नहीं जावै है. जिन्होंके मतमें स्मृतिज्ञानविषेभी प्रमा व्यवहार है तिनके मतमें स्मृतिज्ञान अंतःकरणकी वृत्ति है, अविद्याकी वृत्ति नहीं, और साक्षीके आश्रित भी नहीं, किन्तु प्रमाताके आश्रित है. काहेतैं अंतःकरणकी वृत्तिका आश्रय प्रमाता ही बनै है, साक्षी बनै नहीं इस रीतिसे स्मृतिज्ञान १ किसीके मतमें तौ अंतःकरण की वृत्ति है, यातैं प्रमारूप है और २ किसीके मतमें अविद्याकी वृत्ति है, यातैं प्रमारूप नहीं है; और भ्रांति ज्ञान और संशयज्ञान, ये दोनोंसर्वके मतमें आविद्याकी वृत्ति हैं; और साक्षीके आश्रित हैं यामें कोई विवाद नहीं. और विचार करिके देखिये तौ स्मृतिज्ञान भी अविद्याकी वृत्ति है; और साक्षीके आश्रित है, प्रमारूप

नहीं काहेते जो वेदांत संप्रदायके वेत्ता हैं, तिन्होंने प्रमाज्ञान षट्प्रकारका कहा है. ता षट्प्रकारमें स्मृतिज्ञान है नहीं. यातें प्रमा नहीं–

और मधुसूदनस्वामीने स्मृतिज्ञान साक्षीके आश्रितही कह्या है एक तौ प्रत्यक्षप्रमा है, और दूसरीअनुमिति प्रमा है, और तीसरी उपमिति प्रमा है, और चतुर्थी शाब्दी प्रमा है, और पंचमी अर्थापत्ति प्रमा है, और षष्ठी अभाव प्रमा है, ये षट्प्रमा हैं, और पूर्व कहे जो प्रत्यक्षआदिक षट्प्रमाण हैं, सो इनके क्रमतें करण हैं. प्रत्यक्षप्रमाका जो करण होवे, सो प्रत्यक्षप्रमाण कहियेहै. १असाधारण कारण जो होवै सो करण कहिये है २जो सर्व कार्यका कारण होवै सो साधारण कारण कहिये है१जैसे धर्म अधर्मादिक सर्व कार्यके कारण हैं यातैंसाधारण कारण हैं.२सर्वकार्यकाकारण न होवै, किंतु किसी कार्यका कारण होवे, सो असाधारण कारण कहिये है. जैसे दंड जो है सो सर्वकार्यका कारण नहीं. किंतुघट आदिक जोकार्यविशेषहैं तिनका कारणहै. यातैं दंड असाधारणकारण कहिये है, और घटका कारण भी कहिये है. १तैसे प्रत्यक्षप्रमाके ईश्वर और ताकी इच्छासे आदिलेके तौ साधारण कारण हैं काहेतैं ईश्वर से आदिलेके सर्वकार्यके कारण हैं. तिनबिना कोई कार्य

होवे नहीं, याते ईश्वरादिक साधारण कारण हैं और २नेत्रसे आदिलेके जो इंद्रिय हैं.सो प्रत्यक्षप्रमाके असाधारण हैं यातैं नेत्र आदिक जो इंद्रिय हैं,सो प्रत्यक्षप्रमाके कारण हैं.इसरीतिसे नेत्र आदिक जो इंद्रिय हैं, सो प्रत्यक्षप्रमाण कहिये हैं.

यद्यपि इंद्रियकूं वेदांतसिद्धांत विषे प्रमाज्ञानकी कारणता कहना बनै नहीं.काहेतें,चेतनके च्यारि भेद हैं.–एक तौ प्रमाताचेतन है,और दूसरा प्रमाणचेतन है,और तीसराप्रमितिचेतन है,ताहीकूं प्रमाचेतनभीकहैं हैं.और तीसरा चौथा प्रमेयचेतन है,ताहीकूं विषयचेतन भीकहैं हैं.इसरीतिसे प्रमा नाम चेतनका है,सो नित्य है, इंद्रियजन्य नहीं.यातैं इंद्रिय ताका कारण नहीं तथापि चेतनमें प्रमाव्यवहारका संपादक वृत्ति भी प्रमा कहिये हैं. ताके इंद्रिय करण हैं.

१देहके मध्य जोअंतःकरण,ता करके अवच्छिन्न जो चेतन सो प्रमाता कहिये है २ सोई अंतःकरण नेत्रादिक इंद्रियद्वारा निकसिके जितने दूरि घटादिक विषय स्थित होवें,उतना लंबा परिणाम अंतःकरणका होवै है.और आगे विषय जो घटादिक हैं,तिनमें मिलिके जैसा घटादिकका आकारहोवे, तैसाही अंतःकरणका आकार होवै है. जैसे कोठेमें भऱ्या जो जल सो

छिद्रद्वारा निकसिके,लंबेनालेका आकार होयके बगी-चेके केदारमें जावै है और केदारमें जाइके जैसा केदारका आकार होवे, तिस आकारकूं जल प्राप्त होवै है. तैसे अंतःकरण भी इंद्रियरूपी छिद्र-द्वारा निकसिके विषयरूपी केदारकूं जावै है. तहां शरीरसे लेके घटादिक विषयपर्यंत जो अंतःकरणका नालेके समान परिणाम,ताकूं वृत्तिज्ञान कहैं हैं.ताकरिके अवच्छिन्न जो चेतन ताकूं प्रमाण चे-तन कहैं हैं.और ३ वृत्तिज्ञानरूप जो अंतःकरणका परि-णाम, ताकूं प्रमाण कहैं हैं. जैसे केदारविषे जल जाइ-के केदारके समान आकार होवै है, तैसे घटादिक जो विषय हैं तिनमें वृत्ति जाइके घटादिकके समान आ-कारकूं प्राप्त होवै है. ता करिके अवच्छिन्न जो चेतन सो प्रमाचेतन कहिये है. ज्ञानके विषय जो घटादिक, तिन करिके अवच्छिन्न जो चेतन सो विषयचेतन कहिये है और प्रमेयचेतन भी कहिये है.यह वेद अर्थके जाननेवाले जो आचार्य हैं, तिनकी परिभाषा है,

यामें इतना भेद है जो अवच्छेदवाद अगीकार करें हैं,तिनके मतमें तो १ अंतःकरणविशिष्ट जो चेतन है, सो प्रमाता है. और सोई कर्ता भोक्ता है. और २ अंतःकरण उपहित साक्षीहै. एकही अन्तःकरण

प्रमाताका तौ विशेषण है, और साक्षीकी उपाधि है. स्वरूपविषे जाका प्रवेश होवे, ऐसी जो व्यावर्तक वस्तु है; सो विशेषण कहिये है. और पदार्थसे भिन्नता करिके वस्तुके स्वरूपकूं जो जनावे, सो व्यावर्तक कहिये है. जाकूं भिन्नता करिके जनावे; सो व्यावर्त्य कहिये है, जैसे "नीलघट है" या स्थानमें घटका नीलता विशेषण है. काहेतें, नीलघटके विषे नीलताका प्रवेश है और पीतश्वेतादिकनसे भिन्नता करिके जनावै है. यातें व्यावर्तक है इस रीतिसे नीलता घटका विशेषण है. और घट परिच्छेद्य है. काहेतें पीतश्वेतादिकनते भिन्नता कहिये जुदा करिकै जनाइये है. जो भिन्नता करिके जनाइये सो परिच्छेद्य कहिये है. व्यावर्त्य कहिये है और विशेष भी कहिये है. और "दण्डी पुरुष है" या स्थानमें भी पुरुषका दण्ड विशेषण है. इस रीतिसे प्रमाताका अन्तःकरण विशेषण है. काहेतें प्रमाताके स्वरूपविषे अन्तःकरणका प्रवेश है. और प्रमेय चेतनसे भिन्नता करिकै प्रमाताके स्वरूपकूं जनावै है, यातें व्यावर्तक हैं. जा वस्तुका स्वरूपविषे प्रवेश न होवै और व्यावर्तक होवै, सो उपाधि कहिये है. १ जैसे नैयायिकके मतमें कर्णशष्कुलीसे अवच्छिन्न जो आकाश

है, सो श्रोत्र कहिये है. या स्थानमें कर्णशष्कुली श्रोत्रकी उपाधि है. काहेतें श्रोत्रके स्वरूपविषे तो कर्णष्कुलीका प्रवेश है नहीं, और बाहिरके आकाशते भिन्नताकरिके क्षेत्रकूं जनावै है, यातें व्यावर्त्तक है और २ घटाकाश जो है, सो मनपरिमाण अन्नकूं अवकाश देवै है, या स्थानमें भी आकाशकी घट उपाधि है,काहेते, मन अन्नकूं अवकाश देनेवाला जो आकाश है,ताके स्वरूपविषे तो घटका प्रवेश है नहीं घट पार्थिव है, ताकेविषे अवकाश देना बनै नहीं याते घटका स्वरूपमें प्रवेश बनै नहीं. और व्यापक आकाशते भिन्नताकरिके जनावै है याते मन अन्नकूं अवकाश देनेवाला जो आकाश ताकी घट उपाधि है.तैसे अतःकरण उपहित जो चेतन है, सो साक्षी है.या स्थानमें अंतःकरण साक्षीकी उपाधि है. काहेते,

साक्षीके स्वरूपविषे तो अंतःकरणका प्रवेश है नहीं. और प्रमेयचेतनसे साक्षीकूं भिन्नता करिके जनावै है. याते एकही अंतःकरण साक्षीकी तो उपाधि है, और प्रमाताका विशेषण है. इस रीतिसे १ अंतःकरण उपहित जो चेतन है. सो तौ साक्षी है, और २ अंतःकरणविशिष्टचेतन प्रमाता है १जो उपाधिवाला होवै,सो उपहित कहिये है और २ विशेषणवाला होवै सो वि-

शिष्ट कहिये है. जो अंतःकरण विशिष्ट प्रमाता है,सोई कर्ता भोक्ता सुखी दुःखी संसारी जीव है यह अवच्छेदवादकी रीति है. और १ आभासवादमें आभाससहित अंतःकरण जीवका विशेषण है औरर आभाससहित अंतःकरण साक्षीकी उपाधि है. याते १ आभास अंतःकरणविशिष्टचेतन जीव है, और २ साभास अंतःकरण उपहित चेतन साक्षी है. यद्यपि दोनोंपक्षमें विशेषण सहित चेतन जीव है;सोई संसारी है, तथापि विशेष्यभाग जो चेतन है, ताके विषे तौ जन्ममरणसे आदि लेकै संसारका संभव है नहीं.

शेषणमात्रमें संसार है सोई विशिष्टचेतनमें प्रतीत होवै है. १ कहूं तो विशेषणके धर्मका विशिष्टमें व्यवहार होवै है, और २ कहूं विशेष्यके धर्मका विशिष्टमें व्यवहार होवै है; और ३कहूं विशेषणविशेष्य दोनोंके धर्मका विशिष्टमें व्यवहार होवैहै. १ जैसे दंडकरिके घटाकाशका नाश होवै है, या स्थानमें विशेषण जो घट है, ताका दंडकरिके नाश होवै है, और विशेष्य जो आकाश है ताका नाश बनै नहीं. तो भी विशिष्ट जो घटाकाश है ताका नाश प्रतीत होवै है. और २ "कुण्डलीपुरुष सोवै है" या स्थानमें कुण्डल विशेषण है, और पुरुष विशेष्य है. विशे-

षण जो कुण्डल है. ताकेविषे सोवना बनै नहीं. किंतु विशेष्य जो पुरुष है; ताकेविषे सोवना बनै है. और "कुंडलविशिष्ट विप्र सोवै है" ऐसा विशिष्टमें व्यवहार होवै है. और ३ "शस्त्री पुरुष युद्धमें गया है." या स्थानमें विशेषण जो शस्त्र और विशेष्य पुरुष. दोनों युद्धमें गये हैं; याते दोनोंके धर्मका विशिष्टमें व्यवहार होवै है. या स्थानमें १ अवच्छेदवादमें तौ अंतःकरण विशेषण है, और २ आभासवादमें साभास अंतःकरण विशेषण है; और दोनों पक्षमें चेतन विशेष्य है. ताकेविषे तो जन्मादि संसार बनै नहीं. किंतु विशेषण अंतःकरण अथवा साभास अंतःकरण ताका धर्म जो जन्मादिक संसार, ताका विशिष्टचेतनमें व्यवहार करिये है. व्यवहार नाम प्रतीत और कहनेका है. इसरीतिसे आभासवाद और अवच्छेदवादका भेद है.

आभासवादमें तौ अंतःकरण आभाससहित है और अवच्छेदवादमें अंतःकरण आभासरहित है. दोनों पक्षमें आभासवाद श्रेष्ठ है. काहेते १ भाष्यकारने आभासवाद अंगीकार किया है. और २ अवच्छेदवादमें विद्यारण्यस्वामीने दोषभी कहा है—जो आभासरहित अंतःकरण अवच्छिन्न चेतनकूं प्रमाता

मानै तो घट अवच्छिन्न चेतन भी प्रमाता हुवा चाहिये. काहेते, जैसे अंतःकरण भूतनका कार्य है, तैसे घटभी भूतनका कार्य है.और जैसे अंतःकरण चेतनका अवच्छेदक कहिये व्यावर्तक है. तैसे घट भी चेतनका अवच्छेदक है याते अंतःकरणविशिष्टकी न्याईं घटविशिष्ट भी प्रमाता हुवा चाहिये और अंतःकरणमें आभास अंगीकार कियेते यह दोष नहीं. काहेते, १ अंतःकरण तौ भूतनके सत्त्वगुणका कार्य है; याते स्वच्छ है. और २ घटादिक भूतनके तमोगुणके कार्य हैं; याते स्वच्छ नहीं. १ जो स्वच्छपदार्थ होवे, सोई आभासके योग्य होवे है. मलीनपदार्थ आभासके योग्य नहीं. जैसे कांच और ताका ढकना दोनों पृथिवीके कार्य हैं, परन्तु कांच तो स्वच्छ है, तामें मुखका आभास होवै है, ढकना स्वच्छ नहीं याते तामें आभा- होवे नहीं १ वैसे सत्त्वगुणका कार्य होनेसे अंतःकरण स्वच्छहै, ताहीमें चेतनका आभास होवै है. २ शरीरादिक और घटादिक तमोगुणके कार्य होनेसे स्वच्छ नहीं, तिनमें चेतनका आभास होवै नहीं.

इस रीतिसे अंतःकरणमें द्विविधप्रकाश है, एक तो व्यापक चेतनका प्रकाश, और दूसरा आभासका प्रकाश है. शरिरादिक और घटादिकनमें एक व्यापक चेतनका प्रकाश तौ है. दूसरा आभासका प्रकाश नहीं. यातें द्विविध प्रकाशसहित

अंतःकरणविशिष्टही चेतन प्रमाता कहिये है.एक प्रकाशहित जो घटादिक तिन करिके संयुक्त चेतन प्रमाता नहीं, जिनके मतमें अंतःकरणमें आभास नहीं, तिनके मतमें घटादिकनकी न्याईं अंतःकरणमें भी आभासका दूसरा प्रकाश तौ है नहीं. व्यापक चेतनका जो एक प्रकाश अंतःकरणमें है, सोई व्यापक चेतनका प्रकाश घटादिकनमें है.यातैं अंतःकरणविशिष्टकी न्याईं घटविशिष्ट वा शरीरविशिष्ट वा भीतविशिष्ट चेतन भी प्रमाता हुवाचाहिये इस रीतिसे घट शरीरादिकनते अंतःकरणमें यही विलक्षणता है. १ अंतःकरण सत्त्वगुणका कार्य है, याते स्वच्छ होनेते चेतनका आभासग्रहण करनेके योग्य है; २ और पदार्थस्वच्छ नहीं. यातै आभास ग्रहण करनेके योग्य नहीं. १ आभासग्रहणके योग्य जो अंतःकरण, ता करिके संयुक्तही चेतन प्रमाता कहिये है २ घटादिक और शरीरादिक आभासग्रहणके योग्य नहीं यातैं तिन करिके विशिष्टचेतन प्रमाता नहीं. इस रीतिसे आभासवादही उत्तम है, अवच्छेदवाद नहीं;

जैसे अंतःकरण आभाससहित है, तैसे अंतःकरणकी वृत्ति भी आभाससहितही होवै है, साभासवृत्तिविशिष्टचेतन प्रमाण चेतन कहिये है. अंतःकरणकी

घटादिविषयाकार जो वृत्ति; तामें आरूढचेतनकूं प्रमा और यथार्थज्ञान कहैं हैं. ताका साधन जो इंद्रिय सो प्रमाण कहिये है. काहेते विषयाकारवृत्तिमें आरूढचेतनकूं प्रमा कहैं हैं. तहां चेतन यद्यपि स्वरूपकरिके नित्य है याते इंद्रियजन्य ताके अभावते प्रमा चेतनका साधन इन्द्रिय नहीं; तथापि निरुपाधिक चेतनमें तौ प्रमाव्यवहार है नहीं, किंतु विषयाकारवृत्ति उपहित चेतनमें प्रमाव्यवहार होवे है. याते चेतनविषे प्रमाशब्दकी प्रवृत्तिमें विषयाकार वृत्ति उपाधि है. सो विषयाकार वृत्ति इंद्रियजन्य है, इन्द्रिय ताका साधन है, प्रमापनेकी उपाधि जो वृत्ति ताको इंद्रियजन्य होनेते उपहित जो प्रमा, सो भी इंद्रियजन्य कहिये है. याते इंद्रिय प्रमाका साधन कहिये है. परंतु अंतःकरणका परिणाम सारा प्रमा नहीं कहिये है.किंतु शरीरके भीतर जो अंतःकरण ताका विषय घटादिकन ताई परिणाम ताकूं प्रमाण कहैं हैं. विषयते मिलिके विषयके समान जो अंतःकरणका परिणाम, उतनेकूं प्रमा कहैं हैं, शरीरके भीतर जो अंतःकरण तासे लेके घटादिक विषय ताईं पहुँचा जो अंतःकरणका परिणाम, सोई प्रमारूपकूं धारै है. याते प्रमाका प्रमाणरूप अंतःकरणकी वृत्तिसे

अत्यंत भेद नहीं. १ इस रीतिसे बाहिरके पदार्थनका प्रत्यक्ष ज्ञान जहाँ होवे तहाँ अंतःकरकी वृत्ति बाहिर जायके विषय जो घटादिक, तिनके समान आकार-रूपकूं धारे है. और २ शरीरके अंतर जो आत्मा ताका प्रत्यक्ष होवै, तब अंतःकरणकी वृत्ति बाहिर जावे नहीं. किंतु शरीरके भीतरही वृत्ति आत्माकार होवै है, १ ता वृत्तिसे आत्माके आश्रित आवरण दूरि होवै है. और २ आत्मा अपने प्रकाशते ता वृत्तिमें प्रकाशै है. इसी कारणते वृत्तिका विषय आत्मा कह्या है, और चिदा-भासरूप जो वृत्तिमें फल, ताका विषय आत्मा नहीं, या प्रकारते साक्षी आत्मा स्वयंप्रकाश रूप भान होवै है; यह सिद्ध हुआ ॥ ११६ ॥

तत्त्वदृष्टिरुवाच–दोहा ।

इंद्रियके संबंध बिन, "अहं ब्रह्म" यह ज्ञान ॥
कैसे है प्रत्यक्ष प्रभु, मोकूं कहौ बखान ॥ ११७ ॥

टीका–"ब्रह्मके अपरोक्षज्ञानते सकल अविद्या-जालका नाश होवै है. परोक्षज्ञानते नहीं," यह पूर्व कह्या. ताके विषे शंका करै हैं–ब्रह्मका ज्ञान प्रत्यक्ष बने नहीं, काहेते इंद्रियजन्य ज्ञान प्रत्यक्ष होवै है. ब्रह्मका ज्ञान इंद्रियजन्य बनै नहीं

काहेते,नेत्र इंद्रियते रूपवानका अथवा नीलादिक रूपका ज्ञान होवै है, ऐसा ब्रह्म नहीं. याते नेत्रइंद्रियजन्य ज्ञान ब्रह्मका बनै नहीं. रामकृष्णादिकनकी जो मनुष्याकार मूर्त्ति है सो यद्यपि रूपवाली है, तथापि सो मूर्त्ति मायारचित है, मिथ्या है सो मूर्त्ति ब्रह्म नहीं और पुराणनमें रामकृष्णादिकनकूं ब्रह्मरूपता कही है सो तिनकी शरीररूप मूर्त्ति ब्रह्मरूप है,इस अभिप्रायते नहीं कही किंतु तिनके शरीरका अधिष्ठानचेतन ब्रह्म है, इस अभिप्रायते कही है याकेविषे ऐसी शंका होवै है—सर्व शरीरनका अधिष्ठान चेतन ब्रह्म है याते अधिष्ठानचेतन अभिप्रायते रामकृष्णादिकनकूं ब्रह्मरूपता कहा होवै, तौ सर्व शरीरनका अधिष्ठानचेतन ब्रह्म होनेते मनुष्य पशु पक्षी आदिक सर्वही ब्रह्मरूप हैं तिनके समानही रामकृष्णादिक होवैंगे याते रामकृष्णादिकनकूं, अधिष्ठानचेतन ब्रह्म है,इस अभिप्रायते ब्रह्मरूपता नहीं कही, किंतु तिनकूं और जीवनते विशेषरूपताकी सिद्धिवास्ते तिनका शरीरही ब्रह्म है,ऐसा मानना योग्य है. सो बनै नहीं,काहेते;शरीरका बाध करिके तिनके शरीरनकूं ब्रह्म रूपता मानैं,तौ १सर्वशरीरनका बाध करिके सारेही शरीर ब्रह्मरूपहैं,और २बाध किये बिना तो अन्यश

रीरनकीन्याई,हस्तपादादिक अवयवसहित रूपवान् क्रियावान् शरीरका निरवयव निरूप अक्रिय ब्रह्मते अभेद बनै नहीं.याते रामकृष्णादिकनका शरीर ब्रह्म नहीं.परंतु इतना भेद है–१जीवनके शरीर पुण्य पापके अधीन हैं,२भूतनके कार्य हैं,और ३ जीवनकूं देहादिक अनात्मपदार्थन विषे अविद्याबलते अहं मम अध्यास है,आचार्यके उपदेशतैं ता अध्यासकी निवृत्ति होवै है. और १ रामकृष्णादिकनके शरीर अपने पुण्य पापते रचित नहीं,भूतनके कार्य नहीं.किंतु जैसे सृष्टिक आदिमें प्राणियोंके कर्म भोगदेनेकूं सन्मुख होवै,तब अप्तकाम ईश्वरमें भी प्राणियोंके कर्मके अनुसार "मैं जगत्की उत्पत्ति करूं"ऐसा संकल्प होवै है.ता संकल्पते जगत्की उत्पत्तिरूप सृष्टि होवै है.तैसे सृष्टिते अनंतर भी "मैं जगत्का पालन"ऐसा ईश्वरका संकल्प होवै है ता संकल्पते जगत्का पालन होवै है. कर्मनके अनुसार सुख दुःखका संबंध पालन कहिये है.ता पालन संकल्पके मध्य उपासक पुरुषनकी उपासनाके बलते ईश्वरकूं ऐसा संकल्प होवै है–"रामकृष्णादिकनामसहित मूर्त्ति सर्वकूं प्रतीत होवे."ता ईश्वरसंकल्पते विशेषनामरूपरहित ईश्वरमें रामकृष्णादिक नाम, पीतांबरधरादि श्यामसुंदर विग्रह रूपकी उत्पत्ति होवै है.सो विग्रह कर्मके अधीन

नहीं.यद्यपि रामकृष्णादिके विग्रहते साधु और दुष्टन-कूं क्रमते सुख दुःख होवै है,जो जाके सुख दुःखक हेतु होवै है, सो ताके पुण्य पापते रचित होवै है. याते पुण्य पाप अधीन कहिये है; इस रीतिसे १अवतारनके शरीर साधुपुरुषनकूं सुखके हेतु होनेतेसाधुपुरुषनके पुण्यसमुदायते रचित हैं तैसे असुरादिक असाधुपुरुषनकूं दुःखके हेतु होनेते तिनके पापते रचित हैं.याते"अवतारनके शरीर पुण्य पापके अधीन नहीं," यह कहना नहीं संभवै, तथापि जैसे जीवनैं पूर्वशरीरमें पुण्य पाप कर्म किये हैं, तिनका फल उत्तर शरीरमें ता जीवकूं सुख दुःख होवै है. तहां शरीाअभिमानी जीवके पूर्वशरीरके आपने पुण्यपापके अधीन उत्तर शरीर कहिये है. तैस,रामकृष्णादिकनके शरीर यद्यपि साधु असाधु पुरुषनके पुण्यपापके अधीन हैं,और तिनकूं सुख दुःखके हेतु हैं;परंतु रामकृष्णादिकनके पुण्यपापते रचित अवतार शरीर नहींर और तिनकूं अपने शरीरते सुखका तथा दुःखका भोग होवे नहीं, याते रामकृष्णादिकनके शरीर अपने पुण्य पापके अधीन नहीं. यह संभवै है.

तैसे भूतनके परिणाम भी रामकृष्णादिक शरीर नहीं किंतु चेतन आश्रित मायाका परिणाम है, जो

पंचीकृत भूतनके परिणाम होवें तौ कृष्णशरीरविषे रज्जुकृत बन्धनादिकनका अभाव शास्त्रमें कह्या है, सो असंगत होवैगा. यद्यपि पंचभूतरचित सिद्ध योगी-शरीरमें भी बन्धनादिक होवें नहीं, तथापि योगी-शरीरमें प्रथम बंधनादिकनका संभव होवै है, फेरि यो-गाभ्यासरूप पुरुषार्थते बंधन दाहादिकनकी योग्यता नाश होवै है, कृष्णादिकनके शरीरमें योगीकी न्याई कछु पुरुषार्थसे बंधनादिकनका अभाव नहीं, किंतु तिनके शरीर सहजही बंधनादि योग्य नहीं, याते भूतनके परिणाम नहीं. और मांडूक्यभाष्यकी टीकामें आनन्दगिरिने रामादिक शरीर भूतनके परिणाम कहे हैं, सो स्थूलदृष्टिसे और शरीरनके समान वे शरीर प्रतीत होवैं हैं; इस अभिप्रायते कहे हैं काहेतैं, भाष्य-कारने गीताभाष्यमें यह कह्या है:—"जीवनके ऊपर अनुग्रह करिके शरीरधारीकी न्याईं मायाके बलते परमात्मा कृष्णरूप प्रतीत होवै है सो जन्मादिक रहित है ताका वसुदेवद्वारा देवकीते जन्म भी मायाते प्रतीत होवे है." इस रीतिसे भाष्यकारने कृष्णशरीर मायाका कार्य कह्या है, याते भूतनते अवतार शरीरनकी उत्पत्ति नहीं; किंतु तिनके शरीरनका उपादान कारण साक्षात् माया है.

और जीवनकूं देहादिकनमें आत्मभ्रांति है; रामकृष्णादिकनकूं नहीं. काहेते, जीवकी उपाधि अविद्या मलिनसत्त्वगुणवाली है. रामकृष्णादिकनकी उपाधि माया शुद्धसत्त्वगुणवाली है, याते जीवनकूं अविद्याकृतभ्रांति, और रामकृष्णादिकनकूं मायाकृत सर्वज्ञता होवै है। जीवनकूं अज्ञानकृत आवरण और भ्रांतिके नाशनिमित्त आचार्यद्वारा महावाक्यके उपदेशजन्य ज्ञानकी अपेक्षा है. तैसे रामकृष्णादिकनकूं आवरण और भ्रांति नहीं; याते उपदेशजन्य ज्ञानकी अपेक्षा नहीं किंतु जीवकूं अंतःकरणकी वृत्तिरूपज्ञानकी न्याई ईश्वरकूं मायाकी वृत्तिरूप आत्माका ज्ञान तौ उपदेशादिक विना भी होवै है. परंतु ता ज्ञानते कछु प्रयोजन तिनकूं सिद्ध होवै नहीं. काहेते, जीवनकूं घटादिकनके ज्ञानते आवरणभंग, और विषय जो घटादिक तिनका प्रकाश होवै है.और ब्रह्मरूपते आत्माका ज्ञान जो जीवनकूं होवै है,तहां ज्ञानका विषय जो आत्मा, ताका आवरणभंग तौ ज्ञानते होवै है, और आत्मा विषय स्वयंप्रकाश है; याते आत्मज्ञानते विषयका प्रकाश होवै नहीं. तैसे ईश्वरकूं मायाकी वृत्तिरूप जो "अहं ब्रह्मास्मि" ऐसा ज्ञान, ताका विषय ईश्वरका आत्मा, सो आवरणरहित स्वयं-

प्रकाश है, याते आवरणभंग व विषयका प्रकाश ईश्वरके ज्ञानका प्रयोजन नहीं. जैसे जीवन्मुक्त विद्वान्कूं निरावरण आत्माकूं विषय करनेवाली अंतःकरणकी "अहं ब्रह्मास्मि" ऐसी वृत्ति आवरणभंगादिक प्रयोजनरहित होवै है तैसे ईश्वरकूं भी आवरणभंगादिक प्रयोजनविना मायाकी वृत्तिरूप "अहं ब्रह्मास्मि" ऐसा ज्ञान उपदेशादिकते विना होवै है.

इसरीतिसे रामकृष्णादिकनकूं जीवनते विलक्षणता ईश्वरता है. तौ भी तिनका शरीर मायारचित है, यातें ब्रह्म नहीं, किंतु मिथ्या है, मायाने उत्पन्न किया जो अवतारनका शरीर, सो हस्तपादादिक अवयवसहित, और रूपसहित किया है; याते नेत्रइंद्रियका विषय तिनका शरीर होवै है. ब्रह्मकूं नेत्र इंद्रिय विषय करै नहीं. तैसे त्वचा इंद्रिय भी स्पर्शकूं और स्पर्शके आश्रयकूं विषय करै है. ब्रह्म स्पर्शका आश्रय नहीं, और स्पर्श नहीं. याते त्वचा इंद्रियका विषय नहीं.

रसना इंद्रियते रसका ज्ञान, घ्राणते गंधका ज्ञान, श्रोत्रते शब्दका ज्ञान होवै है. रस गंध शब्दते ब्रह्म विलक्षण है; याते रसना घ्राण और श्रोत्रते ब्रह्मका ज्ञान होवै नहीं और कर्मइंद्रिय ज्ञानके साधन नहीं किंतु वचनादिक क्रियाके साधन हैं. याते तिनते तौ किसी

का ज्ञान होवै नहीं. इसरीतिसे किसी इंद्रियते ब्रह्मका ज्ञान बनै नहीं और इंद्रियते जो ज्ञान होवै, सो ज्ञान प्रत्यक्ष कहिये है, प्रत्यक्षकूं ही अपरोक्ष कहैं हैं. याते ब्रह्मका अपरोक्षज्ञान बनै नहीं. किंतु शब्दसे ब्रह्मका ज्ञान होवै है, जो शब्दसे ज्ञान होवै, सो परोक्ष होवै है. याते ब्रह्मका ज्ञान भी परोक्षही होवै है ॥ ११७ ॥

श्रीगुरुरुवाच-दोहा।

इंद्रिय बिन प्रत्यक्ष नहिं, शिष यह नियम न जान ॥
बिन इंद्रिय प्रत्यक्ष है, जैसे सुख दुख ज्ञान ॥ ११८ ॥

टीका-इंद्रियसंबंधबिना प्रत्यक्षज्ञान होवै नहीं, यह नियम नहीं काहेते, जैसे सुखका और दुःखका ज्ञान होवै सो किसी इंद्रियते होवे नहीं सो सुख दुःख का ज्ञान भी प्रत्यक्ष होवै है, याते इंद्रिय संबंधते जो ज्ञान होवै, सोई प्रत्यक्षज्ञानहोवे, यह नियम नहीं. किंतु विषयते वृत्तिका संबंध होयके विषयाकारवृत्ति जहां होवै; तहां प्रत्यक्षज्ञान कहिये है. १ सो विषयते वृत्ति का संबन्ध कहूं इंद्रियद्वारा होवै है; और २ कहूं शब्दसे होवे है जैसे "दशम तू है" इस शब्दते, दशम जो आप ताते अंतःकरणकी वृत्तिका संबंध होयके दशमाकारवृत्ति होवे है. याते शब्दजन्य भी दशमका ज्ञान प्रत्यक्ष होवै है. तैसे प्रमाताविषे सुख दुःख होवे, तब सुखाकार

दुःखाकार अंतःकरणकी वृत्ति होवे; ता वृत्तिसे सुख दुःखका संबंध होवै है, याते सुखदुःखका ज्ञान प्रत्यक्ष कहिये है. पूर्व उत्पन्न सुख दुःख नष्ट हुये पाछे जहां पुरुषकूं याद आवै तहां सुखाकार दुःखाकार अंतःकरण की वृत्ति तौ होवै है. परंतु वृत्तिके नष्ट हुए सुख दुःखत संबंध नहीं याते सो ज्ञान स्मृतिरूप है, प्रत्यक्षरूप नहीं. १ यद्यपि अंतःकरणके धर्म सुख दुःख साक्षीभास्य हैं,तथापि सुखाकार दुःखाकार अंतःकरणकी वृत्तिद्वारा साक्षीसुख दुःखका प्रकाश करै है. जो साक्षी भास्यपदार्थ हैं, तिनकूं भी साक्षी वृत्तिकी अपेक्षातेही प्रकाशै है, जैसे शुक्तिरजत साक्षीभास्य है, तहां अविद्याकी वृत्तिकी अपेक्षा करिके साक्षीरजतकूं प्रकाशैहै. १ परंतु सुख दुःखके प्रकाशमें अंतःकरणकी वृत्ति साक्षीकी सहायक है. और २ मिथ्यारजतादिकनके प्रकाशमें अविद्याकी वृत्ति सहायक है.

इस रीतिसे साक्षीभास्यपदार्थके ज्ञानमें भी वृत्तिकी अपेक्षा है. १ सो वृत्ति जहां इंद्रियादिक बाह्य साधनतैं होवैं, ताका विषय साक्षी भास्य नहीं कहिये है. २ सुख दुःखकूं विषय करनेवाली वृत्तिमें बाह्यइंद्रियादिक हेतु नहीं किंतु जब सुखादिक उत्पन्न होवैं, तिसीकालम अन्यसाधनकी अपेक्षाविना सुखाकार दुःखाकार

अंतःकरणकी वृत्ति होवे है. ता वृत्तिमें आरूढ साक्षी सुख दुःखकूं प्रकाशै है, याते सुख दुःख साक्षीभास्य कहिये हैं.

और बाह्य जो घटादिक है, तिनसे अंतःकरणकी वृत्तिका संबंध नेत्रादिक इंद्रियद्वारा होवै है. याते घटादिक साक्षीभास्य नहीं तैसे ब्रह्माकार अंतःकरणकी वृत्ति होवै है. सो अंतःकरणकी वृत्ति बाहिर नहीं जावै है, किंतु शरीरके अंतरही होवै है.तावृत्तिसे ब्रह्मका संबंध है, याते ब्रह्मका ज्ञान भी सुख दुःखके ज्ञानकी न्याई प्रत्यक्षरूप है. परंतु १ सुखाकार दुःखाकारवृत्तिमें बाह्यसाधनकी अपेक्षा नहीं. याते सुख दुःख साक्षीभास्य हैं, और २ ब्रह्माकार जो अंतःकरणकी वृत्ति, तामें तौ गुरुद्वारा वेदवचनका श्रोत्रसे संबंधःबाह्यसाधन चाहियै है, याते ब्रह्म साक्षीभास्य नहीं इस रीतिसे जहां विषयते वृत्तिका संबंध होवे, तहां प्रत्यक्ष ज्ञान कहिये है " अहं ब्रह्मास्मि " या वृत्तिका विषय जो ब्रह्म, तासे संबंध है. याते ब्रह्मका ज्ञान प्रत्यक्ष संभवै है.

और १ जहां धूमकूं देखिके अग्निका ज्ञान होवै है, तहां धूमका ज्ञान तौ प्रत्यक्ष है और अग्निका ज्ञान प्रत्यक्ष नहीं. काहेते, नेत्र द्वारा अंतःकरणकी वृत्तिका धूमते संबंध है, यातैं धूमका ज्ञान प्रत्यक्ष कहिये है. और २

अनुमानते अंतःकरणकी वृत्ति शरीरके अंतर अग्निके आकारकूं ग्रहण करनेंवाली तौ हुई, परंतु अग्निसे वृत्तिका संबंध नहीं याते अग्निका ज्ञान प्रत्यक्ष नहीं. इस रीतिसे जहां वृत्तिसे विषयका संबंध होवै, तहां प्रत्यक्ष ज्ञान कहिये है जहां वृत्तिसे विषयका संबंध नहीं होवै विषय बाहिर दूरि होवै, अथवा भूत वा भविष्यत् होवै और अनुमानते, अथवा शब्दते विषयाकारवृत्ति अंतर होवे, सो ज्ञान परोक्ष कहिये है. इंद्रियजन्य ज्ञानही प्रत्यक्ष होवे है, यह नियम नहीं. जैसे सुख दुःखका ज्ञान इंद्रियजन्य नहीं. और प्रत्यक्ष है; तैसे दशम पुरुषका ज्ञान शब्दजन्य है; तौ भी प्रत्यक्ष होवै है इस रीतिसे गुरुद्वारा श्रवण किया जो "महावाक्यरूप वेद शब्द" तासे उत्पन्न हुवा ब्रह्मज्ञान भी प्रत्यक्षही संभवै है ॥ ११८॥

दोहा

गुरुको अस उपदेश सुनि, तत्त्वदृष्टि बुधिमंत ॥
ब्रह्मरूपलखि आत्मा, कियो भेदभ्रमअंत ॥ ११९॥
"अहं ब्रह्म" या वृत्तिमें, निरावरण है भान ॥
दादू आदूरूप सो, यों मैं लियो पिछान ॥ १२०॥

इति श्रीउत्तमाधिकारी उप० नाम चतुर्थस्तरंगः ॥ ४ ॥

पंचमस्तरंगः ५.

अथ श्रीगुरुवेदादिव्यावहारिकप्रतिपादन और मध्यमाधिकारीसाधननिरूपणम्।

पूर्वतरंगमें यह कह्याः—"गुरुमुखद्वारा श्रवण किये वेदवाक्यते अद्वैत ब्रह्मका साक्षात्कार होवै है. ताकूं सुनिके अदृष्टि नाम द्वितीय शिष्य, यह शंका करै हैः—१ वेद गुरु सत्य होवै तौ अद्वैतकी हानि; २ असत्य होवै तौ तिनते पुरुषार्थकी प्राप्ति बनै नहीं दोनों रीतिसे वेद गुरुते अद्वैतज्ञान बनै नहीं.

चौपाई।

वेदरु गुरु जो मिथ्या कहिये। तिनतेभवदुखन-
श्योनचहिये॥ जैसे मिथ्यामरुथलकोजल। प्यासना-
शकोनहिंतामैंबल ॥ १ ॥ सत्य वेदगुरु कहैं तु द्वैत।
भयो गयो सिद्धांत अद्वैत॥ यों शंकरमतपेखिअशुद्धा।
तज्योसकलमध्वादिप्रबुद्धा॥ २॥

"भयो" पदको प्रथमपादसे अन्वय है.

यह शंका भगवन् मुहिं उपजै।उत्तर देहु दयालु न कुपिजै
गुरुबोले शिषकी सुनि वानी। शंकरको मत परम प्रमानी
च्यारि यार मध्वादिक जे हैं। वेदविरुद्ध कहत सब ते हैं॥
यामैं व्यासवचन सुनि लीजै। शंकरमतहि प्रमाण करीजै

कलिमें वेदअर्थ बहु करिहै । श्रीशंकरशिव तब अवतरिहैं ॥ जैन बुद्धमत मूल उखारै । गंगाते प्रभु मूर्ति निकारै ॥ ५ ॥ जैसे भानु उदय उजियारो । दूरि करै जगमें अँधियारो ॥ सबवस्तुहि ज्योंकी त्यों भासैं । संशय और विपर्ययनाशैं ॥ ६ ॥ वेदअर्थमें त्यों अज्ञाना। नशिहै श्रीशंकरव्याख्याना ॥ करिहैं ते उपदेश यथारथ । नाशहि संशय अरु अयथारथ ॥ ७ ॥

अयथार्थ, कहिये भ्रांति.

और जु वेद अर्थकूं करिहैं । ते शठ वृथा परिश्रम धरिहैं॥यों पुराणमें व्यास कही है । शंकरमतमें मान यही है ॥ ८ ॥ मध्वादिकको मत न प्रमानी। यह हमव्यासवचनतेजानी ॥ और प्रमाण कहूं सो सुनिये। वाल्मीकिऋषि मुख्यजुगिनिये॥ तिन मुनि कियो ग्रंथ वाशिष्ठा । तामैं मत अद्वैत स्पष्टा ॥ श्रीशंकर अद्वैतहि मान्यो । तिनको मत यह हेतु प्रमान्यो ॥ १० ॥ वाल्मीकिऋषिवचनविरुद्धं । भेदवाद लखि सकल अशुद्धं ॥

टीका–सर्व प्रकरणका भाव यह हैः–व्यास भगवान्ने पुराणमें यह कही हैः–"जब कलिमें वेदके अर्थकूं नाना भाँति करैंगे, तब कृपालु शिव, श्रीशंकर नाम धारके अवतार लेके बदरीनाथकी

मूर्तिका देवनदीमध्यते उद्धार, स्वस्थानमें स्थापन, जैन बुद्धमतखंडन और वेदका यथार्थ व्याख्यान करैंगे," १ या व्यासवचनते श्री शंकरमत प्रमाण है, और २ मध्वादिकनका भेदमत अप्रमाण है और उपनिषद्, गीता, सूत्र, ये तीनि जो वेदांतके प्रस्थान हैं, तिनके यद्यपि मध्वादिकनने किसीतरह खैंचिके स्वस्वमतके अनुसार व्याख्यान किये हैं तथापि व्यासवचनते श्रीशंकरकृत व्याख्यानही यथार्थ है. और आदिकवि सर्वज्ञवाल्मीकिऋषिने उत्तररामायण वासिष्ठनाम ग्रंथ किया है; तहां अद्वैतमतमें प्रधान जो दृष्टिसृष्टिवाद है सो अनेक इतिहासनसे प्रतिपादन किया है. याते वाल्मीकिवचन अनुसार अद्वैतमत प्रमाण है, और वाल्मीकिवचनविरुद्ध भेदमत अप्रमाण है इस रीतिसे सर्वज्ञ ऋषि मुनि वचन विरोधते भेदवाद अप्रमाण कह्या. और युक्तिसे भी भेदवाद विरुद्ध है, यह खंडन आदिक ग्रंथनमें श्रीहर्षादिकनैं प्रतिपादन किया है. युक्ति कठिन है, याते भेदमत खंडनकी युक्ति नहीं लिखी. और,

ऋषिमुनिवचनते विरुद्ध भेदमतमें जैनमतकी न्याईं अप्रमाणता निश्चय हुयेते युक्तिसे खंडनकी आस्तिक

अधिकारीकूं अपेक्षा भी नहीं. यह तो चौपाईसों कहैं हैं:—

चौपाई।

कियो ग्रंथ श्रीहर्ष जु खंडन।खंडनभेद एकता मंडन॥
लिख्योतहां यहबहुविस्तारा।भेदवादनहिंयुक्तिसहारा१२
और भेदधिक्कार जु ग्रंथा। तहां भेदखंडनको पंथा॥
कठिन दुरूहतर्क हैं ते अति। नहिंपैठिहिशिषतिनमैंते· मति॥याते कही नते तुहि उक्ती। करै जु भेदहि खंडन युक्ती॥ अप्रमाणमतभेदलख्यो जब। खंडनमें युक्ति न चहियत तब॥ १४॥

वेदवचनसे भी भेदमत विरुद्ध है,यह कहैं हैं:—
भेदप्रतीति महादुखदाता। यमकठमैं यह टेरत ताता॥
याते भेदवाद चित त्यागहु। इक अद्वैतवाद अनुरागहु॥ १५॥

"मृत्योः स मृत्युमाप्नोति य इह
नानेव पश्यति" इति श्रुतेः
"द्वितीयाद्वै भयं भवति"
"अन्योसावन्योहमस्मीति न स वेद यथा।
पशुरेव स देवानाम्" इति द्वे श्रुती॥

---

१ अर्थ—" जो पुरुष इस परमात्माविषे नानाकी न्याईं देखता है सो मृत्युकूं पावता है,, इति।

अर्थ–जोद्वितीयकूं मतिमैं धारै।भय ताकूं यह वेदपुकारै
ज्ञेय ध्येय मोतैं कछुओरा। लखै सुपशु यहवेदढँढोरा १६
शिषयातैं मध्वादिकवानी। सुनीसुबिसरहुअतिदुखदानी
द्वैतवचन तव हियमैं जौलौं। है साक्षातअद्वैत नतौलौं १७
द्वैतवचनको स्मरण जु होवै। है साक्षात तूताहिबिगोवै॥
पूर्वस्मृतिसाक्षातविनाशत।सुनइकअसतुहिकथाप्रकाशत
राजाको इक भर्छूमंत्री। राज काज सब ताके तंत्री॥
और मुसाहिब मंत्री जेते। करैं ईरषा तासूं तेते॥१९॥

तंत्री कहिये अधीन।

करि न सकतभर्छूकीहाना। महाराजनिजजियप्रियजाना
तबसब मिलि यह रच्यो उपाया। धारिदौरदंगामचवाया
सो सुनि राजहिकरी कचहरी। लियेबुलाय मुसाहिबज-
हरी॥तिनसू कह्यो वेग चढि जावहु। दौरतधारिसुधूम-
नशावहु॥ तब सबमिलि उत्तर यहदीना। सदा एक
भर्छुहि तुमचीना॥मरणलिये अब हमहि पठावतु।भर्छूकूं
कछुक्योंनचढावतु॥तब बोल्यो भर्छूकरजोरी। महाराज
सुनु विनती मोरी॥ आज्ञा होय मोहि यह रौरी। मारूं
सकल धारि जो दौरी॥ तब भर्छूकूं बोल्यो राजा। तुम
चढिजाहु समारहु काजा॥ ते जातहि भर्छू सब मारे।
बणिक कृषीवल किये सुखारे॥ भर्छू विजय सुन्यो
तिन जबही। राजापै भाष्यो यह तबही॥

भई मरचो न सुधरचो काजा। मिथ्यावचनसुनतही राजा ॥ और प्रधान मुसाहिब कीनो। छत्र रु पीनश पंखादीनो॥ बँदोबस्त तिन कीनेअपनहु। सुनै न राजा भईहिसुपनहु॥ सब वृत्तांत भई तब सुनिके । रूप तपस्विधरचो यहगुनिके॥ राजापै मुहिजान न देहैं। गयेद्वारलग प्राणहु लेहैं ॥ २७॥ अबलग सबहि पदारथ भोगे। देह रु इंद्रिय रहे अरोगे॥ तिय जो चारिचतुष्पदसोहत । च्यार फूलफल खगमनमोहत ॥२८॥

"तिय"आदि, "खग"अंत,इन दो पदोंके अर्थोंके दोहे यथा–

दोहा–च्यारिचतुष्पद ।

करिकर उरु मृगखुरु मुरज, केहरिसी कटि मान ॥
लोचनचपल तुरंगसे, वरणैं परमसुजान ॥ २९ ॥

च्यारि फूल ।

कमलवदनअलसीकुसुम, चिबुकचिह्नमतिधाम ॥
तिलप्रसूनसी नासिका, पंचकतनु अभिराम ॥ ३० ॥

च्यारिफल ।

बिंब अधर दाडिम दशन, उरज बिल्वसे धीर ॥
कोहरसी एडी कहत, कोविद मति गंभीर ॥ ३१ ॥

च्यारिखग ।

है मरालसी मंदगति, कंठ कपोत सुढार ॥
पिकसी बाणी अतिमधुर, मोरपुच्छसम बार ॥३२ ॥

चौपाई ।

गंगपयोनिधिकबहुँनत्यागत।जातेरसिकसुमनअनुरागत
विधि तिलोत्तमाअपर बनाई।हन्यो सुंदजिनसोनसुहाई॥
मिहिंदीजावककरपदरागा।तिनकोमैंकियनिमिषनत्यागा
॥औरभोगतिनकेउपकरना।भोगैंसबैनिकटभौमरना ॥
३४ अहोमूढकोममसमजगमैं।भो लंपटअबलगमैंभगमैं।
गीलोमलिनमूत्रतैंनिशिदिन। स्रवतमांसमयरुधिरजुछत
बिन, चर्मलपेट्योमांसमलीना । ऊपरि बार अशुद्ध
अलीना ॥ इनमैं कौनपदारथ सुंदर । अति अपवित्र
ग्लानिकोमंदिर ॥ तियकी जंघ जघन्य सदाही।रंभा
करि करउपमितजाही॥आर्द्रमूतकोमनुपतनारो । रुधि-
रमांसत्वकअस्थिपसारो ॥ लगत जु नीके स्थूलनितंबा।
तिनकेमध्यमलिनमलबंबा ॥ तटताकेतेअतिदुर्गंधा ।
ह्वैआसक्त तहां सो अंधा ॥ ३८ ॥ अधरजोथूक-
लारसेभीजत । तजिग्लानीनिजमुखमैं दीजत ॥ दृष्ट-
मदानारीमदिरा भजि । शुद्ध अशुद्धविवेकदियोतजि ॥

दृष्टमदा कहिये जाके देखतही मद चढै।

कहतनारिके अंग जु नीके । करत विचार लगतयों
फीके ॥ कपट कूटकोआकर नारी।मैंजानीअबतजनवि-

चारी॥४०॥कलाकंद दधि पायस पेरा । तंदुलघृतव्यंजन बहुतेरा ॥ औरविविधभोजनजेकीने। तिनसबकेरसनार सलीने ॥४१॥ अबलौं भई न तृप्ति जु याकूं। तातेवृथा पोषिनाताकूं ॥ क्षुधाविनाशही वनफलकंदा । है क्यों पराधीनयहबंदा ॥ ४२ ॥ गुहा महल बन बाग घनेरा। क्यों राजाको ह्वैहूँ चेरा ॥ सेजशिलाअरुनिजभुज-तकिया । निर्झरजलकरपात्रनरुकिया॥बैठि इकंत होय सुच्छंदा। लहिये भर्छूं परमानंदा ॥ बिन एकांतन आनँद कबहूँ। मिलै अघिलौं पृथ्वीसबहूँ ॥ ४४ ॥

दोहा ।

पृथ्वीपती निरोग युव, दृढ स्थूल बलवंत ॥
विद्यायुत तिहि भूपमें, मानुष सुखको अंत ॥ ४५ ॥

चौपाई ।

जे मानव गंधर्व कहावत।ता नृपते शतगुणसुखपावत॥ होतदेवगंधर्व जु औरा। तिनते तहँ सौगुण सुखच्यौरा४६ सुख गंधर्वदेवको जोहै । ताते शतगुण पितरनको है ॥ पुनि अजानदेवमैं तिनतैं।सौगुण कर्मदेवमैं जिनतैं४७॥ मुख्यदेव जे हैं पुनि तिनतैं।कर्मदेवतैं सौगुण जिनतैं ॥ जो त्रिलोकपति इंद्रकहीजे।तामैंपुनिसौगुणगिनिलीजे॥

(मुख्यदेव कहिये ग्यारह रुद्र, बारह आदित्य; आठ वसु, येकतीस.)

सबदेवनको गुरू बृहस्पति । लहै इंद्रतैं शतगुण सुखगति ॥ जाकोनामप्रजापतिभाषत । गुरुतेसुख सौगुणसोराखत॥ ४९ ॥ ताहूतैं सौगुण ब्रह्महि सुख । लहै न रंचकसो कबहूँ दुख ॥ इतने या क्रमतैं सुखपावत। तैत्तिरीय श्रुतियों समुझावत ॥ ५० ॥

सोरठा ।

राजातैं ब्रह्मांत, कह्यो जु सुख सगरो लहै ॥
रहत सदा एकांत, कामदग्ध जाको न हिय ॥ ५१ ॥

चौपाई ।

ह्वै एकांतदेशमैं अस सुख ।युवति पुत्र धनसंगसदा दुख॥

अथ युवतीसंग दुःख वर्णन ।

युवतिकुरूपकुबोलनिजाके।सदाशोकहियह्वैयहताके ५२ प्रभु पुरीषपंडा यह रंडा। दियमुहि कौन पापको दंडा॥ बोलतवैनव्यालकागनिके।भेडभैंसिन्योरीनागिनिके५३ भूत भावती ऊटनिको है । बोलखरीको सुनिखर मोहै॥ रैनि जुऊंचेस्वरहिउचारत।स्यारहजारनसुनतपुकारत ५४ निरपराध तिय बिनवैरागा।तजतनबनतपापजियलागा॥ रहतदुखीयोंनिशिदिनपियमन। तियकुबोलसुनिलखि-कुरूपतन॥कामिनि ह्वै जु सुरूप सुबानी । सो कुरूपते ह्वै दुखदानी ॥ चमकचामकी पियहिपियारी । अर्थधर्मनशि मोक्ष बगारी ॥५६॥

अथ धनबिगार।

मीठे बैन जहरयुत लडवा। खाय गमायबुद्धि है भडवा॥
और कछूसुपनहुनहिं देखै। कामअंधइककामिनिलेखै९७
धन कछुमिले जु बाहिर घरमैं। सोसबखरचैकामिनिघरमैं
भूषणवस्त्र ताहि पहिरावै। गुरुपितुमातनयादिहुआवै ९८
पायसपान मिठाई मेवा। देय भक्तितैं तिय निज देवा॥
नेह नाथ नाथ्योनहिंछूटै। तियकिशानपियबैलहिकूटै९९

अथ धर्मबिगार।

ज्यों सूवा पिंजरेमें बंधुवा। सिखयो बोलतशुद्धअशुधवा
तैसैंजो कछुनारिसिखावत। सोगुरुमातपिताहिसुनावत॥
जैसे मोर मोरनी आगे। नाचि रिझाय आप अनुरागे॥
तैसेविविधवेषकरि तियको। मन रिझायरीझतमन पियको
जब दुहूंनकोमनअनुराग्यो। तबहिमदनमदिरामदजाग्यो
भये बावरे वसनहुत्यागे। अतिउन्मतघूरनपुनिलागे६२॥
प्रेतरूप धरि लग्न अमंगल। भिरि फिरि भिरतमेषमनुदंगल
ज्यों लोटतमद्यपिमतवारो। गिनतमलीनगलीननवारो॥
त्योंनर नारिमदन मद अंधे। अतिगलीन अंगनमें बंधे॥
करतमदनमदभ्रमजेमनकूं। है अचरन मुनित्यागीजनकूं
नशै मदन मदतेमतिनरकी। लखतनऊंचनीचपरघरकी॥
तियहु बावरी मदनबनाई। क्रियादुखद जिहिं हैसुखदाई॥
प्रबलकाममदिरा मदजागै। तब द्विजतियधानकतेलागै॥

पिये मदनमदिरानरनारी। ऐसै करत अंनतखुवारी॥ ६६॥
कामदोष यों नरहि बिगोवत। सोइप्रगटसुंदरितियजोवत
यातेअति सुरूपतियदुखदा। ताकोत्यागकहतमुनिसुखदा
जोसुरूपतियमें अनुरागत। विषसमदुखदपेखिनहिंभागत
उभयलोककीकरतसुहानी। मुनिजनगनगुनसाखबखानी
जो नाना विधभोजनखावै। रस ताको फलबिंदु उपावे॥
जीवनबिंदुअधीनसबनको। नशतशोकबिंदुहुतेमनको॥
है जब जनकोमनमलवासी। करतशोकअतिधरतउदासी
रुधिरनिवासधरतमनजबहूँ। चंचलअधिकरजोगुणतबहूँ॥
जब मनकरत बिंदुमें बासा। तबहिशोकचंचलतानासा॥
पुनि आपहि बलवत जनजानै। ह्वैप्रसन्न शुभ कारजठानैं॥
बिंदु अधिक होवै जा जनमें। सुंदरकांतिरूपता तनमें॥
बिंदुहुको तनुमें उजियारो। नशैबिंदुतनमनहतियारो७२
जाको बिंदु न कबहूँनाशै। वलिनपलिततिहितनपरकाशै
योगी करत खेचरी मुद्रा। तातेबिंदु राखि ह्वै भद्रा॥७३॥
अष्ट सिद्धि जे धारत योगी। बिंदु खसै हारत ते भोगी॥
अस अतिउत्तमबिंदुजुजगमें। तिहितियछीनिलेतनिज-भगमें॥ ज्यों किसानबेलनमें ऊषहि। पेरतलेतनिचोरि-पियूषहि॥ बारबार बेलनमें धारहि। ह्वै असार दध्यात-बजारहि॥ ७५॥

(हलकीबाँध गंडेकी बँधीहुई बेलनमें देवे, ताका नाम दथ्या पंजाबमें प्रसिद्ध है.)

त्यों तियभींचिभुजनमेंपीकूं। भरतयोनिघटखींचिअमीकूं॥ पुनिपुनि करतक्रियानिततौलौं। शेषबिंदुकोबिंदुनजौलौं॥कियो असार नारि नरदेहा।खींचफुलेल फूलज्योंखेहा॥ भौ अकाम सब ताहि जरावे। सूखे बैन मुरारलगावै॥७७॥ है जु सुरूप जोर धन भारी। तानरपै नारी बलिहारी॥ करि सुरूप धनबलको अंता। कहतताहितूकाकोकंता ७८ तिहिंपुनिमिलनचहैजु अनारी। करधरपै धरतहु देगारी॥ नाक चढाय आँखिहुमोरै। जाय न पतिसेजहुकेधोरै॥७९॥कोटिवज्र संघात जु करिये। सबकोसार खींचिइक धरिये॥ तियके हिय समसोनकठोरा।ऋषिमुनिगणयहदेतढँढोरा॥८०॥

करतपुमान हठत तिय ज्यों ज्यों।
चिपटत शठ मति जनमन त्योंत्यों॥
कबहुँक ताको वांछित करिके।
मरणअंत छोडत न पकरिके॥ ८१॥
पढ्यो पुराण वेद स्मृति गीता।
तर्कनिपुण पुनि किनहु न जीता॥
करत अधीन ताहि तिय ऐसे।
बाजीगर बंदरकूं जैसे॥ ८२॥

सब कछु मनभावत करवावत ।
पढे पशुहि भलभाँति नचावत॥
उक्ति युक्ति सब तबही विसरै ।
जब पंडित पढि तियपै ढिसरै ॥८३ ॥
जब कबहूँ सुमरत यह वेदा ।
तब तियमैं मानत कछु खेदा ॥
तिहि त्यागनकौं इच्छा धारै ॥
पुनि तिय नैन सैन शर सारै ॥ ८४ ॥
जहरकटाक्ष नैन शर बोरै ।
तानि कमान भौंह युग जोरै ॥
मारत सारत हिय सब जनको ।
विज्ञहु बचत न धन शठगन को ॥ ८५ ॥
(विज्ञकहिये विद्वान्हू न बचत, शठगणको
धनकहिये कहाची ज.

भयोनतियमैं तीव्र विरागा।यों मतिमंद करत पुनिरागा करतविविध आज्ञा ज्यों चाकर।हुकुमकरैंबैठी मनुठाकर॥जे नरनारि नयनशर बीधे। तिनके हिये होतनहिं सीधे॥ भलो बुरो सुख दुख सब बिसरत। ते कैसे भवदुखतेनिसरत॥ नारि बुरी वेश्या अरु परकी। तीजी नरकनिशानी घरकी॥तजत विवेकी तिहुँमैं नेहा। करै नेहतिह शठमुख खेहा॥ ८८ ॥

दोहा।

अर्थ धर्म अरु मोक्षकूं,नारि बिगारत ऐन ॥
सबअनर्थको मूललखि,तजै ताहि ह्वै चैन॥८९॥
पुत्र सदा दुख देत यों, बिनप्रापति दुख एक ॥
गर्भसमय दुखजन्मदुख,मरैतुदुःख अनेक॥९०॥

चौपाई।

गर्भधरत जौलौं नहिं नारी। दुख दंपति मन तौलौं-भारी ॥ ह्वै जु गर्भयहचिंतननाशै। पुत्रीहोय किपुत्रप्रकाशै ॥९१॥ गर्भगिरनकेहेतु अनंता। तिनते डरतकरत अतिचिंता ॥ ह्वै जु पूतनवमासविहानै। जननीजनक अधिकदुखसानै ॥ नवग्रहमैंइक द्वै नहिं बिगरै। अस-जनकोनजन्मजगसगरै॥बिगरेग्रहकीनिशिदिनचिंता। करतमातपितुबैठइकंता॥९३॥ शिशु उदास ह्वै जबतजि-बोबा। तबदोऊमिलिलागतरोबा॥यों चिंततकछुगये म-हीने। दाँतपूतके निकसेझीने ॥ ९४ ॥ मरत बालबहु-निकसतदंता। तब यहचिंतादुखतियकंता ॥ जियेदूब-रोदुखतें बारो। देखि चुराहे धरत उतारो ॥ ९५ ॥ म्लेच्छ चमारचूहरे कोरी। तिनतेझरवावत द्विज धोरी॥ सैयदख्वाजापीरफकीरा । धोकत जोरत हाथअधी-रा ॥९६ जाकूं हिंदु कबहुं नहिं मानै। पुत्रहेतु तिहिं इष्ट पिछानै ॥ भैरोंभूतमनावतनाना। धरत शिवाबलि-

भूमिमशाना ॥ ९७ ॥ धानकको डमरू धरिबाजै।
कर जोरतपूजतनहिं लाजै ॥और यंत्र ताबीज घनेरे।
लिखिमढवाय पूतगर गेरे ॥ ९८ ॥

निजकुलमेंइकअच्युतपूजा। किनहु नसुपनहुसुमऱ्योदूजा
सोकुलनेमपूतहितत्याग्यो व्यभिचारनज्योंजहँतहँलाग्यो
होतशीतलाकोजबनिकसन। नशतमातुपितुमनकोविक-
सन ॥ स्नानक्रियातजिरहतमलीना। परमदेवगदहाकूं-
कीना॥१००॥मोरिबाग बखसहु शिशुमोरा।गदहा मा-
तु चराऊं तोरा ॥ योंकहिचनागोदमैंधारै। बिनतीक-
रिगदहाकूं चारै १०१ ॥ असअनंतदुखतेशिशुपारन।
युवाहोतलौंऔर हजारन ॥ उमर पूतकी है जो थोरी।
मरिहैंकरहुउपायकरोरी १०२ ॥ मरे मातपित कूटहिं मा-
था। मानि आपकूं दीन अनाथा ॥ हाय २ करि नि-
शिदिन रोवैं।करि धिक २ निजजन्मबिगोवैं ॥पूतमरण-
कोदुख है जैसो। लखत सपूत अपूत न तैसो ॥ जोजी-
वैतोहोतहितरुना। लखतनारिकेपोषणभरना॥१०४॥
(सपूत कहिये जाका पूत जीवै है, औ अपूतकहिये
जाके पूत नहीं हुआ)

जिनअनेकयत्ननिप्रतिपारौ। तिनकूंजलप्यावनहैभारौ॥
रजनिसेजपैंसिखवैनारी।तवपितमातदेहुमुहिंगारी: १०५
है सुपूत तौ प्रातहिं उठिके । नवै दूरते मा-

थनगठिके ॥ चहै मातपित आवैंनेरे । पूतन सन्मुख आँखिहु हेरे॥१०६॥है कुपूत तौ उठतहि प्राता।वचन गारि समबकिअसुहाता॥जु दोहोयलेसबघरकोधन । दे पित मातहि इकतिनको तन॥फेरिसँभारतकबहुंनतिनकूं। पोषतसबदिनतियनिजतनकूं।।देखि लेतपित मात उसासा । या विधिपुत्र सदादुखराशा ॥ ८ ॥

दोहा ।

करि बिचार यो देखियै, पुत्र सदा दुखरूप ॥
सुख चाहत जे पूततैं, ते मूढनके भूप ॥ १०९ ॥
तजि तिय पूत जु धन चहै, ताके सुखमैं धूर ॥
धन जोरन रक्षा करन,खरच नाश दुख मूर॥११०॥

चोपाई ।

जो चाहै माया बहु जोरी । करै अनर्थ सु लाख करोरी॥
जातिधर्मकुलधर्मसुत्यागै।जोधनकूं जोरनजनलागै१११
बिनाभागतदपिनधनजुरिहै । जुरै तु रक्षा करि २ मरिहै॥
खर्चनधनघटिहैयहचिंता।नाशै निशिदिनतापअनन्ता॥
सदाकरतयूं दुखधनमनकूं।चहै ताहि धिक २ तिहिं जनकूं॥
पुत्रतिपूतधनलखिदुखदाता।तज्योभर्तृममता कोनाता॥

कुंडलिया-छन्द ।

भर्तृ वन एकांतमें, गयो कियो चित शांत।
भयो नयो दीवान तिन, सुन्यो सकल वृतांत ॥

सुन्यो सकल वृत्तांत, चिन्त यह उपजी ताके।
जो नृप जीवत सुनै, मिलै वा काहू नाके॥
तौ झूठे हम होहिं, भूप दे सबको दण्डा।
याते अब मिलि कहौ, मर्छु भो प्रेत प्रचण्डा॥११४॥

दोहा।

करि सलाह यह परस्पर, गये कचहरी बीच॥
सबहि कही यह भूपते, मर्छु प्रेत भो नीच॥११५॥
राख लगाये देहमैं, मिलै जाहि बतरात॥
तिहिं मारत सो नर बचत, जो तिहि देखि परात॥
सुनि भूपहु निश्चय कियो, मर्छू मरि भो प्रेत॥
सांच झूठ भूप न लखत, है जु प्रमाद अचेत॥ ११७॥
कछु दिन बीते भूप तब, मारन गयो सिकार॥
पैठ्यो गिरि वनसघनमें, जहँ मृगराज हजार॥ ११८॥
तपत तहाँ इक तरुतरे, मर्छू निज दीवान॥
पेखि ताहि भाज्यो उलटि, मानि प्रेत दुखदान॥११९॥

इंदव छंद।

मर्छुमर्‌योरु परेतभयोयह, वाक्यअसत्यहुसत्यपिछाना॥
देखिलियो निज आँखिनजीवत, तोहुपरेतहुमानिभगाना
वंचकते सुनि द्वैत तथा, मतिमैं विसवासकरै जु अजाना॥
ब्रह्म अद्वैत लखै परतच्छहु, तौहु न ताहि हिये ठहराना॥

१ परात कहिये भाग जावे।

दोहा।

भेदवचन विश्वास करि, सुनत जु कोउ अजान॥
सो जन दुख भुगते सदा, ह्वै न ब्रह्मको ज्ञान॥
याते सुनैं जु भेदके, वचन लखै सु असत्य॥
तबही ताकूं ज्ञान ह्वै, महावाक्यते सत्य॥ १२३॥

चौपाई।

शिषतैंसुनीजु भेद कहानी।जानि झूठ ते नरकनिशानी॥
तिनकेकहनहारसबझूठे।पुरुषारथसुखतेशठरूठे॥ १२४॥
तिनको संगन कबहूँ कीजे।ह्वै जो संग न वचन सुनीजै॥
जोकहुँसुनैतुसुनतहित्यागहु।म्लेच्छजैनवचसमलखिभा-
गहु।जोमिथ्या ह्वै दैशिक वेदा।कैसेकरहीं भवदुख छेदा॥
याकोअबउत्तरसुनिलीजै।मिथ्यादुख मिथ्यातेछीजे॥
वेदरुगुरूसत्यजोहोवै।तौ मिथ्याभवदुख नहिं खोवै॥
यामैं इकदृष्टांतसुनाऊँ। जातेतवसंदेहनशाऊँ॥ १२७॥
सुरपति इंद्र स्वर्गमैंजैसो।प्रबल प्रताप भूप इक ऐसो॥
भीमसमानशूरबहुतेरे। तिनके चहुँधा डेरे गेरे॥ १२८॥
योधाले निज १हथियारन।खरेंरहैंतिहिं द्वार हजारन॥
अंदिरमंदिरडचोढीठाढे।लियेखड्गकोशनते काढे १२९॥
ऊँचोमहल अटारी जामैं।फूलसेज सोवे नृप तामैं॥
पंछीहु पहुँचन नहिं पावै। तहां और कैसे चलिजावै॥

१ कोश कहिये म्यान.

तहां भूपदेख्यो असखुपना । पकऱ्यो पैर गीदरीअपना ॥
भूपछुड़ायोचाहतनिजपग।तजतनगीदरिपकरिजुपगरग।
तबराजायोंखरो पुकारै।है को अस जो गीदरि मारै॥
जोधा जो ठाडे निजद्वारा।तिनरंचकहु न दियो सहारा॥
तबनृपदंडलियोनिजकरमैं।आपुहिमाऱ्योस्यारनिशिरमैं
लगतदंड भो ताको अंता । तबनिसरे पगरगते दन्ता ॥
दांतलगेगाढे नृपपगमैं । यों लंगरात सुचालत मगमैं॥
तब चाल्यो ले लाठी करमैं।पहुँच्यो घावरियाके घरमैं॥
ताहि कह्यो फोहा अस कीजैं। घाव पांवको तुरत भरीजै॥
घावरियानृपतेयह भाख्यो । फोहानहिं तयारधाराख्यो॥
जो तू दे पैसा इक मोकूं । तो तयार करि देहूँ तोकूं ॥
तब उलटयो नृप लाठीटेका । नहिंदेनेकूं कोंडिहु एका॥
लाग्यो सोच करन टरि घरते। बूझे बात कौन विनजरते॥
जो मैं होत धनी बडभागा। आवुत घर घावरिया भागा॥
मोहिं निकम्मा जानि कँगाला । घरते तुरतरोगज्यों टाला
याहीकूं कछु दोष नदीजै।विनास्वारथको किहिन पतीजे
मात पिता बांधव सुत नारी । करतप्यार स्वारथतैं भारी ॥
जो नहिं स्वारथ सिद्धी पावै।तो इनकूं देख्योहु न भावै
जा बिन घरीएकनहिं रहते ।दुख अपार विछुरेसबलहते ॥
जब देखै आयो घरपौरी । घरके मिलतभाजिभरिकौरी

विधि अधीन कोढी सो होवै।सब अंगनिमैंपानीचोवै॥ अरुझरि परीं आंगुरी जाके। भिनभिनातमुखमाखीताके कहत ताहि ते घरके प्यारे। मरपापी अबतो हतियारे॥ जिहिंदेखतअँखियाँनअघानी। तिहिंलखिगलानिवमन ज्योंआनी॥ जो तियहियलागतपतिप्यारो।कियनचहत-पलउरते न्यारो॥ताकीपवनबचाथोलोरै।गिरे जु वसन तु नाक सकोरै॥ जिहिं पितु मात गोदमें लेते। सकुचत तिहिं करतेकछुदेते॥ मिलतभ्रातजौभरिभुज कोरी। सोबतरातबीचदैडोरी॥ ऐसे जग स्वारथको सारो। बिनस्वारथको काको प्यारो॥ मुहिं स्वारथ-योग्यनविधिकीनो। याते इनफोहानहिंदीनो॥ यों चिततइकमुनि तिहिंभेट्यो। तिनदैजरीघावदुखमेट्यो निद्राते जाग्यो नृप जबहीं। घावदरदमुनिनाशे तबहीं॥ शिषयहतुहिंदृष्टांतप्रकाश्यो। लखिमिथ्यातैंमिथ्या नाश्यो॥मिथ्यादुखदेख्योजबराजा।साचसमाजनकिय-कछुकाजा॥१४६॥

टीका—सर्व प्रकरणका अर्थ स्पष्ट भाव यह है—संसार रूप दुःख मिथ्या है, याते तिसके दूरि करनेके साधन वेद गुरु मिथ्याही चाहियें हैं, मिथ्याके नाशमें सत्यसाधनकी अपेक्षा नहीं. और सत्यसाधन होवे, तो तिनते मिथ्याका नाश होवै नहीं. जैसे राजाके

समीप मिथ्यागीदरी स्वप्नमें पहुँची, किसी सत्ययोद्धासे रुकी नहीं. और राजा पुकारयो जब काहूसेभी मरी नहीं.और राजाके पास अनेक साँचे शस्त्र धरे रहे, तौ भी मिथ्यादण्डसे मरी. और राजाके मिथ्याघाव भया. तब कोई वैद्य जराह साँचा पाया नहीं. मिथ्या जराहके पास गया, ताने पैसा माँग्या, तौ अनंत खजाने सांचे धरेही रहे; एक पैसा भी राजाकूं मिला नहीं. कोई भी सत्यसाधन राजाके दुःखके नाश करनेमें समर्थ हुआ नहीं; किंतु मिथ्या मुनिने मिथ्याजरी देके मिथ्या दुःखका नाश किया इस रीतिके स्वप्न सर्वकूं अनुभवसिद्ध है जाग्रत्पदार्थका स्वप्नमें काहूकूं कभी भी उपयोग होवै नहीं तैसे मिथ्या जो संसारदुःख, ताका नाश मिथ्यावेदगुरु से होवै है, सांचे वेदगुरु अपेक्षित नहीं.

जैसे मरुस्थलके मिथ्याजलते तृषाका नाश होवै नहीं, तसे मिथ्यावेदगुरुते संसारदुःखका नाश होवै नहीं. और मिथ्या वेदगुरु मानिके संसारदुःखका तिनते नाश अंगीकार करोगे तौ मरुभूमिके जलते भी तृषाका नाश हुवा चाहिये. यह शंका शिष्यने करीथी,ताका समाधान—

चौपाई ।

यद्यपि मिथ्यामरुतलपानी। तातेकिनहुनप्यासबुझानी॥
तदपि विषमदृष्टांत सु तेरो। सत्ताभेददुहुनमेंहेरो॥ १४७॥

टीका–यद्यपि मिथ्या जो मरुभूमिका पानी, ताते किसीने प्यास नहीं बुझाई; और मिथ्यागुरुवेदते दुःखके नाशकी न्याई मिथ्याजलसे प्यासका नाश हुआ चाहिये; और प्यास नाश होवै नहीं; तैसे मिथ्यागुरुवेदते संसारका नाश बनै नहीं; तदपि कहिये तौभी तेरा दृष्टान्त विषम है. काहेते, दुहुनमें कहिये मरुस्थलका जल और प्यास इन दोनोंमें सत्ताका भेद है, ताकूं हेरो कहिये देखो.

चौपाई।

समसत्ता भवदुख गुरुवेदा। यों गुरुवेद करत भवछेदा ॥
आपसमैंसमसत्ता जिनकी। लखिसाधकबाधकता तिनकी।

टीका–भवदुःख और गुरुवेदकी समसत्ता कहिये एकसत्ता है, याते गुरुवेदके भवदुःखका छेद होवैहै; जिनकी आपसमें सम सत्ता होवे, तिनकी आपसमें साधकताऔर बाधकता होवे है; जैसे १ मृत्तिका और घटकी समसत्ता है, याते मृत्तिका घटका साधक है, २ अग्नि और काष्ठकी समसत्ता है, तहां अग्नि काष्ठका बाधक है. १ साधक कहिये कारण और २ बाधक कहिये नाशक. मरुस्थलके जलकी और प्यासकी समसत्ता नहीं याते मरुस्थलका जल प्यासका बाधक नहीं. या स्थानमें यह रहस्य है:– चेतनमें परमार्थसत्ता है. और चेतनसे भिन्न

जो मिथ्या पदार्थ; तिनमें दो प्रकारकी सत्ता है—एक तौ व्यवहार सत्ता है और दूसरी प्रतिभास सत्ता है.

१ जा पदार्थका ब्रह्मज्ञान विना बाध होवे नहीं, किंतु ब्रह्मज्ञानसेही बाध होवे, ता पदार्थमें व्यवहारसत्ता कहिये है. सो व्यवहारसत्ता ईश्वरसृष्टिमें है; काहेते देह-इंद्रियादिक प्रपंच जो ईश्वरसृष्टि, ताका ब्रह्मज्ञानसे बिना बाध होवै नहीं, ब्रह्मज्ञानसेही बाध होवै है. यद्यपि ईश्वरसृष्टिके पदार्थनका ब्रह्मज्ञानसे विना नाश तौ होवै भी है, परंतु ब्रह्मज्ञानसे बिना बाध होवे नहीं. अपरोक्षमिथ्यानिश्चयका नाम बाध है. सो अपरोक्षमिथ्यानिश्चय ईश्वरसृष्टिके पदार्थनमें ब्रह्म-ज्ञानसे प्रथम किसीकूं होवे नहीं, ब्रह्मज्ञानसे अनं-तरही होवे है. याते मूलअविद्याके कार्य जो जाग्रत्के पदार्थ, ईश्वरसृष्टि तामें व्यवहारसत्ता है. जन्ममरण बंधमोक्षआदिक व्यवहारके सिद्ध करनेवाली जो सत्ता कहिये होना, सो व्यवहारसत्ता कहिये है.

और २ ब्रह्मज्ञानसे बिनाही जिनका बाध होवे, तिन पदार्थनमें प्रतिभाससत्ता कहिये है. जैसे ब्रह्मज्ञानसे बिनाही शुक्ति, जेवरी, मरुस्थल, आदिकनके ज्ञानते, रूपा, सर्प, जल, आदिकनका बाध होवेहै, तिनमें प्रतिभास सता है. प्रतिभास कहिये प्रतीतिमात्र जो सता

कहिये होना, सो प्रतिभाससत्ता कहिये है. तूलाअविद्याके कार्य, रूपा आदिक पदार्थनका प्रतीतिमात्रही होना है, याते तिनकी प्रतिभाससत्ता है.

जाका तीनकालमें बाध होवै नहीं; ताकी परमार्थसत्ता कहिये है. चेतनका बाध कभी होवे नहीं,याते परमार्थसत्ता चेतनकी है. इस रीतिसे वेद गुरु और संसारदुःख इनकी एक व्यवहारसत्ता होनेते आपसमें समसत्ता है. याते मिथ्यावेदगुरुते मिथ्या भवदुःखका नाश बनै है. और क्षुधा पिपासा प्राणके धर्म हैं, प्राण और ताके धर्मनका ब्रह्मज्ञानसे बिना बाध होवे नहीं, याते पिपासाकी व्यवहारसत्ता है, मरुस्थलके जलका ब्रह्मज्ञानसे बिनाही मरुस्थलके ज्ञानते बाध होनेते मरुस्थलके जलकी प्रतिभाससत्ता है. याते प्यास और मरुस्थलके जलकी समसत्ता नहीं होनेते ता जलते प्यासका नाश होवे नहीं.१ या प्रकारते दार्ष्टांतविषे बाधक वेद, गुरु, और बाध्य संसारदुःख, तिनकी सत्ता एक है, और २ दृष्टांतविषे जल और प्यासकी सत्ताका भेद है,याते दृष्टांत विषम कहिये दार्ष्टांतके सम नहीं. शंका-

चौपाई।

ब्रह्मभिन्न मिथ्यासबभाखौ। तिनको भेदहेतकिहिराखौ॥
उपज्योयहमोकूं संदेहा।प्रभुताकोअब कीजे छेहा॥१४९

टीका-हे प्रभु ! ब्रह्मसे भिन्न आप सर्वकूं मिथ्या कहोहो, तिन मिथ्यापदार्थमें १ शुक्तिरूपा, रज्जुसर्प, मरुस्थलजल आदिकनका ब्रह्मज्ञानसे बिनाही बाध, और २ संसारदुःखका ब्रह्मज्ञानसे अनंतर बाध, यह भेद कौन हेतुसे राखो हो ? उत्तर-

चौपाई।

सकलअविद्याकारजमिथ्या। शिषतामैं रंचकहुनतथ्या॥
जा अज्ञानसे उपजत जोई। ताके ज्ञान बाध तिहिं होई॥

टीका-हे शिष्य ! यद्यपि ब्रह्मसे भिन्न सकल अविद्याका कार्य है, याते मिथ्या है तामें रंचक भी तथ्या कहिये सत्य नहीं, परंतु जाके अज्ञानसे जो उपजे है, ताके ज्ञानसे तिसका बाध होवै है. १ शुक्ति रज्जु मरुस्थल आदिकनके अज्ञानते, रूपा सर्प जल आदि उपजैं हैं, तिनका बाध शुक्ति रज्जु मरुस्थल आदिकनके ज्ञानते होवै है, और २ ब्रह्मके अज्ञानसे जो जन्मरणादिक संसार दुःख उपजैं हैं, तिनका बाध ब्रह्मज्ञानते होवै है.

शिष्य उवाच-दोहा।

भगवन ब्रह्म अज्ञानते, जो उपजै संसार॥
सो किहिं क्रमते होत हैं, कहौ मोहिं निरधार॥

अर्थ-स्पष्ट है।

श्रीगुरुरुवाच-चौपाई।

जैसेस्वप्नहोतबिनक्रमते। त्योंमिथ्याजगभासतभ्रमते ॥
जोताकोक्रमजान्योलोरै। सोमरुथलजलवसननिचोरै॥

अर्थ-स्पष्ट है।

दोहा।

उपनिषद्नमें बहुतविधि, जगउत्पत्तिप्रकार ॥
अभिप्राय तिनको यही,चेतन भिन्न अपार ॥१८३॥

टीका-यद्यपि उपनिषद्में जगत्की उत्पत्ति अनेक प्रकारसे कही है, १ छांदोग्यमें तो सद्रूप परमात्माते अग्नि, जल, पृथ्वी क्रमते उपजैं हैं, यह कह्या है. और तैत्तिरीयमें आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी, क्रमते होवैं हैं.इसरीतिसे पांचभूत की उत्पत्ति कही है. और २ कहूं सर्वकी परमेश्वर उत्पत्ति करै है, इसरीतिसे क्रमसे बिनाही उत्पत्ति कहीहै.ऐसे जगत्की उत्पत्ति वेदमें अनेकप्रकारसे कही है. तहां वेदका यह अभिप्राय है:-जगत् मिथ्या है.जो जगत् कछु पदार्थ होता तौ ताकी उत्पत्ति अनेक प्रकारसे वेद नहीं कहता,अनेक प्रकारसे जगत्की उत्पत्ति कही है याते जगत्की उत्पत्ति प्रतिपादनमें वेदका अभिप्राय नहीं. किंतु अद्वैतब्रह्म लखावनेकूं जगत्के निषेध करनेवास्ते मिथ्याजगत्का

किसीरीतिसे आरोप किया है. दृष्टांतः- जैसे विनोदके निमित्त दारुका हस्ती उडावनेकूं बनावै हैं, ताके कान पूँछ टेढे होवें; तो सूधे करने वास्ते यत्न नहीं करते. तैसे अद्वैतज्ञानके निमित्त प्रपंचके निषेधनकूं प्रपंचका आरोप किया है. याते वेदने प्रपंचकी उत्पत्तिक्रम, एकरूप कहनेमें यत्न नहीं किया, प्रपंच की उत्पत्ति एकरूपसे वेदने नहीं कही, याते यह जानें हैं,--वेदका अभिप्राय प्रपंच निषेधमें है, ताकी उत्पत्तिमें अभिप्राय नहीं और-

१सूत्रकार भाष्यकारने द्वितीयअध्यायमें उत्पत्ति कहनेवाले श्रुतिवचनका विरोध दूरिकरिके जो एकरूपसे तैत्तिरीय श्रुतिके अनुसार, उत्पत्तिमें सब उपनिषदनका अभिप्राय कह्या है सो मंदजिज्ञासुके निमित्त कह्या है जो उत्पत्तिवाक्यनते पूर्व कहे अभिप्रायकूं नहीं जाने, ता मंदजिज्ञासुकूं उपनिषदनमें नानाप्रकारसे जगत्की उत्पत्ति देखिके आपसमें उपनिषदनका विरोध है, यह भ्रांति होय जावेगी. ताके दूरि करनेकूं सर्व उपनिषदनमें एकरूपसे जगत्की उत्पत्तिप्रतिपादनका प्रकार कह्या है, और २ ताकूं ब्रह्मविचारसे यथार्थ ज्ञान नहीं होवै, ताकूं लयचिंतनके निमित्त भी उत्पत्तिक्रम कह्या है. जा क्रमते उत्पत्ति

कही है; तासे विपरीतक्रमते लयचिंतन करै. ता लयचिंतनसे अद्वैतमें बुद्धि स्थित होवै है. सो लयचिंतनका प्रकार पंचीकरणमें वार्तिककार सुरेश्वराचार्यनें कह्या है. ३ यह ग्रंथ उत्तम जिज्ञासुके निमित्त है, याते जगत्की उत्पत्ति और लयका प्रकार नहीं लिखा. और सागररूप है याते संक्षेपते दिखावैं हैं, शुद्धब्रह्मसे जगत्की उत्पत्ति होवै नहीं, काहेते शुद्धब्रह्म असंग है और अक्रिय है. किंतु मायाविशिष्ट जो ईश्वर तासे जगत्की उत्पत्ति होवै है. याते माया और ईश्वरका स्वरूप प्रतिपादन करैं हैं.

कवित्त।

जीव ईश भेदहीन चेतन स्वरूप माहिं,
माया सो अनादि एक शांत ताहि मानिये।
सत औ असतते विलक्षण स्वरूप ताकें,
ताहिको अविद्या औ अज्ञानहू बखानिये॥
चेतनसामान्य न विरोधी ताको साधक है,
वृत्तिमें आरुढ वा विरोधी वृत्ति जानिये।
मायामैं आभास अधिष्ठान अरु माया मिल,
ईशसरवज्ञ जगहेतु पहिचानिये॥ १६४॥

टीका–जीव ईश्वर भेदरहित जो शुद्धचेतन, ताके आश्रित माया है सो माया अनादि कहिये आदि-

रहित है. आदि नाम उत्पत्ति है. १ जो मायाकी उत्पत्ति अंगीकार करैं, तौ मायाके कार्य प्रपंचसे तौ पुत्रसे पिताकी न्याईं मायाकी उत्पत्ति बनैं नहीं. चेतनसेंही मायाकी उत्पत्ति माननी होवेगी. तहां २ जीवभाव और ईश्वरभाव तौ मायाके कार्य हैं, मायाकी सिद्धि हुए बिना जीव ईश्वरका स्वरूप असिद्ध है. याते जीवचेतन वा ईश्वरचेतनसे मायाकी उत्पत्ति कहना असंभव है. और ३ शुद्ध चेतन असंग है, अक्रिय है, निर्विकार है, *ताते मायाकी* उत्पत्ति माने विकारी होवेगा. और शुद्ध चेतनसे मायाकी उत्पत्ति होवे तौ मोक्षदशाविषे माया फिर उपजेगी. याते मोक्षनिमित्त साधन निष्फल होवेंगे, इसरीतिसे माया १ उत्पत्तिरहित है, याते अनादि है, और २ एक है ३ शांत कहिये अंतवाली है, ज्ञानते मायाका अंत होवै है. और ४ सत् असत्से विलक्षण है. जाका तीनिकालमें बाधहोवे नहीं सो सत् कहिये है, ऐसा चेतन है. मायाका ज्ञानते बाध होवे है, याते सत्से विलक्षण है. जाकी तीनकालमें प्रतीति होवे नहीं, सो शशशृंग, वंध्यापुत्र, आकाशफूलआदिक असत् कहिये हैं. ज्ञानसे पूर्व माया और ताका कार्य प्रतीत होवे है. जाग्रत्विषे "मैं अज्ञानी हूं, ब्रह्मकूं नहीं जानूं हूं" इस री-

तिसे माया प्रतीति होवै है; और स्वप्नके विषे जो नाना पदार्थ प्रतीत होवैं हैं तिनका उपादानकारण माया है.

और सुषुप्तिसे अनंतर अज्ञानकी इसरीतिसे स्मृति होवै है:-"मैं सुखसे सोया, कछु भी न जानता भया" सो स्मृति अज्ञातवस्तुकी होवे नहीं, याते सुषुप्तिमें अज्ञानका भान होवे है, सो अज्ञान और माया एकही है तिनका भेद नहीं. या प्रकारते तीनों अवस्थाविषे मायाकी प्रतीति होवे है, याते असत्से विलक्षण है इस रीतिसे सत् असत्से विलक्षण जो माया, ताका कार्य भी सत्असत्से विलक्षण है. सत् असत्से विलक्षणकूं ही अद्वैतमतमें मिथ्या कहे हैं, और अनिर्वचनीय कहे हैं, यातें माया और ताके कार्यते द्वैतकी सिद्धि होवै नहीं. काहेते; जैसे चेतन सद्रूप है, तैसे माया और ताका कार्य सद्रूप होवै तो द्वैत होवै. सो माया और ताका कार्य सत् असत्से विलक्षण होनेते मिथ्या है मिथ्या-पदार्थसे द्वैत होवे नहीं, जैसे स्वप्नके पदारथ मिथ्या हैं तिनते द्वैत होवै नहीं ।

१ जीव ईश्वरविभागरहित शुद्धब्रह्मके आश्रित माया है; और २ शुद्धब्रह्मकूंही आच्छादन करै है; जैसे गेहके आश्रित अंधकार गेहकूं आच्छादन करै है; या पक्षको स्वाश्रय स्वविषय पक्ष कहैं हैं. १ स्व कहिये शुद्धब्रह्मही

आश्रय; और २ स्व कहिये शुद्ध ब्रह्मही विषय, कहिये मायाते अच्छादित है. अर्थ यह ढका है. संक्षेपशारीरक, विवरण, वेदांतमुक्तावली, अद्वैतसिद्धि, अद्वैतदीपिका, आदिक ग्रंथकारोंने स्वाश्रय स्वविषयही अज्ञान अंगीकार किया है.

और वाचस्पतिका यह मत है:-१ अज्ञान जीवके आश्रित है और २ ब्रह्मकूं विषय करै है; १ "मैं अज्ञानी ब्रह्मकूं नहीं जानूं हूं" या प्रतीतिसे "मैं" शब्दका अर्थ जीव "अज्ञानी" कहनेते अज्ञानका आश्रय भान होवै है और २ "ब्रह्मकूं नहीं जानूं हूं" याते अज्ञानका विषय ब्रह्म प्रतीति होवै है इस रीतिसे अज्ञान जीवके आश्रित और ब्रह्मकूं विषय कहिये आच्छादन करै है सो अज्ञान एक नहीं, किंतु अनंत हैं, काहेते एक जो अज्ञान मानैं, तो एक अज्ञानकी एकके ज्ञानते निवृत्ति हुयेते औरनकूं अज्ञान और ताका कार्य संसार प्रतीत नहीं हुवा चाहिये, २ जो ऐसे कहैं आजतक किसीकूं ज्ञान हुवा नहीं तो आगे भी किसीकूं ज्ञान नहीं होवेगा. याते श्रवणादिक साधन निष्फल होवेंगे याते अनंत जीवनके आश्रित अनंत अज्ञान अनंत हैं, जीवनके अनंत अज्ञान कल्पित, ईश्वर अनंत और ब्रह्मांड अनंत हैं. जो जीवकूं ज्ञान होवे ताका अज्ञान ईश्वर ब्रह्मांडकी निवृत्ति होवै है, जाकूं ज्ञान

नहीं होवे, ताकूं बंध रहै है. यह वाचस्पतिका मत है सो समीचीन नहीं. काहेतें १ "ईश्वर, जीवके अज्ञानसे कल्पित है." यह कहना श्रुति स्मृतिपुराणते विरुद्ध है. २ ईश्वर अनंत, और जीव जीवमें सृष्टिका भेद, यह भी, विरुद्ध है. याते नाना अज्ञान मानने असंगत हैं. और नाना अज्ञान मानिके ईश्वर और सृष्टि एक मानैं तो बने नहीं. काहेते, जीवईश्वरप्रपंच अज्ञानकल्पित है अनंत अज्ञान मानेते, एक एक अज्ञानकल्पित जीवकी न्याईं ईश्वर और प्रपंच भी अनंतही होवेंगे. याहीते वाचस्पतिने अनंत ईश्वर और अनंत सृष्टि कही हैं. याते अज्ञान एक है. यह मत समीचीन है.

सो एक अज्ञान भी जीवके आश्रित नहीं, किंतु शुद्धब्रह्मके आश्रित है. काहेते, १ जीवभाव अज्ञानका कार्य है. सो अज्ञान स्वतंत्र कभी भी रहै नहीं, याते निराश्रय अज्ञानसे तौ जीवभाव बनै नहीं प्रथम किसीके आश्रित अज्ञान होवे, तब अज्ञानका कार्य जीवभाव होवे. २ जीवपनेकी न्याईं ईश्वरता भी अज्ञानका कार्य है. ताके आश्रित भी अज्ञान नहीं, किंतु शुद्धब्रह्मके आश्रित अनादि अज्ञान है अनादि जो चेतन और अज्ञान, तिनका संबंध भी अनादिचेतनज्ञानके अनादिसंबंधसे जीवभाव ईश्वरभाव भी अनादि है

परंतु जीवभाव और ईश्वरभाव अज्ञानके अधीन हैं. याते अज्ञानका कार्य कहिये है. यद्यपि "मैं अज्ञानी हूं" इस रीतिसे जीवके आश्रित अज्ञान प्रतीत होवै है तथापि शुद्धब्रह्मके आश्रित जो अज्ञान, ताका जीवकूं "मैं अज्ञानी हूं" यह अभिमान होवै है, और १ जीव अज्ञानका कार्य है याते अज्ञानका अधिष्ठानरूप आश्रय जीव बनै नहीं, किन्तु शुद्धब्रह्महो अज्ञानका अधिष्ठानरूप आश्रय है. २ शुद्धब्रह्म अधिष्ठानके आश्रित जो अज्ञान, सो ता ब्रह्मकूंही आच्छादन करै है तिसते अनंतर "मैं अज्ञानी हूं" इसरीतिसे अज्ञानका अभिमानी रूप आश्रय जीव होवै है. या प्रकारते स्वाश्रय स्वविषय अज्ञान है।

सो अज्ञान यद्यपि एक है, और ज्ञानते निवृत्ति होवै है परंतु जा अंतःकरणमें अज्ञान होवे, ता अंतःकरण अवच्छिन्न चेतनमें स्थित जो अज्ञानका अंश ताकी निवृत्ति ज्ञानसे होवै है सोई मुक्त होवै है. जा अंतःकरणमें ज्ञान नहीं होवे, तहां अज्ञानका अंश रहैहै, और बंध रहैहै. या रीतिसे एकअज्ञानपक्षमें बंधमोक्ष व्यवहार बनैहै. और किसीकूं वाचस्पतिकी रीतिसे नाना अज्ञानवादही बुद्धिमें प्रवेश होवै, तौ वहभी अद्वैतज्ञानका उपाय है ताके खंडनमें कछु आग्र-

ह नहीं.जिस रीतिसे जिज्ञासुकूं अद्वैतबोध होवै, तैसे बुद्धिकी स्थिति करै, शुद्धब्रह्मके आश्रित जो माया ताकूं अविद्या और अज्ञानः कहै हैं. १ अचिंत्यशक्ति और युक्तिकूं नहीं सहारे, याते माया कहैं हैं.२विद्याते नाश होवै है, याते अविद्या कहैहैं. ३स्वरूपका आच्छादन करैहै;याते अज्ञान कहैहैं १जो चेतनके आश्रित है सो सामान्य चेतनताका विरोधी नहीं किंतु सामान्यचेतन मायाका साधक है, सत्तास्फुरण देवै है. और २वृत्तिमें आरूढ कहिये स्थित, सो अथवा चेतनसहित वृत्ति ताकी विरोधी जानिये.कवित्तके तीनिपादनते मायाका स्वरूप कहा.

"मायामें आभास" इत्यादि चतुर्थपादसे ईश्वरका स्वरूप कहैहै १शुद्धसत्त्वगुणसहित मायाऔर २मायाका अधिष्ठानचेतन,३मायामें आभास, तीनों मिले ईश्वर कहिये है.सो ईश्वर सर्वज्ञ है. सोई जगत्का हेतु कहिये कारण है. कारण दोप्रकारका होवैहै--१एक तो उपादानकारण होवैहै, २ एक निमितकारण होवैहै. जाका कार्यके स्वरूपमें प्रवेश होवै, और जा बिना कार्यकी स्थिति होवै नहीं,सो उपादानकारण कहिये है.जैसे मृत्तिका घटका उपादान कारण है.घटके स्वरूपमें ताका प्रवेश है और मृत्तिका बिनाघटकी स्थिति नहीं. जाकू

स्वरूपमें प्रवेश नहीं किंतु कार्यकूं भिन्नस्थित होयके करै;और ताके नाशते कार्य विगरैनहीं, सो निमित्तकारण कहिये है. जैसे घटके कुलाल दंड चक्र आदिक निमित्तकारण हैं. घटके स्वरूपमें तिनका प्रवेश नहीं. घटसे भिन्न कहिये किनारे स्थित होयके घटकी उत्पत्ति करै है. और उत्पत्ति हुये पीछे कुलाल दंड चक्र आदिकनके नाशते घट बिगरै नहीं. इसरीतिसे उपादान और निमित्त दोप्रकारका कारण होवैहै.

और जगत्का उपादान और निमित्त दोनों प्रकारते ईश्वरही कारण है. जैसे एकही मकरी जालेका उपादानकारण और निमित्त कारण है और जो ऐसे कहैं—१मकरीके जडशरीर जालेका उपादानकारण, और २मकरीके शरीरमें जो चेतनभाग सो निमित्तकारण है, याते एक ईश्वरको निमित्तकारण और उपादानकारण माननेमें कोई दृष्टांत नहीं. तो मकरीके न्याई १ईश्वरका शरीर जड माया जगत्का उपादान कारण. और २ चेतनभाग निमित्त कारण इसरीतिसे एकही ईश्वर जगत्का उपादान और निमित्तकारण है. तामें मकरीका दृष्टांत और मुख्यदृष्टांत स्वप्न है. १ जा समय जीवनके कर्मफल देनेको सम्मुख नहीं होवै तब प्रलय होवैहै. और २ जीवनके कर्म फल देनेको सम्मुख होवे,

तब सृष्टि होवे है. इसरीतिसे जीवकर्मके अधीन सृष्टि है याते जीवका स्वरूप कहें हैं:—

दोहा।

मलिनसत्त्व अज्ञानमें, जो चेतन आभास॥
अधिष्ठानयुत जीव सो, करत कर्मफलआस॥

टीका—१ रजोगुण तमोगुणकूं दाबिलेवै, सो शुद्धसत्त्वगुण कहिये है, और २ रजोगुण तमोगुणसे आप दबै सो मलिनसत्त्वगुण कहिये है. १ ता मलिन-सत्त्वगुणसहित अज्ञानके अंशमें जो चेतनका आभास; और २ अज्ञान और ३ ताका अधिष्ठान कूटस्थ, तीनों मिले जीव कहिये है. सो जीव कर्म करै है और फलको आश करै है.

ता जीवके कर्मनके अनुसार ऊँच नीच भोगके निमित्त ईश्वर सृष्टि रचे है. याते ईश्वरमें विषमदृष्टि और क्रूरता नहीं. और जो ऐसे कहैं:—सर्वसे प्रथम सृष्टिसे पूर्व कर्म नहीं. और प्रथम सृष्टिमें ऊँच नीच शरीर और भोगईश्वरने रचे है, याते ईश्वर विषम-दृष्टि है. सो बनै नहीं. काहेते संसार अनादि है. उत्तर उत्तर सृष्टिमें पूर्व पूर्व सृष्टिके कर्म हेतु हैं सर्वसे प्रथम कोई सृष्टि नहीं, याते ईश्वरमें दोष नहीं.

कवित्त ।

जीवनके पूर्व सृष्टि कर्म अनुसार ईश,
इच्छा होय जीवभोग जग उपजाइये ॥
नभ वायु तेज जल भूमि भूत रचैं तहां,
शब्द स्पर्श रूप रस गंध गुण गाइये ॥
सत्त्व अंश पंचनको मेलि उपजतसत्त्व,
रजोगुण अंश मिलि प्राण त्यों उपाइये ।
एक एक भूत सत्त्व अंश ज्ञानइंद्रि रचै,
कर्मइंद्रि रजोगुण अंशते लगाइये ॥ १६६ ॥

टीका-१ जब जीवनके कर्म भोग देनेसे उदासीन होवे तब प्रलय होवै है. प्रलयमें सर्व पदार्थनके संस्कार मायामें रहैं हैं याते जीवनके कर्मभी जो बाकी रहेथे सो सूक्ष्म होयके मायामें रहैं हैं २ जब कर्मभोग देनेकूं सन्मुख होवै, तब ईश्वरकूं यह इच्छा-होवैहैः-" जीवनके भोगनिमित्त जगत् उपजाइये. "

ऐसी ईश्वर की इच्छाते माया तमोगुणप्रधान होवै है ता तमोगुणप्रधानमायाते नभ, वायु, तेज, जल, भूमि ये पंचभूत रचे जावैं हैं. तिन भूतनमें क्रमते शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध, ये पाँच गुण होवैं हैं. १ मायाते शब्दसहित आकाशकी उत्पत्ति और २ आकाशते वायुकी उत्पत्ति, वायु आकाशका

कार्य है; याते आकाशका शब्दगुण वायुमें होवै है; अपना गुण स्पर्श होवै है. ३ वायुते तेजकी उत्पत्ति और तेजमें आकाशका शब्द, वायुका स्पर्श होवै है; अपना रूप होवै है, ४ तेजते जलकी उत्पत्ति, आकाशका शब्द, वायुका स्पर्श, तेजका रूप, जलमें होवै है. अपना रस होवै है, ५ जलसे पृथिवीकी उत्पत्ति और आकाशका शब्द वायुका स्पर्श, तेजका रूप; जलका रस, पृथ्वीमें होवै है; पृथिवीका गंध होवै है. १ आकाशमें प्रतिध्वनिरूप शब्द है. २ वायुमें सीसी-शब्द, और उष्णशीतकठिनते विलक्षण स्पर्श है. ३ अग्निरूपतेजमें, भुकभुकशब्द, और उष्ण स्पर्श और प्रकाशरूप है. ४ जलमें चुलचुलशब्द शीतस्पर्श शुक्लरूप, मधुररस है. और क्षार तथा कटु पृथिवीके संबंधसे जल प्रतीत होवै है. जलका रस मधुरही है. सो मधुरता हरीतकी आदिक भक्षण करिके जलपान किये प्रगट होवै है. ५ पृथ्वीमें कट कट शब्द, उष्णशीतसे विलक्षण कठिनस्पर्श है. श्वेत, नील, पीत, रक्त, हरितआदि रूप हैं. मधुर, अम्ल, क्षार, कटु, कषाय तिक्त रस हैं. सुगंध और दुर्गंध दोप्रकारका गंध है, इसरीतिसे १ आकाशमें एक, २ वायुमें दोय, ३ तेजमें तीन, ४ जलमें चारि, ५ पृ-

थ्वीमें पांचगुण हैं. तिनमें एकएक अपना है अधिक कारणके हैं और सर्वका मूलकारण ईश्वर है. तामें माया और चेतन दो भाग हैं. १मिथ्यापना मायाका भाग है और २ सत्तास्फूर्ति सर्वभूतनमें चेतनका भाग है. कवित्तके दो पादका यह अर्थ है.

पंचभूतनका सत्त्वगुण अंश मिलके सत्त्व कहिये अंतःकरणकूं उपजावै है. अंतःकरण ज्ञानका हेतु है. और ज्ञानकी उत्पत्ति सत्त्वगुणते अंगीकार करी है. याते अंतःकरण भूतनके सत्त्वगुणका कार्य है. और पंचभूतनके कार्य पंच ज्ञानइंद्रिय तिन सबका सहायक है. याते पञ्चभूतनके मिले सत्त्व गुणते अंतःकरणकी उत्पत्ति कही है. १देहके अंतर कहिये भीतर है. और कारण कहिये ज्ञानका साधन है याते अंतःकरण कहिये है. और २ भूतनके सत्त्वगुणका कार्य है. याते अंतःकरणका सत्त्व भी नाम है.

अंतःकरणका जो परिणाम ताको वृत्तिः कहें हैं सो अंतःकरणकी वृत्ति चारि हैं. १ पदार्थके भले बुरे स्वरूपकूं निश्चय करनेवाली वृत्ति बुद्धि कहिये है. २ संकल्प विकल्पवृत्ति मन कहिये है, ३ चिंतावृत्ति चित्त कहिये है. "अहं" ऐसी अभिमानवृत्ति अहंकार कहिये है. पंचभूतनके मिले रजोगुण अंशते प्राणकी उत्प

त्ति होवै है. सो प्राण, क्रियाभेदते और स्थानभेदते पांचप्रकारका है. १ जाका हृदयस्थान, और क्षुधा, पिपासा क्रिया सो प्राण कहिये है. और २ जाका गुदस्थान मूत्रमलअधोनयन क्रिया सो अपान. ३ जाका नाभिस्थान, और भुक्तपीत अन्न जलकूं पाचन योग्य सम करनेकी क्रिया सो समान. ४ जाका कंठस्थान; और श्वास क्रिया, सो उदान, ५ जाका सर्वशरीर स्थान रसमेलन क्रिया; सो व्यान, और कहूँ, नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त, धनंजय, पंचप्राण अधिक कहे हैं. तिनकी उद्गार, निमेष, छींक, जंभाई, मृतशरीरफुलावन, ये क्रमते क्रिया कही हैं. पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, पंचनके रजोगुण अंशते एकएककी क्रमते उत्पत्ति कही है और अपान, समान, प्राण, उदान, व्यान, इनकी भी पृथ्वी आदिक एकएकके रजोगुण अंशते उत्पत्ति कही है. सर्वके मिले रजोगुण अंशते नहीं. परन्तु अद्वैत सिद्धांतमें यह प्रक्रिया नहीं काहेते, विद्यारण्यस्वामीने तथा पंचीकरणमें वार्तिककारने सूक्ष्म शरीरमें और पंचकोशनमें नाग कूर्म आदिकनका ग्रहण किया नहीं. और तिनने अपान आदिक पंचप्राणकी उत्पत्ति भी भूतनके मिले रजोगुण अंशते कही है. याते १ एकएकके रजोगुण अंशते अपान आ-

दिकनकी उत्पत्ति कथन असंगत है और २ सूक्ष्मशरीरमें नाग कूर्म आदिकनका ग्रहण असंगत है, पंचप्राणका ही सूक्ष्मशरीरमें ग्रहण है. प्राण विक्षेपरूप हैं. और विक्षेपस्वभाव रजोगुणका है, याते भूतनके रजोगुण अंशते प्राणकी उत्पत्ति कहीहै. यह तृतीयपादका अर्थहै।

१ एक एक भूतका सत्त्वगुणअंश पंचज्ञानइंद्रिय रचै हैं. और २ एक एकका रजोगुण अंश एकएक कर्मइंद्रिय रचै है १ आकाशके सत्त्वगुणते श्रोत्र, २ वायुके सत्त्वगुण अंशते त्वक्, ३ तेजके सत्त्वगुण अंशते नेत्र, ४ जलके सत्त्वगुण अंशते रसना, ५ पृथिवीके सत्त्वगुण अंशते घ्राण होवे है. ये पंचेंद्रिय ज्ञानके साधन हैं. याते ज्ञानेंद्रिय कहिये हैं. और ज्ञान सत्त्वगुणते होवै है, याते भूतनके सत्त्वगुणते उत्पत्ति कही है. श्रोत्रेंद्रिय आकाशके गुणको ग्रहण करै है. याते श्रोत्रेंद्रियकी आकाशते उत्पत्ति कही तैसे जा भूतके गुणको जो इंद्रिय ग्रहण करै, ता भूतसे ता इंद्रियकी उत्पत्ति कही है.

१ आकाशके रजोगुणअंशते वाक्इंद्रियकी उत्पत्ति; २ वायुके रजोगुणअंशते पाणिकी, ३ तेजके रजोगुण अंशते पादकी, ४ जलके रजोगुण अंशते उपस्थकी, ५ पृथ्वीके रजोगुणअंशते गुदाकी उत्पत्ति होवै है. स्त्रीकी योनि और पुरुषके मेढ्रमें जो विषयानंदका साधन इं-

न्द्रिय सो उपस्थ कहिये है. कर्म नाम क्रियाका है. ये पांचइंद्रिय क्रियाके साधन हैं.याते कर्मेन्द्रिय कहिये हैं.क्रिया रजोगुणते होवै है,याते भूतनके रजोगुण अंशते इनकी उत्पत्ति कही है.

सवैया–छंद ।

भूत अपंचीकृत औ कारज, इतनी सूक्ष्मसृष्टि पिछान ।
पंचीकृत भूतनते उपज्यो, स्थूलपसारो सारो मान ॥
कारण सूक्ष्म स्थूल देह अरु, पंचकोश इनहीमें जान ।
करिविवेकलखिआतमन्यारो, मुंजइषीकातेज्यो भान॥

टी०–अपंचीकृतभूत और तिनका कार्य अन्तःकरण, प्राण कर्मइंद्रिय; ज्ञानइंद्रिय, इतनी सूक्ष्मदृष्टि कहिये है. सूक्ष्म दृष्टिका ज्ञान इंद्रियते होवै नहीं. नेत्रनासिकादिक गोलक तौ इंद्रियनके बिषय हैं,परंतु तिन गोलकनमें स्थित जो इन्द्रिय जो सो काहू इंद्रियनके विषय नहीं. सूक्ष्मसृष्टिकी उत्पत्तिसे अनंतर ईश्वरकी इच्छाते स्थूल· दृष्टिके निमित्त भूतनका पंचीकरण होता भया.

पंचीकरण दोभांतिसे कहा है–१एकएक भूतके दोदो भाग सम होयके एक एकभागके चारिचारि भाग भये पांचभूतनका आधा आधा भाग प्रथम ज्योंका त्यों रहा है,आधेआधेभागके जोचारिचारि भाग,सो पृथक् रहे. बडे अर्धभागनमें अपने २ भागकूँ छोडिके मिले ते

अर्ध भाग सब भूतनमें अपना और अर्धभाग अपनेसे इतर च्यारि भूतनका मिलिके पंचीकरण कहावै है.

और २ दूसरा यह प्रकार है–एक एक भूतके दोदोभाग भये सो सम नहीं. किंतु एक भाग चारि अंशका, और पचम अंशका एक भाग इस रीतिसे न्यूनअधिक दोदोभाग भये तिनमें सबके अधिक भाग ज्योंके त्यों पृथक् स्थित रहे. और पंचभूतनके न्यून जो पंच भाग. तिनके एकएकभागके पंचपंचभाग करिके पृथक् स्थित, अधिक पंचभागनमें एकएक भागके मिलि पंचीकरण होवै है. १ प्रथमपक्षमें एक भागके चारिभाग पृथक् रहे, आधेआधे भागनमें अपने भागकूं छोडिके मिले. और २ दूसरे पक्षमें न्यून भागके पंच भाग पृथक् रहे. अधिक पंचभागनमें अपने भागसहितमें मिले. और १ प्रथमपक्षमें पंचीकृत भूतनमें अपना अंश अर्ध, और अर्ध अंश औरनका. २ दूसरे पक्षमें पंचीकरण कियेते अपने अंश इक्कीस, औरनके अंश चारि और दूसरे पक्षकी सुगमरीति यह है–एक एक भूतके पचीस पचीस भाग होयँ. इक्कीस इक्कीस भाग, और चारि चारि भाग पृथक् भये चारि चारि भागनमेंसे एक एक भाग इक्कीस इक्कीस भागनमें मिले, अपने इक्कीस भागनकूं छोडिके, इसरीति से

दोप्रकारका पंचीकरण कह्या है. एक एक भूतमें पांच-पांच भूत मिलायके करनेका नाम पंचीकरण है. जिन भूतनका पंचीकरण किया है, तिनकूं पंचीकृत कहैं हैं.

तिन पंचीकृत भूतनते १ इंद्रियनका विषय स्थूल ब्रह्मांड होता भया २ ता ब्रह्मांडके अंतर, भूलोंक, भुवर्लोंक, स्वर्लोंक, महर्लोंक, जनलोक, तपलोक,सत्यलोक, ये सात भुवन ऊपरके होते भये. और३ अतल, सुतल, पाताल, वितल, रसातल, तलातल, महातल ये सात लोक नीचेके होते भये.४ तिन चतुर्दशलोकनमें जीवनके भोगयोग्य अन्नादिक और भोगका स्थान देव मनुष्य पशु आदि स्थूलशरीर होते भये. यह संक्षेपते सृष्टिका निरूपण किया, और मायाके कार्यका विस्तारसे निरूपण कियेते कोटिब्रह्माकी उमरते भी मायाकृतपदार्थनिरूपणका अंत होवे नहीं; यह वाल्मीकिने अनेक इतिहासनते वाशिष्ठमें निरूपण किया है. यह सवैयाके दो पादनका अर्थ है.

तृतीयपादका अर्थ यह है:—इनहीमें कहिये, माया और ताके कार्यमें तीन शरीर और पंचकोश हैं. १ शुद्धसत्त्वगुणसहित माया ईश्वरका कारणशरीर है और मलिनसत्त्वगुणसहित अविद्या अंश,जीवका कारणशरीर है २ उत्तरशरीरके आरंभक पंचसूक्ष्मभूत, मन, बुद्धि,

चित्त, अहंकार, पंचप्राण, पंचकर्मइंद्रिय, पंचज्ञान-इन्द्रिय जीवका सूक्ष्मशरीर है और सर्वजीवनके सूक्ष्म-शरीरही मिलिके ईश्वरका सूक्ष्मशरीर है. ३ संपूर्ण स्थूल-ब्रह्मांड ईश्वरका स्थूलशरीर है. और जीवनके व्यष्टिस्थूलशरीर प्रसिद्ध हैं. इन तीनि शरीरनमेंही पंचकोश हैं. १ कारणशरीरकूं आनंदमयकोश कहैंहैं. विज्ञानमय, मनोमय, प्राणमय, तीनि कोश सूक्ष्मशरीरमें हैं. पंच-ज्ञानेंद्रिय और निश्चयरूपअंतःकरणकी वृत्ति बुद्धि विज्ञानमयकोश कहिये हैं. पंचज्ञानइन्द्रिय और संकल्प विकल्प अंतःकरणकी वृत्ति मन, मनोमयकोश कहिये है. पंचप्राण और पंचकर्मेन्द्रिय प्राणमयकोश है, ५ स्थूलशरीरको अन्नमयकोश कहैं हैं. इसरीतिसे तीनि शरीरनमें ही पांच कोशहैं. १ईश्वरके शरीरमें ईश्वरके कोश हैं, और २ जीवके शरीरनमें जीवके कोश हैं. कोश नाम म्यानका है. म्यानकी न्याई पंचकोश आत्माके स्वरूपकूं आच्छादन करैं हैं याते अन्नमयादिक कोश कहिये हैं. अनेक मंदमति पुरुष पंचकोशनमें जो अनात्मपदार्थ हैं, तिनमें किसी एककूं आत्मा मानिके मुख्यसाक्षी आत्मस्वरूपते विमुखही रहैं हैं. याते अन्नमयादिक आत्मस्वरूपको आच्छादन करैं हैं तहां—

कितने पामर विरोचनमतके अनुसारी, स्थूलशरीररूप अन्नमय कोशको ही आत्मा कहैं हैं. और यह युक्ति

कहैहैं. १जामें अहंबुद्धि होवै सो आत्माहै सो अहंबुद्धि स्थूलशरीरमें होवै है. मैं मनुष्य हूं मैं ब्राह्मण हूँ ऐसी प्रतीति सर्वको होवैहै. और मनुष्यपना, ब्राह्मणपना स्थूलशरीरमेंही है याते स्थूलशरीरही अहंबुद्धिका विषय होनेते आत्मा है २ किंवा जामें मुख्य प्रीति होवे सो आत्मा है.स्त्री, पुत्र, धन, पशुआदिक स्थूलशरीरके उपकारक होवें तो तिनमें प्रीति होवै है. और स्थूलशरीरके उपकारक नहीं होवें तो प्रीति होवे नहीं. जाके निमित्त अन्य पदार्थनमें प्रीति होवे ता स्थूल शरीरमेंही मुख्य प्रीति है याते स्थूलशरीरही आत्मा है. ता स्थूलशरीरका वस्त्र, भूषण, अंजन, मंजन, नानाविध भोजनसे शृंगार पोषणही परमपुरुषार्थ है, यह असुरस्वामी विरोचनका सिद्धांत है.

और कोऊ ऐसे कहैं हैं:—स्थूलशरीरही आत्मा नहीं किंतु १ स्थूलशरीरमें जाके होनेते जीवनव्यवहार होवै है, और जाके नहीं होनेते मरणव्यवहार होवै है तो आत्मा स्थूलशरीरसे भिन्न है जीवन मरण इंद्रियनके अधीन है, जितने काल शरीरमें इंद्रिय होवें उतने काल जीवन है और कोऊ इंद्रिय न होवे तब मरण कहिये है और "मैं देखूं हूँ" "मैं सुनूं हूँ" "मैं बोलूंहूँ" इसरीतिसे अहंबुद्धि भी इंद्रियनमें होवै है. याते इंद्रिय ही आत्मा है.

और हिरण्यगर्भके उपासक प्राणकूं आत्मा कहैं हैं तामें यह युक्ति कहैं हैंः-, जब मरणसमय मूर्च्छा होवै है, तब ताके संबन्धी पुत्रादिक, प्राण शेष होवें तो जीवन जानैं हैं और प्राण शेष न होवे तौ मरण जानैं हैं २ किंवा शरीरमें नेत्रइंद्रिय नहीं होवे तो अंधाशरीर रहै है. श्रोत्रसे विना बधिर रहै है. वाक्‌बिना मूक रहै है. ऐसे जो इंद्रिय नहीं होवे ताके व्यापारसे विनाभी शरीर स्थितही रहै और प्राणसे बिना तिसी क्षणमें श्मशानके समान अमंगल भयंकर होयके गिरै है. और ३ "मैं देखूंहूँ" "सुनूं हूँ" या प्रतीतिसे भी इंद्रियनते भिन्नही आत्मा सिद्ध होवै है. काहेते, नेत्रस्वरूप "मैं देखूं हूँ" श्रवणस्वरूप "मैं सुनूं हूँ," जो ऐसी प्रतीति होवे तो इंद्रियरूप आत्मा सिद्ध होवे, किंतु "मैं नेत्रवाला देखूं हूँ, श्रोत्रवाला मैं सुनूं हूँ, ऐसी प्रतीति होवै है. याते इंद्रियनते भिन्नही आत्मा है. और ४ सुषुप्तिमें सर्वइंद्रियनका अभाव है; तौ भी प्राणके होनेते जीवनव्यवहार होवै है. याते जीवनमरण भी इंद्रियनके अधीन नहीं किंतु स्थूलशरीर और प्राणके वियोगको मरण कहैं हैं याते जीवन मरण प्राणके ही अधीन हैं, सोई आत्मा है.

और कोई ऐसे कहैं हैंः-१ प्राण जड है, याते घकी न्याईं अनात्मा है. और २ बंध मोक्ष मनके अ-

धीन है विषयमें आसक्त जो मन, सो बंधनका हेतु है. विषय वासनारहित मन मोक्षका हेतु है और ३ मनके संबंधतेही इंद्रिय ज्ञानके हेतु हैं, मनके संबंध विना इंद्रियनते ज्ञान होवै नहीं याते सर्व व्यवहारका हेतु मन है सोई आत्मा है.

और क्षणिकविज्ञानवादी बौद्ध यह कहैं हैंः—मनका व्यापार बुद्धिके अधीन है, काहेते बुद्धिकाही आकार मन होवै है. याते क्षणिकविज्ञानरूप बुद्धिही आत्मा है मन नहीं यह तिनका अभिप्राय हैः—१ संपूर्णपदार्थ विज्ञानकेही आकार हैं २ सो विज्ञानप्रकाशरूप है, और ३ क्षणक्षणमें विज्ञानके उत्पत्ति नाश होवैहैं, पूर्वविज्ञानके समान अन्य विज्ञानकी उत्पत्ति हुयेते पूर्वविज्ञानका नाश होवै है. तैसे तृतीयविज्ञानकी उत्पत्ति, और द्वितीयविज्ञानका नाश, चतुर्थकी उत्पत्ति, तृतीयका नाश होवै है. या रीतिसे नदीके प्रवाहकी न्याईं विज्ञानकी धारा बनी रहै है. सो विज्ञानकी धारा दोप्रकारकी है. १ एक तो आलयविज्ञान धारा है. और दूसरी प्रवृत्तिविज्ञान धारा है. १ "अहं, अहं" ऐसी विज्ञानधाराकूं आलयविज्ञानधारा कहैं हैं. ताहीकूं बुद्धि कहैं हैं. २ "यह घट है, यह शरीर है" ऐसी विज्ञानधाराकूं प्रवृत्तिविज्ञान

धारा कहै हैं, आलयविज्ञानधारासे प्रवृत्तिविज्ञान-धाराकी उत्पत्ति होवै है, मनका स्वरूपभी प्रवृत्तिवि-ज्ञानधारामें है. याते आलयविज्ञानधारारूप बुद्धिका कार्य है, सो बुद्धिही आत्मा है. आलयविज्ञानधारा-विषे प्रवृत्तिविज्ञानधाराका बाधचिंतनते निर्विशेषक्ष-णिकविज्ञानधाराकी स्थितिही तिनके मतमें मोक्ष है इसरीतिसे विज्ञानवादी बुद्धिकूंही क्षणिकरूप और स्वयंप्रकाशरूप कल्पना करिके आत्मा कहैं हैं. और पूर्वमीमांसाका वार्त्तिककार भट्ट यह कहैं हैं—विद्यु-त्की न्याईं क्षणिकरूप आत्मा नहीं, किंतु स्थिरस्व-रूप आत्मा १ जडस्वरूप और २ चेतनरूप है, यह ताका अभिप्राय है, १ सुषुप्तिसे जागिके पुरुष यह कहै है—"मैं जड होयके सोवता भया" याते आत्मा जडरूप है. और २ ज्ञानकी स्मृति होवै है. अज्ञा-तकी स्मृति होवै नहीं आत्मस्वरूपसे भिन्न ज्ञानके सुषुप्तिमें और साधन नहीं.याते स्मृतिका हेतु सुषुप्तिमें ज्ञान है, सो आत्माका स्वरूपही है. इसरीतिसे खद्योतकी न्याईं आत्मा प्रकाश और अप्रकाशरूप है. १ ज्ञानरूपहै, याते प्रकाशरूप है, और २ जड़ है, याते अप्रकाशरूप है. सो प्रकाशरूप और अप्रकाशरूप आनन्दमयकोश है. काहेते; सुषुप्तिमें चेत-

नके आभासहित जो अज्ञान, ताकूं आनंदमयकोश कहै है.तहां आभास तौ प्रकाशरूप और अज्ञान अप्रकाशरूप है. याते भट्टके मतमें आनन्दमयकोशही आत्मा है.

और शून्यवादी बौद्ध यह कहैं हैं—आत्मा निरंश है, याते एकआत्माको प्रकाशरूप और अप्रकाशरूप कहना बनै नहीं. और खद्योतका तौ एक अंश प्रकाशरूपहै, और दूसरा अंश अप्रकाशरूप है. ताकी न्याईं अंशरहित आत्माविषे उभयरूप कहना असंगत है. याते १ उभयरूपकी सिद्धिवास्ते आत्मा अंशसहितही मानना होवैगा. २ जो अंशवाले पदार्थ घटादिक हैं, सो उत्पत्ति और नाशवाले होवैं हैं तैसे आत्माभी अंशसहित होनेते उत्पत्ति नाशवालाही मानना होवैगा.१ जो उत्पत्तिनाशवाला पदार्थ होवै, सो उत्पत्तिसे पूर्व और नाशते अनंतर असत् होवै है. जो आदि अंतमें असत् होवे, सो मध्यमें भी सत् होवै नहीं, किंतु मध्यमेंभी असत्ही होवै है. याते आत्मा असद्रूप है. २ तैसे आत्मासें भिन्न भी संपूर्ण पदार्थ उत्पत्तिनाशवाले हैं; याते असद्रूपहैं. इसरीतिसे आत्मा औरअनात्मा समग्र वस्तु असद्रूप होनेतें शून्यही परमतत्त्व है, यह शून्य वादी माध्यमिकबौद्धका मत है,सो भी अज्ञानरूप आनंदमयकोशकों

प्रतिपादन करै है. काहेतै अज्ञान तीनिरूपसे प्रतीत होवै है.१ अद्वैतशास्त्रके संस्काररहित जो मूढ,तिनको तौ जगत्रूप परिणामकूं प्राप्त अज्ञानसत्य प्रतीत होवैहै. और २ अद्वैत शास्त्रके अनुसारयुक्तिनिपुण पंडितनकूं सत् असत्से विलक्षण अनिर्वचनीयरूप अज्ञान और ताका कार्य जगत् प्रतीत होवै है. ३ ज्ञाननिष्ठाकूंप्राप्त जो जीवन्मुक्त विद्वान्, तिनकूं कार्यसहित अज्ञान तुच्छरूप प्रतीत होवै है.तुच्छ, असत्, शून्य ये तीन शब्द एकही अर्थकूं कहैं हैं इसरीतिसे जीवन्मुक्तनकूं तुच्छ रूप जो प्रतीति होवै अज्ञान; ताके विषे मोहित शून्यवादी परम पुरुषार्थकूं नहीं जानैं हैं, किंतु तुच्छरूप आनंदमयकोशकूंही आत्मा कहैं हैं.

और पूर्वमीमांसाका एकदेशी प्रभाकर और नैयायिक यह कहैं हैं आत्मा शून्यरूप नहीं. काहेते, जो शून्यरूप आत्मा मानैं ताकूं यह पूछैं हैं–१ शून्यरूपका तैंने अनुभव किया है,२ अथवा नहीं? १ जो कहैं शून्यका अनुभव किया है, तौ जाने शून्यका अनुभव किया है, सो आत्मा शून्यसे विलक्षण सिद्ध होवै है. २ जो ऐसे कहैं –शून्यरूपका अनुभव नहीं किया तौ शून्य नहीं है,यह सिद्ध हुवा और इसरीतिसे शून्यते विलक्षण आत्मा है. १ ताकेविषे मनके संयोगते

ज्ञान होवै है २ ता ज्ञानगुणते आत्मा चेतन कहिये है और ३ स्वरूपसे आत्मा जड है. ४ तैसे सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, धर्म, अधर्म आदिक गुण आत्माविषे हैं तिनके मतमें भी आनंदमयकोशही आत्मा है और विज्ञानमयकोशमें जो बुद्धि है, सो आत्मा का ज्ञानगुण कहै है, काहेते आनंदमयकोशमें चेतन गूढ है, विवेकहीनकूं प्रतीत होवै नहीं. और प्रभाकर तथा नैयायिक आत्माकूं सुषुप्तिमें ज्ञानहीन मानिके स्वरूपसे जड कहै हैं, याते गूढचेतन आनंदमयकोशमें ही तिनकूं आत्मभ्रांति है और आत्मस्वरूप नित्यज्ञानकूं तौ जीवमें मानैं नहीं किंतु अनित्यज्ञान मानैं हैं. सो अनित्यज्ञान सिद्धांतमें अंतःकरणकी वृत्ति बुद्धिरूप है. या रीतिसे प्रभाकर नैयायिक मतमें आनंदमयकोश आत्मा है, और बुद्धि ताका गुण है, तिनका मतभी समीचीन नहीं. काहेते १ ज्ञानसे भिन्न जो जडवस्तु घटादिक है, सो अनित्य है. तैसे आत्मा भी ज्ञानस्वरूप नहीं होवैं, तो घटादिकनकी न्याई जड होनेतें अनित्य होवैगा, २ जो आत्मा अनित्य होवे तौ मोक्षके अर्थ साधन निष्फल होवेगा इसरीतिसे वेदांतवाक्यनमें विश्वासहीन अनेक बहिर्मुख पंचकोशनमेंही किसी पदार्थकूं आत्मा मानैं हैं

और मुख्य आत्मास्वरूप साक्षीकूं नहीं जानैं हैं या- ते अन्नमयादिक आत्माके आच्छादक होनेते कोश कहिये हैं.

जैसे जीवके पंचकोश जीवके यथार्थस्वरूप साक्षीकूं आच्छादन करैंहैं. तैसे ईश्वरके समष्टिपंचकोश ईश्वरके यथार्थ स्वरूपकूं आच्छादन करै हैं; काहेते ईश्वर का यथार्थ स्वरूप तौ तत्पदका लक्ष्य है ताकूं त्यागिके १ कोई तौ मायारूप आनंदमयकोशविशिष्ट जो अंतर्यामीतत्पदका वाच्य, ताकूंही परमतत्त्व कहैं हैं २ तैसे हिरण्यगर्भ, वैश्वानर, विष्णु, ब्रह्मा, शिव, गणेश, देवी, सूर्यसे आदिलेके असि, कुदाल, पीपल, अर्क, वंश पर्यंत पदार्थनमें परमात्मा भ्रांति करै है यद्यपि सब पदा- र्थनमें लक्ष्यभाग परमात्मासे भिन्न नहीं, तथापि तिस तिस उपाधिसहितकूं जो परमात्मा मानैं हैं, सो तिन- कूं भ्रांति है. या रीतिसे १ पंचकोशनते आवृत जो जीव ईश्वरका परमार्थस्वरूप तासे विमुख होयके देहादिकन- में आत्मभ्रांतिकरिके पुण्य पापकर्म करैं हैं. और २ अन्त- र्यामीसे आदिलेके वंश पर्यंतकूं ईश्वरस्वरूप मानिके आराधन करिके सुख चाहैं हैं जैसी उपाधिका आराधन करैं हैं, ताके अनुसारही तिनकूं फल होवै है. काहेते; कारण सूक्ष्म स्थूलप्रपंच सारा ईश्वरके तीनि शरीरनके

अंतर्भूत है, तामें उपासनाके अनुसार फलभी सर्वसे ही होवै है परंतु ब्रह्मज्ञान विना मोक्ष होवै नहीं. जो मोक्षकी इच्छा होवे, तो विवेकते जीव ईश्वरके स्वरूपकूं पंचकोशनते पृथक् करै. दृष्टांतः—जैसे मुंज और इषीका कहिये तूली मिली होवै है; तिनकूं तोरिके पृथक् करैं हैं; तैसे विवेकते जीव ईश्वरके स्वरूपकूं पंचकोशनते पृथक् जानै यह सवैयाका अर्थ है. सो विवेकका प्रकार दिखावैं हैं:—

सवैया ।

स्थूलदेहको भान न होवै, स्वप्नमाहिं लखि आतमज्ञान॥
सूक्ष्मज्ञान सुषुप्ति समें नहिं, सुखस्वरूप ह्वै आतम भान॥
भासै भये समाधि अवस्था, निरावरण आतम न अज्ञान।
ऐसेती निदेहव्यभिचारी, आतमअनुगतन्यारोजान१६७

टीका—१ स्वप्नअवस्थामाहीं स्थूलदेहका भान होवे नहीं और आत्माका भान होवै है, २ तैसे सुषुप्ति अवस्थामें सूक्ष्मशरीरका ज्ञान होवे नहीं और सुखस्वरूप आत्मा स्वयंप्रकाशरूपते भान कहिये प्रतीत होवै है. सुखका ज्ञान सुषुप्तिमें नहीं होवे, तौ "मैं सुखसे सोता भया" ऐसी स्मृति जागिके नहीं हुई चाहिये; याते सुखका ज्ञान सुषुप्तिमें होवै है. सो सुख विषयजन्य तौ सुषुप्तिमें है नहीं, किंतु आत्मस्वरूप

ही है सो आत्मा स्वयंप्रकाश है. याते सुखस्वरूप आत्मा स्वयं प्रकाशरूपते सुषुप्तिमें भासे है, और ३ निदिध्यासनका फल निर्विकल्पसमाधि अवस्थामें नि-वारण कहिये अज्ञानकृत आवरणरहित आत्मा भासै है, और न अज्ञान कहिये कारणशरीर अज्ञान नहीं भासै है, १ ऐसे तीनि देह व्यभिचारीहैं. एक अवस्थाकूं छोडि-के दूसरी अवस्थामें भासैं नहीं. २ आत्मा अनुगत है. सर्व अवस्थामें भासै है, याते व्यापक है. या विवेकते तीनि शरीरनते आत्माकूं न्यारो जान १ स्थूलशरीर तौ अन्नमयकोश है, और २ कारणशरीर आनंदमय कोश है, और ३–५ सूक्ष्मशरीरमें प्राणमय, मनोमय, विज्ञा-नमय, तीनि कोश हैं, याते तीनि शरीरनके विवेकते पंचकोशकाही विवेक होवै है, जैसे जीवका स्वरूप पंचकोशनते पृथक् है, तैसे ईश्वरका स्वरूप भी समष्टिपंचकोशनते पृथक् है. और चतुर्थतरंगमें चतु-र्विधआकाशकेदृष्टांतसे जीव ईश्वरके लक्ष्यस्वरूपका विवेक विस्तारसे करि आये हैं और उत्तर तरंगमें अस्ति भाति प्रिय रूपके निरूपणमें, तथा महावाक्यनके अर्थनिरूपणमें आत्माका परमार्थ स्वरूप प्रतिपादन करैंगे. याते इहां संक्षेपतेही आत्मविवेक कहा है. इस रीतिसे, पंचकोशनते आत्माको न्यारा जाननेसे भी

कृतकृत्य होवै नहीं किंतु जीवब्रह्मके अभेद निश्चय-वास्ते फेरि भी विचार कर्त्तव्य रहै है, याते कर्त्तव्यका अभावरूप कृतकृत्यताकी सिद्धिवास्ते महावाक्यका अर्थ उपदेश करैं हैं–

सवैया।

पंचकोशते आतम न्यारो, जानि सु जानहु ब्रह्मस्वरूप।
ताते भिन्न जु दीखै सुनिये, सो मानहु मिथ्या भ्रमकूप॥
मिथ्या अधिष्ठान न बिगारै, स्वप्नभीख न दरिद्री भूप।
सबकछुकर्त्ता तउ अकर्त्ता, तव अस अद्भुत रूप अनूप १८१

टीका–हे शिष्य! पंचकोशते, आत्माकूं न्यारा जानिके सु कहिये सो आत्मा ब्रह्मस्वरूप है, यह जानों. याकेविषे, ऐसी शंका होवै है:–

आत्मा पुण्य पाप करै है, ताते स्वर्ग नरक और मृत्युलोकमें नानाप्रकारके सुख दुःख भोगै है, ताकी ब्रह्मसे एकता बनै नहीं. ताका समाधानः–

"ताते भिन्न जु दीखै" इत्यादि तीनिपादनते कहैं हैं:–ता ब्रह्मरूप आत्मासे भिन्न जो दीखै है, और सुनिये है शास्त्रसे, स्वर्ग, नरक, पुण्य, पाप सो संपूर्ण मिथ्याभ्रम है; ऐसे मानो और मिथ्यावस्तु अधिष्ठानकूं बिगारै नहीं. जैसे स्वप्नकी मिथ्या भीख कहिये भिक्षा माँगनेते भूप दारिद्री नहीं होवै है. और

मरुस्थलके मिथ्याजलते भूमि गीली होवे नहीं, मिथ्यासर्पते रज्जु विषसहित होवे नहीं. याते सब कछु कर्त्ता कहिये संपूर्णमिथ्या शुभ अशुभ क्रियाका कर्त्ता है. तऊ कहिये तौ भी, अकर्त्ता कहिये परमार्थसे कर्त्ता नहीं ऐसा, तब कहिये तेरा अद्भुत आश्चर्यरूप, अनूप कहिये उपमारहित स्वरूप है. याका भाव यह हैः- १ ब्रह्मसे अभिन्न तेरे स्वरूपविषे स्थूलसूक्ष्मशरीर, और तिनकी शुभअशुभक्रिया और ताका फल जन्म, मरण, स्वर्ग, नरक, सुख, दुःख, संपूर्ण अविद्यासे कल्पित है. २ ताकल्पितसामग्रीसे तेरा ब्रह्मभाव बिगरै नहीं. याते ज्ञानते प्रथम भी आत्मा ब्रह्मस्वरूपही है. ३ ताके विषे तीनिकालमें शरीर और ताके धर्मनका संबंध नहीं. किंतु आत्मा सदाही नित्यमुक्त है. ताका ब्रह्मसे कभी भी भेद नहीं.

जो ऐसे कहैंः-आत्मा सदाही नित्यमुक्तब्रह्मस्वरूप होवे तौ श्रवणादिक ज्ञानके साधन निष्फल होवेंगे. ताका समाधान-

इन्दव छन्द ।

नाहिं खपुष्पसमान प्रपंच तु, ईश कहा करता जु कहावै ।
साक्ष्य नहीं इमसाक्षिस्वरूप न, दृश्यनहीं दृककाहि जनावै

बंधहु होय तु मोक्ष बनै अरु, होय अज्ञान तु ज्ञान नशावै
जानियहीकरतव्यतजै सब, निश्चलहोतहिनिश्चलपावै १६

टीका—जीवन्मुक्तविद्वान्‌की दृष्टिमें अज्ञान और ताका कार्य तुच्छ है. सो जीवन्मुक्तका निश्चय बतावैं हैं—हे शिष्य ! १ यह प्रपंच खपुष्पसमान कहिये आकाशके फूलकी न्याईं होनेते है नहीं, याते ताका कर्त्ता ईश्वरभी नहीं है २ साक्षीका विषय अज्ञानादिक साक्ष्य कहिये है, सो साक्ष्य नहीं, यातें साक्षी भी नहीं. ३ तैसे दृश्यका प्रकाशक दृक् कहिये है. और प्रकाशने योग्य देहादिक दृश्य कहिये हैं सो देहादिक दृश्य हैं नहीं; याते दृक् भी नहीं. यद्यपि, केवल कूटस्थ चैतन्यकूं साक्षी और दृक् कहैं हैं; ताका निषेध बनै नहीं, तथापि साक्ष्यकी अपेक्षाते साक्षी नाम, और दृश्यकी अपेक्षाते दृक् नाम है. साक्ष्य और दृश्यका अभाव है. याते साक्षी और दृक् नामका निषेध करैं हैं; स्वरूपका नहीं. और ४ बंध होवै तौ बंधकी निवृत्तिरूप मोक्ष होवै, बंध नहीं याते मोक्ष भी नहीं. और ५ अज्ञान होवै तौ ताका ज्ञानसे नाश होवै, अज्ञान है नहीं, याते ताका नाशक ज्ञान भी नहीं. यह जानिके कर्तव्य तजै कहिये "मेरेकूं यह करनेयोग्य है" या बुद्धिकूं त्यागै. काहेते, १ यह लोक तथा परलोक तौ तुच्छ है,

तिनके निमित्त कछु कर्तव्य नहीं २ आत्मामें बंध नहीं, यातें मोक्षके निमित्तभी कर्तव्य नहीं. या रीतिसे आत्माकूं नित्यमुक्तब्रह्मरूप जानिके जब निश्चल होवैं, सब कर्तव्य त्यागे तब निश्चल कहिये अक्रियब्रह्मस्वरूप विदेहमोक्षकूं प्राप्त होवै. याका अभिप्राय यह है–

यद्यपि आत्मा, ज्ञानसे प्रथम भी नित्यमुक्त ब्रह्मस्वरूपही है, परंतु ज्ञानसे पूर्व आत्माकूं कर्ता भोक्ता मिथ्या मानिके सुखप्राप्ति और दुःखकी निवृत्तिवास्ते अनेक साधन करैं हैं. तासे क्लेशकूँ ही प्राप्त होवैं हैं. जब उत्तम आचार्य मिलैं तौ वेदांतवाक्यनका उपदेश करै हैं. तिन वेदांतवाक्यनके श्रवणते ऐसा ज्ञान होवै है–"मैं कर्त्ता भोक्ता नहीं, किंतु मैं ब्रह्मस्वरूप हूं, याते मेरेको किंचित् भी कर्त्तव्य नहीं" ऐसा जाननाही श्रवणादिकनका फल है और ब्रह्मकी प्राप्ति वेदांतश्रवणका फल नहीं; काहेते ब्रह्म अपना स्वरूप है याते नित्यप्राप्त है.

दोहा।

यही चिह्नअज्ञानको, जो मानै कर्त्तव्य ॥
सोई ज्ञानी सुवर नर, नहिं जाकूं भवितव्य ॥ १६१ ॥

टीका–जो कर्त्तव्य माने सो अज्ञानका चिह्न है, और जाकूं भवितव्य नहीं कहिये अन्यरूप हुआ नहीं चाहै है सो नर ज्ञानी कहिये है.

इंदव छंद।

एक अखंडितब्रह्मअसंग, अजन्यअदृश्य अरूप अनामैं। मूल अज्ञान नसूक्ष्मस्थूल, समष्टि नव्यष्टिपनोनहिंतामैं ॥ ईश न सूत्र विराट न प्राज्ञ, न तैजस विश्वस्वरूप न जामैं। भोग न योगनबंधनमोक्ष, नहींकछुवामैंरुहै सबवामैं ॥ १६२॥ जाग्रतमैं जु प्रपंच प्रभासत, सोसब बुद्धिविलासबन्योहै। ज्योंसुपनेमहिंभोग्यनभोग, तऊइकचित्रविचित्रजन्योहै॥ लीन सुषूपतिमैं मति होतहि, भेद भगै इकरूप सुन्यो है। बुद्धिरच्यो जु मनोरथ मात्रसु, निश्चल बुद्धि प्रकाश भन्यो है॥

सवैया—छन्द।

जाके हिये ज्ञानउजियारो, तम अँधियारो खरो विनाश। सदा असंग एकरस आतम, ब्रह्मरूप सो स्वयंप्रकाश॥ ना कछु भयो न है नहिं ह्वैहै, जगत मनोरथमात्र विलास। ताकी प्राप्ति निवृत्ति न चाहत, ज्यों ज्ञानीकेकोउ नआस॥ देखै सुनै न सुनै न देखै, सब रस गहे रु लेत न स्वाद। सूंघि परशि परशै न न सूंघै, बैनन बोलैं करै विवाद॥ ग्रहि न ग्रहै मल तजै न त्यागै, चलै नहीं अरु धावत पाद। भोगै युवति सदा संन्यासी, शिषलखि यह अद्भुतसंवाद॥१६९॥

याका अभिप्राय कहैं हैं:-

सवैया छन्द ।

निज विषयनमें इंद्रिय बर्तें, तिनते मेरो नाहीं संग ।
मैं इंद्रिय नहिं मम इंद्रिय नहिं,मैंसाक्षीकूटस्थअसंग॥
त्यागहु विषय किभोगहु इंद्रिय, मोकूं लगै न रंचक रङ्ग ।
यह निश्चय ज्ञानीको जाते,कर्त्ता दीखे करे न अङ्ग ॥
हे अंग ! प्रिय अन्य अर्थ स्पष्ट ॥१६६ ॥

इसरीतिसे आचार्यने शिष्यकूं गोप्यतत्त्वका उपदेश किया तौ भी शिष्यका मुख अत्यंत प्रसन्न नहीं देखिके यह जान्या, शिष्य कृतार्थ नहीं हुवा जो कृतार्थ होता, तौ याका मुख प्रसन्न होता याते फेरि स्थूलरीतिसे उपदेश करनेकूंलय चिंतन कहैं हैं:

सवैया छन्द ।

माटीको कारज घट जैसे, माटी ताके बाहिर माहिं ।
जलते फैन तरंग बुदबुदा, उपजत जलते जुदे सु नाहिं ॥
ऐसे जो जाको है कारज, कारणरूप पिछानहु ताहि ।
कारणईशसकलको 'सोमैं,' लयचिंतनजानहुविधि याहि

टीका-जैसे माटीके कार्यके बाहिर भीतरिमाटी है, याते माटीका सर्व कार्य माटीस्वरूपही है, फेनआदिक जलके कार्य जलस्वरूप हैं. ऐसे जो जाका कार्य है, सो ताका कारण स्वरूपसे भिन्न नहीं; किंतु कार्य

कारण स्वरूपही है. और सकल प्रपंचका मूलकारण ईश्वर है. याते सर्व कार्य प्रपंच ईश्वरस्वरूपसे भिन्न नहीं.किंतु सर्वप्रपंचका स्वरूप ईश्वरही है. "सो ईश्वर मैं हूँ" या रीतिसे लय चिंतन जानिके तू कर.

लय चिंतनका संक्षेपते यह क्रम हैः—१ स्थूलब्रह्मांडसारा पंचीकृत भूतनका कार्य है, तहां जो पृथ्वीका कार्य सो पृथ्वीस्वरूप.और जलका कार्य जलस्वरूप,या रीतिसे जा भूतनका जो कार्य सो ताकाही स्वरूप है. इसरीतिसे सारा स्थूल ब्रह्मांड पंचीकृतस्वरूप है. २ तैसे पंचीकृत भूत भी अपंचीकृतभूतनके कार्य हैं याते अपंचीकृत स्वरूपही पंचीकृतभूत हैं भिन्न नहीं.और ३ अंतःकरण आदिक सूक्ष्मसृष्टि भी अपंचीकृतभूतनका कार्य होनेते अपंचीकृत भूतस्वरूप हैं तामें अंतःकरण सारे भूतनके सत्त्वगुणके कार्य हैं. याते सत्त्वगुण स्वरूप हैं, और भूतनके रजोगुण अंशके कार्य प्राण रजोगुण स्वरूप हैं, गुदाइंद्रिय पृथ्वीके रजोगुण अंशका कार्य सो पृथ्वीका रजोगुणस्वरूप, घ्राण इंद्रिय पृथ्वीके सत्त्वगुणका कार्य सो सत्त्वगुणस्वरूप; ऐसे रसना और उपस्थ जलके सत्त्वगुण रजोगुणस्वरूप नेत्र और पाद तेजके सत्त्वगुण रजोगुण स्वरूप, त्वक् और, पाणि वायुके सत्त्वगुण रजोगुण स्वरूप, श्रोत्र और वाक्

आकाशके सत्त्वगुण रजोगुणस्वरूप; यारीतिसे सारी-सूक्ष्मसृष्टि अपंचीकृतभूतस्वरूप है.

यह चिंतनकरिके अपंचीकृतभूतनका भी लय चिंतन करै. १ पृथ्वी जलका कार्य है. याते जलस्वरूप है. २ तेजका कार्य जल, तेज स्वरूप है ३ तेज वायुका कार्य होनेते वायुस्वरूप है. ४ आकाशका कार्य वायु आकाशस्वरूप है ५ तमोगुणप्रधान प्रकृतिका कार्य आकाश प्रकृतिस्वरूप है.

और ६ मायाकी अवस्थाविषेही प्रकृति है; याते प्रकृति माया स्वरूप है. एकवस्तुके प्रधान, प्रकृति, माया, अविद्या, अज्ञान, शक्ति ये नाम हैं. सर्वकार्यकूं अपनेमें लीन करिके प्रलयमें स्थित उदासीन स्वरूपकूं प्रधान कहैं हैं. और सृष्टिके उपादान योग्य तमोगुण प्रधान स्वरूपकूं प्रकृति कहैं हैं. जैसे देशकालादिक सामग्री बिना दुर्घटपदार्थकी इंद्रजालसे उत्पत्ति होवै है, तहां इंद्रजालकूं माया कहैं हैं. तैसे असंग अद्वितीय ब्रह्ममें इच्छादिक दुर्घट हैं, तिनकूं करै है. याते माया कहैं हैं स्वरूपकूं आच्छादन करै है, याते अज्ञान कहैं हैं. ब्रह्मविद्याते नाश होवै है, याते अविद्या कहैं हैं और स्वतंत्र कभी भी रहै नहीं, तहां किंतु चेतनके आश्रितही रहै हैं, याते शक्तिभी कहैंहैं

इसरीतिसे प्रकृति आदिक प्रधानकेही भेद हैं. याते प्रधानरूप हैं ७सो प्रधान ब्रह्मचेतनकी शक्ति है जैसे पुरुषमें सामर्थ्यरूप शक्ति पुरुषसे भिन्न नहीं तैसे चेतनमें प्रधानरूप शक्ति ब्रह्मचेतनसे भिन्न नहीं या प्रकारते सर्व अनात्म पदार्थनका ब्रह्मविषे लय चिंतन करिके "सो अद्वयब्रह्म मैं हूँ" यह चिंतन करै.

जाकूं महावाक्यविचार कियेते भी बुद्धिकी मंदतादिक किसी प्रतिबंधकते अपरोक्षज्ञान होवै नहीं, ताकूं यह लयचिंतनरूप ध्यान कह्या हैं, ध्यान और ज्ञानका इतना भेद हैः-ज्ञान तौ प्रमाण और प्रमेयके अधीन है विधि और पुरुषकी इच्छाके अधीन नहीं और २ ध्यान, विधिके तथा पुरुषकी इच्छा और विश्वास तथा हठके अधीन है १ जैसे प्रत्यक्ष ज्ञानमें प्रमाण नेत्र और प्रमेय घटादिक, तहां नेत्रका और घटका संबंध हुयेते पुरुषकी इच्छा विना भी घटका प्रत्यक्ष ज्ञान होवै है, भाद्रपदशुद्धचतुर्थीके दिन चंद्रदर्शनका निषेध है, विधि नहीं, और पुरुषकूं यह इच्छा होवे हैः—"मेरेकूं आज चंद्रदर्शन नहीं होवे" तौभी किसी रीतिसे नेत्रप्रमाणका जो प्रमेय चंद्रसे संबंध होय जावे, तौ चंद्रका प्रत्यक्षज्ञान अवश्यही होवै है. इसरीतिसे प्रमाण प्रमेयके अधीन ज्ञान है

विधि और इच्छाके अधीन नहीं और २ शालग्राम विष्णुरूप है यह ध्यान करै ताकूं उत्तमफल प्राप्त होवेहै तहां शास्त्रप्रमाणसे विष्णुकूं तौ चतुर्भुजमूर्त्ति, शंख, चक्र, गदा, पद्म,लक्ष्मीसहित जानै है और नेत्रप्रमाणते शालग्रामकूं शिला जानै है तथापि विधिविश्वास इच्छाते "शालग्राम विष्णु है"यह ध्यान होवै है परंतु सो ध्यान नानाप्रकारका है, कहूँ तो अन्यवस्तुका अन्यरूपसे ध्यान; जैसे शालग्रामका विष्णुरूपसे ध्यान याकूं प्रतीकध्यान कहैं हैं और वैकुंठलोकवासी विष्णुका शंखचक्रादिक सहित चतुर्भुजमूर्तिरूपसे ध्यान है तहां अन्यका अन्यरूपसे ध्यान नहीं किंतु ध्येयरूपके अनुसार यह ध्यान है वैकुंठवासी विष्णुका स्वरूप प्रत्यक्ष तौ है नहीं केवल शास्त्रते जानिये है. और शास्त्रने शंखचक्रादिकसहित विष्णुका स्वरूप कह्या है याते ध्येयस्वरूपके अनुसारही यह ध्यान है विधि विश्वास इच्छा विना ध्यान होवे नहीं- "यह उपासना करै" ऐसा पुरुषका प्रेरकवचन विधि कहिये है ता वचनमें श्रद्धाकूं विश्वास कहैं हैं और अंतःकरणकी कामनारूप रजोगुण की वृत्ति इच्छा कहिये है ध्यानके हेतु यह तीनिहैं उपासनाका ज्ञानके नहीं और ध्यान हठसे होवै है. ज्ञानमें हठकी

अपेक्षा नहीं. काहेते, निरंतर ध्येयाकार चित्तकी वृत्तिकूं ध्यान कहैं हैं. तहां वृत्तिमें विक्षेप होवै तो हठसे वृत्तिकी स्थिति करै. और ज्ञानरूप अंतःकरणकी वृत्तिसे तत्काल आवरणभंग हुयेते वृत्तिकी स्थितिका उपयोग नहीं; याते हठकी अपेक्षा नहीं. वैकुण्ठवासी चतुर्भुज विष्णुके ध्यानकी न्याई "मैं ब्रह्म हूँ" यह ध्यान भी ध्येयके अनुसार है; प्रतीक नहीं. परंतु यह अहंग्रह ध्यान है ध्येयस्वरूपका अपनेसें अभेद करिके चिंतन, अहंग्रहध्यान कहिये है. जा पुरुषकूं अपरोक्षज्ञान नहीं होवै, और वेदकी आज्ञारूप विधिमें विश्वासकरिके हठते निरंतर "मैं ब्रह्म हूँ" या वृत्तिकी स्थितिरूप अहंग्रहध्यान करै. ताकूं भी ज्ञान प्राप्त होयके मोक्षकी प्राप्ति होवै है ॥ १६७

और रीतिसे अहंग्रहउपासना कहैं हैंः—

सवैया-छंद ।

ध्यान अहंग्रह प्रणवरूपका, कह्यो सुरेश्वर श्रुति अनुसार।
अक्षरप्रणवब्रह्ममरूपसु; योअनुलव निजमतिगतिधार॥
ध्यानसमान आन नहियाके, पंचीकरणप्रकार विचार।
जोयहकरतउपासनसोमुनि, तुरितनशैसंसारअपार१६८

टीका—हे शिष्य! प्रणवरूपका कहिये ओंकारस्वरूपका अहंग्रहध्यान मांडूक्यप्रश्नआदिक श्रुतिके अनु-

सार सुरेश्वराचार्यने कह्या है; सो तूं कर. ताका संक्षेपते प्रकार यह है–प्रणवअक्षर ब्रह्मस्वरूप है. "सो प्रणवरूप ब्रह्म में हूं"यारीतिसे अनुलव कहिये क्षणमात्र अंतरायरहित निजमतिकी गतिकहिये वृत्ति धार कहिये, स्थित कर. याके समान आन ध्यान नहीं है. और या ध्यानका प्रकार कहिये विशेषरीति सुरेश्वरकृतपंचीकरण नाम ग्रंथसे विचार चतुर्थपाद स्पष्ट यद्यपि प्रणवउपासना बहुत उपनिषदनमें है.तथापि मांडूक्यउपनिषद्में विशेष है. ताके व्याख्यानमें भाष्यकार और आनंदगिरिने ताकी रीति स्पष्ट लिखी है. सोई रीति वार्तिककारने पंचीकरणमें लिखी है तथापि तिन ग्रंथनके विचारनमें जिनकी बुद्धि समर्थ नहीं है. तिनके अर्थ प्रणवउपासनाकी रीति हम लिखें हैं–दोप्रकारसे प्रणवका चिंतन उपनिषदनमें कह्या है. एक तौ परब्रह्मरूपते प्रणवका चिंतन कह्या है; और दूसरा अपरब्रह्मरूपते कह्या है १ निर्गुणब्रह्मकूं परब्रह्म कहैं हैं. २ सगुणब्रह्मको अपरब्रह्म कहैं हैं १ परब्रह्मरूपते प्रणवका चिंतन करै सो मोक्षकूं प्राप्त होवै है. और २ अपरब्रह्मरूपते प्रणवका चिंतन करै, सो ब्रह्मलोककूं प्राप्त होवै है. ऐसे निर्गुणसगुणभेदतें प्रणवउपासना दो प्रकारकी है; तामें निर्गुणउपासनाकी रीति लिखैं हैं, सगुणकी

नहीं. काहेते १ जाकूं ब्रह्मलोककी कामना होवै, ताकूं निर्गुणउपासनाते भी कामनारूप प्रतिबंधकते ज्ञान-द्वारा तत्काल मोक्ष होवै नहीं. किंतु ब्रह्मलोककीही प्राप्ति होवै है.तहां हिरण्यगर्भके समान भोगनकूं भोगि-के ज्ञान होवै. तब मोक्ष होवै. और २ जाकूं ब्रह्मलोक की कामना नहीं होवै,ताकूं इस लोकमेंही ज्ञान होयके मोक्ष होवै है, इसरीतिसे सगुण उपासनाका फल भी निर्गुण उपासनाके अंतर्भूत है. याते निर्गुण-प्रकार कहैं हैं—जो कछु कारणकार्यवस्तु है, सो ओंकारस्वरूप है. याते सर्वरूप ओंकार है. १ सर्वपदार्थनमें नाम और रूप दो भाग हैं तहां रूप भाग अपने अपने नामभागसे न्यारा नहीं. किंतु नामस्व-रूपही रूपभाग है. काहेते, पदार्थका रूप कहिये आकार.ताका नामसे निरूपण करिके ग्रहण वा त्याग होवै है, नाम जाने विना केवल आकारते व्यवहार सिद्ध होवै नहीं, याते नामही सार है और आकारके नाश हुयेते भी नाम शेष रहै है. जैसे घटका नाश हु-येते मृत्तिका शेष रहै है.तहां घट मृत्तिकासे पृथक् वस्तु नहीं. मृत्तिकास्वरूप है, तैसे आकारका नाश हुयेते मृत्तिकाकी न्याईं शेष रहे जो नाम, तासे आकार पृथक् नहीं,नामस्वरूप ही आकार है. किंवा जैसे घट-

शरावादिकनमें मृत्तिका अनुगत है, और घट शरावादिक परस्पर व्यभिचारी हैं याते घटशरावादिक मिथ्या तिनमें अनुगत मृत्तिका सत्य है. तैसे घट आकार अनेक हैं, तिन सबका "घट" यह दो अक्षर नाम एक है सो आकार परस्परव्यभिचारी और सर्वघटके आकारमें नाम एक अनुगत है याते मिथ्याआकार सत्यनामते पृथक् नहीं इस रीतिसे सर्वपदार्थनके आकार अपने अपने नामसे भिन्न नहीं, किंतु नामस्वरूपही आकार हैं २ सो सारे नाम ओंकारसे भिन्न नहीं किंतु ओंकारस्वरूपही नाम हैं. काहेते वाचकशब्दकूं नाम कहैं हैं. और लोकवेदके सारे शब्द ओंकारसे उत्पन्न हुये हैं, यह श्रुतिमें प्रसिद्ध है संपूर्ण कार्य कारणरूप होवैं हैं; याते ओंकारके कार्य जो वाचक शब्द रूप नाम, सो ओंकारस्वरूप हैं. इसरीतिसे रूपभाग जो पदार्थनका आकार सो तौ नामस्वरूपहै. और सर्वनाम ओंकार स्वरूप हैं. याते सर्वस्वरूप ओंकार है।

३ जैसे सर्वस्वरूप ओंकार है, तैसे सर्वस्वरूप ब्रह्म है; याते ओंकार ब्रह्मरूप है. किंवा ओंकार ब्रह्मका वाचक है, ब्रह्म वाच्य है. वाच्यवा और वाचकका अभेद होवै है. याते भी ओंकार ब्रह्मरूप है और विचा-

रहष्टिते तौ अक्षर ब्रह्मविषे अध्यस्त है, ब्रह्म तिसका अधिष्ठान है. अध्यस्तका स्वरूप अधिष्ठानते न्यारा होवै नहीं. याते भी ओंकारब्रह्मस्वरूप है. याते ओंकारकूं ब्रह्मरूपकरिके चिंतन करै.

४ ब्रह्मरूप ओंकारका आत्मासेभी अभेद चिंतन करै काहेते, आत्माका ब्रह्मसे मुख्य अभेद है. और ब्रह्मके चारिपाद हैं तैसे आत्माके भी चारिपाद हैं पाद नाम भागका है ताहीकूं अंश भी कहैं हैं. विराट्; हिरण्यगर्भ. ईश्वर और तत्पदका लक्ष्य ईश्वर साक्षी ये चारि पाद ब्रह्मके हैं, विश्व, तैजस, प्राज्ञ, और त्वंपदका लक्ष्य जीवसाक्षी; ये चारिपाद आत्माके हैं जीवसाक्षीकूंही तुरीय कहैं हैं.

समष्टिस्थूलप्रपंचसहित चेतन विराट् कहिये है. व्यष्टि स्थूल अभिमानी विश्व कहिये है विराट्की और विश्वकी उपाधि स्थूल हैं, याते विराट्रूपही विश्व है, विराट्ते न्यारा नहीं. विराट्रूप विश्वके सात अंग हैं. स्वर्गलोक मूर्धा है. सूर्य नेत्र हैं, वायु प्राण, आकाश धड है, समुद्रादिरूप जल मूत्रस्थान है, पृथ्वी पाद है, जाअग्निमें होम करिये सो अग्नि मुख है. ये सात अंग विश्वके कहे हैं मांडूक्यमें यद्यपि स्वर्गलोकादिक विश्वके अंग बनै नहीं; तथापि विराट्के अंग हैं. ता विराट्सें

विश्वका अभेद है. याते विश्वके अंग कहैं हैं.

तैसे विराट्ट विश्वके उन्नीस मुखहैंः—पंच प्राण, पंच कर्म इंद्रिय,पंच ज्ञानइंद्रिय, चारि अंतःकरण; ये उन्नीस-मुखकी न्याई भोगके साधन हैं, याते मुख कहिये हैं. इन उन्नीसते स्थूल शब्दादिकनको बाह्यवृत्तिकरिके जाग्रत अवस्थाविषे भोगै हैं, याते विराटरूप विश्व, स्थूलका भोक्ता और बाह्यवृत्ति कहिये है, और जाग्रतअवस्था-वाला कहिये हैं.

प्राणादिक उन्नीस जो भोगके साधन हैं, तिनविषये श्रोत्रादिक इंद्रिय,और अंतःकरण चारि,येचतुर्दश अपने अपने विषय, और अपने अपने देवताकी सहाय चाहैं हैं देवता विषयकी सहाय विना केवल इनते भोग होवै नहीं. याते पंच प्राण और चतुर्दश त्रिपुटी विराट्ट रूप विश्वके मुख कहिये हैं, तिनके समुदायका नाम त्रिपुटी है.

सो त्रिपुटी इस रीतिसे कही हैः—श्रोत्रइंद्रिय अ-ध्यात्म है और ताका विषय शब्द अधिभूत है दिशाका अभिमानी देवता अधिदेव है, या प्रकरणमें क्रिया श-क्तिवाले और ज्ञानशक्तिवाले इंद्रिय और अंतःकरण अध्यात्म कहिये हैं, तिनके विषय अधिभूत कहिये है, और तिनके सहायक देवता अधिदैव कहिये है,

त्वचा इंद्रिय अध्यात्म है,ताका विषय स्पर्श अधिभूत है,वायुतत्त्वका अभिमानी देवता अधिदेव है, नेत्रइंद्रिय अध्यात्म है, रूप अधिभूतहै,सूर्य अधिदेव है, रसना इंद्रिय अध्यात्म है, रस अधिभूत है, वरुण अधिदेव है. घ्राणइंद्रिय अध्यात्म है,गंध अधिभूत है, अश्विनी-कुमार अधिदेव हैं. और वार्तिककार सुरेश्वराचार्यने पृथिवीका अभिमानी देवता घ्राणका अधिदेव कह्या है, सो भी बनै है. काहेते, पृथिवीघ्राणकीउत्पत्ति हैय याते पृथिवी अधिदेव कह्या है. और सूर्यकी स्त्री बड-वाकी नासिकाते अश्विनीकुमारकी उत्पत्ति कही है, याते नासिकाका अधिदेवकूं अश्विनीकुमारही कहैं हैं, वाक् इंद्रिय अध्यात्म है वक्तव्य अधिभूत है. अग्निदेवता अधिदेव है. हस्तइंद्रिय अध्यात्म है. पदार्थका ग्रहण अधिभूत है इंद्रअधिदेव है पादइंद्रिय अध्यात्म, गमन अधिभूत विष्णु अधिदेव है गुदाइंद्रिय अध्यात्म,मलका त्याग अधिभूत,यम अधिदेव हैं.उपस्थ इंद्रिय अध्यात्म, ग्राम्यधर्मके सुखकी उत्पत्ति अधिभूत है, प्रजापति अधिदेव है, मन अध्यात्म है,मननका विषय अधिभूत है,चंद्रमा अधिदेव है बुद्धि अध्यात्म है,बोद्धव्य अधिभूत है,बृहस्पति अधिदेव है,ज्ञानका विषयबोद्धव्य कहिये है, अहंकार अध्यात्म है, अहंकारका विषय अधिभूत

है, रुद्र अधिदेव है. चित्त अध्यात्म है चिंतनका विषय अधिभूत है; क्षेत्रज्ञ जो साक्षी सो अधिदैव है. ये चतुर्दशत्रिपुटी और पंचप्राण ये १९ विराट्‌रूप विश्व मुख हैं. १ जैसे विराट्‌ते विश्वका अभेद है तैसे ओंकारकी प्रथममात्रा जो अकार, ताका भी विराट्‌रूप विश्वते अभेद है. काहेतें, ब्रह्मके चारिपादनमें प्रथमपाद विराट् है; और आत्माके चारि पादनमें प्रथम विश्व है; तैसे ओंकारकी चारिमात्रारूप पादनमें प्रथमपाद अकार है. याते प्रथम ता तीनोंमें समानधर्म होनेते विश्वविराट् अकारका अभेदचिंतन करै. जो सात अंग उन्नीस मुख विश्वके कहे, सोई; सात अंग और उन्नीसमुख तैजसके भी जाननेकूं योग्य हैं. परंतु इतना भेद है:—विश्वके जो अंग और मुख हैं सो तौ ईश्वररचित हैं, और तैजसके जो इंद्रिय देवता विषयरूप त्रिपुटी और मूर्धादिक अंग सो मनोमय हैं; तैजसका भोग सूक्ष्म है. यद्यपि भोग नाम सुख अथवा दुःखके ज्ञानका है, ताके विषे स्थूलता और सूक्ष्मता कहना बनै नहीं; तथापि बाह्य जो शब्दादिक विषय हैं, तिनके संबंधते जो सुख अथवा दुःखका साक्षात्कार, सो स्थूल कहिये है. और मानस जो शब्दादिक तिनके संबंधते जो भोग होवे, सो सूक्ष्म कहिये

है. इसी कारणते विश्व तो स्थूलका भोक्ता श्रुतिविषे कह्या है, और तैजस सूक्ष्मका भोक्ता कह्या है. काहेते, तैजसके भोग्य जो शब्दादिक हैं, सो तौ मानस हैं; याते सूक्ष्म हैं.और तिनकी अपेक्षा करिके विश्वकेभोग्य बाह्यशब्दादिक हैं सो स्थूल हैं.और विश्व बहिरप्रज्ञ है, तैजस अंतरप्रज्ञ है. काहेते, जो विश्वकी अंतःकरणकी वृत्तिरूप प्रज्ञा है, सो बाहिर जावै है; और तैजसकी नहीं जावै है. २ जैसे विश्वका और विराट्का अभेद है तैसे तैजसकूं भी हिरण्यगर्भरूप जानै. काहेते, सूक्ष्मउपाधि तैजसकी है,और सूक्ष्म ही हिरण्यगर्भकी है.याते दोनोंकी एकताजाने तैजस हिरण्यगर्भकी एकता जानिके ओंकारकी द्वितीयमात्रा उकारसे तिनका अभेद चिंतन करै काहेते; आत्माके चारिपादनमें द्वितीयपाद तैजस है ब्रह्मके पादनमें हिरण्यगर्भ दूसरा पाद है ओंकारकी मात्रामें द्वितीयमात्रा उकार है. द्वितीयता तीनोंमें समानधर्म है, याते तीनोंकी एकता चिंतन करै.

३ और प्राज्ञकूं ईश्वररूप जानै. काहेते, प्राज्ञकी कारणउपाधि है, और ईश्वरकी भी कारणउपाधि है. ईश्वर और प्राज्ञ,पादनमें तृतीय हैं.ओंकारकी तृतीय मात्रा मकार है तीसरापना तीनोंमें समानधर्म है. याते तीनोंकी एकता जाने और यह प्राज्ञ प्रज्ञानघन है.काहेते;

जाग्रत और स्वप्नके जितने ज्ञान हैं; सो सुषुप्तिविषे घन कहिये एक अविद्यारूप होय जावैं हैं, याते प्रज्ञानघन कहिये हैऔर आनंदभुक् भी यह प्राज्ञ श्रुतिने कहा है. काहेते अविद्यासे आवृत जो आनंद है, ताकूं यह प्राज्ञ भोगै है. याते आनंदभुक् कहिये है.

जैसे तैजस और विश्वका भोग त्रिपुटीसे होवै है, तैसे प्राज्ञके भोगकी भी त्रिपुटी कहिये हैः—चेतनके प्रतिबिंब सहित जो अविद्याकी वृत्ति है, सो अध्यात्म हैः अज्ञानसे आवृत जो स्वरूप आनंद, सो अधिभूत है और ईश्वर अधिदैव है. इस रीतिसे विश्वतौ बहिरप्रज्ञ है, और तैजस अंतरप्रज्ञ है. और प्राज्ञ प्रज्ञानघन है.

४ ऐसा जो तीनोंका भेद है. सो उपाधि करिकेहै विश्वकी स्थूल, सूक्ष्म; अज्ञान तीनि उपाधि हैं और तैजसकी सूक्ष्म अज्ञान दो उपाधि हैं और प्राज्ञकी एक अज्ञान उपाधि है इस रीतिसे उपाधिकी न्यूनता अधिकतासे तीनोंका भेद है, परमार्थ करिके स्वरूपसे भेद नहीं.

विश्व, तजस; प्राज्ञ, इन तीनों विषे अनुगत जो चेतन है, सो परमार्थसे तीनों उपाधिके संबंधसे रहित है. तीनों उपाधिका अधिष्ठान तुरीय है, सो बहिर प्रज्ञ नहीं और अंतरप्रज्ञ नहीं. और प्रज्ञानघन भी

नहीं,कर्म इंद्रियका और ज्ञान इंद्रियका विषय नहीं; और बुद्धिका विषय नहीं किसी शब्दका विषय नहीं ऐसा जो तुरीय है, ताकूं परमात्माका चतुर्थपाद ईश्वर साक्षी शुद्ध ब्रह्मरूप जानैं.

१ इसरीतिसे दो प्रकारका आत्माका स्वरूप कह्या एक तो परमार्थरूप है, और एक अपरमार्थरूप है तीनि पाद तो अपरमार्थरूप हैं और एक पाद तुरीय परमार्थ रूप है. २ जैसे आत्माके दो स्वरूप हैं, तैसे ओंकारकेभी दो स्वरूप हैं. अकार उकार मकार, ये तीनि मात्रारूप जो वर्ण हैं, सो तौ अपरमार्थ रूप है, और तीनोंमात्राविषे व्यापक जा अस्ति भाति प्रियरूप अधिष्ठान चेतन है, सो परमार्थरूप है जो ओंकारका परमार्थरूप है ताको श्रुति विषे अमात्रशब्दकरिके कहा है काहेते, ता परमार्थस्वरूप विषे मात्रा विभाग है नहीं याते अमात्र कहिये है. इसरीतिसे दो स्वरूपवाला जो ओंकार है;ताका दो स्वरूपवाले आत्मासे अभेदजानै।

१ व्यष्टि और समष्टि जो स्थूलप्रपंच तासहित विश्व और विराट् का अकारसे अभेद जाने. आत्माके जो पाद हैं तिनविषे विश्व आदि हैं और ओंकारकी मात्रा विषे अकार आदि हैं, याते दोनोंकूं एक जाने. २ सूक्ष्मप्रपंचसहित जो हिरण्यगर्भरूप तैजस है ताकूं

उकार रूप जानै तैजस भी दूसरा है; और उकार भी दूसरा है याते दोनोंकूं एक जाने. ३ कारणउपाधि सहित जो ईश्वररूप प्राज्ञ है, ताकूं मकाररूप जाने जैसे ईश्वररूप प्राज्ञ तीसरा है तैसे मकार भी तीसरा है, यातें ईश्वररूप प्राज्ञ और मकारकूं एक जानै ४ तीनोंविषे अनुगत जो परमार्थरूप तुरीय है, ताकूं ओंकार वर्णकी तीनि मात्राविषे अनुगत जो ओंकार का परमार्थरूप अमात्र है, तासे अभिन्न जाने. जैसे विश्वादिक विषे तुरीय अनुगत है, तैसे अकारादिक तीनि मात्राविषे अमात्र अनुगत है; याते ओंकार के अमात्ररूपकूं और तुरीयकूं एक जानै. इसरीतिसे आत्माके पाद और ओंकारकी जो मात्रा हैं, तिनकी एकता जानिके लयचिंतन करै सो लयचिंतन कहियेहै

१ विश्वरूप जो अकार है, सो तैजसरूप उकारसे न्यारा नहीं, किंतु उकाररूप है, ऐसा जो चिंतन करना सो या स्थानमें लय कहिये है ऐसाही औरमात्राविषे भी जानि लेना. और २ जा उकारविषे अकारका लय किया है, ता तैजसस्वरूप उकारका प्राज्ञरूप जो मकार है, ताकेविषे लय करै. और ३ प्राज्ञरूप जो मकार है ताकूं तुरीयरूप जो ओंकारका परमार्थ रूप अमात्र है, ताकेविषे लीन करे, काहेते स्थूलकी उत्पत्ति और लय

सूक्ष्मविषे होवै है. याते१ विश्वरूप जो अकार है, ताका तैजसस्वरूप उकारमें लय बनै है. और २ सूक्ष्म की उत्पत्ति और लय कारणमें होवै है. याते तैजसरूप जो उकार है, ताका कारण प्राज्ञरूप जो मकार है; ताकेविषे लय बनै है. या स्थानविषे विश्व आदिकनके ग्रहणते समष्टि जो विराट्आदिक हैं, तिनका, और अपनी अपनी जो त्रिपुटी हैं, तिन सर्वका ग्रहण जानना. ३ जा प्राज्ञरूप मकार विषे उकार लय किया है ता मकारको तुरीयरूप जो ओंकारका परमार्थरूप अमात्र है ताकेविषे लीन करै. काहेते, ओंकारके परमार्थस्वरूपका तुरीयसे अभेद है. सो तुरीय ब्रह्मरूप है. और शुद्धविषे ईश्वर प्राज्ञ दोनों कल्पित हैं. जो जाके विषे कल्पित होवै है, सो ताका स्वरूप होवैहै, याते ईश्वरसहित प्राज्ञरूप मकारका लय बनै है. इसरीतिसे जो ओंकारके परमार्थस्वरूप अमात्रविषे सर्वका लय किया है, "सो मैं हूं" ऐसा एकाग्र चित्त होयके चिंतन करै. स्थावर जंगमरूप, और असंग, अद्वय, असंसारी, नित्यमुक्त, निर्भय, ब्रह्मरूप जो ओंकारका परमार्थस्वरूप, "सो मैं हूँ" ऐसा चिंतन करनेसे ज्ञान उदय होवै है. याते ज्ञानद्वारा मुक्तिरू फलका देनेवाला यह ओंकारका निर्गुणउपासन है. सो

सर्वसे उत्तम है.

जो पूर्वरीतिसे ओंकारके स्वरूपकूं जानै है, सो मुनि है. जो नहीं जानै है, सो मुनि नहीं. काहेते मुनि नाम मनन करनेवालेका है. यह ओंकारका चिंतन मननरूप है. जाके ओंकारका चिंतनरूप मनन नहीं, सो मुनि नहीं यह मांडूक्यउपनिषदकी रीतिसे संक्षेपते ओंकारका चिंतन कह्या है. और भी नृसिंहतापिनी आदिक उपनिषदनमें याका प्रकार है यह ओंकारका चिंतन परमहंसोंका गोप्यधन है, बहिर्मुख पुरुषका याविषे अधिकार नहीं, अत्यंतअंतरमुखका अधिकार है गृहस्थका यामें अधिकार नहीं. धन पुत्र, स्त्रीसंगादिक रहित परमहंसका अधिकार है.

१ पूर्व प्रकारते ओंकारका ब्रह्मरूपते ध्यान कियेते ज्ञान द्वारा मोक्ष होवै है, २ परंतु जा पुरुषकी इसलोकके भोगनमें अथवा ब्रह्मलोकके भोगनमें कामना होवै तीव्र वैराग्य नहीं होवै, और हठसे कामनाको रोकिके, धन पुत्रादिकनकूं त्यागिके, परमहंसगुरुके उपदेशते ओंकाररूप ब्रह्मका ध्यान करै, ताकूं भोगकी कामना ज्ञानमें प्रतिबंध है, याते ज्ञान नहीं होवै है, किंतु ध्यान करतेही शरीरत्यागते अनंतर अन्यशरीरकी प्राप्ति होवे, जो इसलोकके भोगनकी कामना रोकके ध्यानम

लगा होवे, तौ इसलोकमें अत्यंत विभूतिवाले पवित्र सत्संगीकुलमें जन्म होवै है, तहां पूर्वकामनाके विषै सारे भोग प्राप्त होवैं हैं.और पूर्व जन्मके ध्यानके संस्कारनते फेरि विचारमें अथवा ध्यानमें प्रवृत्ति होवै है. तातैं ज्ञान होयके मोक्ष होवै है.

और ब्रह्मलोकके भोगनकी कामनारोकिके ओंकार-रूप ब्रह्मके ध्यानमें लगा होवै,तौ शरीर त्यागिके ब्रह्म-लोककूं जावै हैं, तहां मनुष्यकूं, पितरनकूं, देवनकूं दुर्लभ जो स्वतंत्रता है, ताके आनंदको भोगै है. जितनी हिरण्यगर्भकी विभूति है, सो सारी सत्यसंकल्पादिक विभूति इसको प्राप्त होवै है.जा मार्गते ब्रह्मलोककूं जावै है,सो मार्गका क्रम यह हैः—जो पुरुष ब्रह्मकी उपासनामें तत्पर है,ताके मरणसमय इंद्रिय अंतःकरण यद्यपि सारे मूर्छित हैं, कहीं जानेमें समर्थ नहीं,और यमके दूत ताके समीप आवैं नहीं,जो ताके लिंगशरीरकूं ले जावैं.परंतु १अग्निका अभिमानी देवता ताकूं मरणसमय शरीरसे निकासिके अपने लोकको ले जावैहै. २ ता अग्निलोकते दिनका अभिमानी देवता ले जावै है. ३ तिसते शुक्लपक्षका अभिमानी देवता अपनेलोककूं ले जावै है. ४ तिसते आगे उत्तरायण जो षट्मास हैं, तिनका अभिमानी देवता लेजावै है.

५ तिसते आगे संवत्सरका अभिमानी देवता ले जावे है. ६ तिसते आगे देवलोकका अभिमानी देवता ले जावै है. ७ तिसते आगे वायुका अभिमानी देवता ले जावै है. ८ तिसते आगे सूर्यदेवता ले जावै है. ९ तिसते आगे चंद्र देवता ले जावै है. १० तिसते आगे बिजलीका अभिमानी देवता अपने लोकमें ले जावै है. ११ तहां बिजलीके लोकमें तिस उपासकके सामने हिरण्यगर्भकी आज्ञाते दिव्यपुरुष हिरण्यगर्भलोकवासी हिरण्यगर्भसमानरूप ताके लेनेकूं आवै है; सो पुरुष बिजलीके लोकते वरुणलोकको ले जावै है. बिजलीका अभिमानी देवता साथि आवै है. वरुणलोकते इंद्रलोककूं ले जावै है. १२ और वरुणदेवताभी इंद्रलोकतक हिरण्यगर्भलोकवासीपुरुष और उपासकके साथि रहै है. १३ तिसते आगे इंद्रदेवता प्रजापतिके लोकतक दोनोंके साथि रहै है. १४ तिसते आगे प्रजापति तिन दोनोंके साथ ब्रह्मलोक लेजानेविषे समर्थ नहीं याते ब्रह्मलोकमें ता दिव्यपुरुषके साथि सो उपासक प्राप्त होवै है. ब्रह्मलोकका अधिपति हिरण्यगर्भ है. सूक्ष्मसमष्टिका अभिमानी चेतन हिरण्यगर्भ कहिये है; ताहीकूं कार्यब्रह्म कहैं हैं, कार्यब्रह्मके निवासस्थानकूं ब्रह्मलोक कहैं हैं.

यद्यपि पूर्वरीतिसे ओंकारकी उपासना शुद्धब्रह्मरूपकरिके कही है, शुद्धब्रह्मके उपासककूं शुद्धब्रह्मकी प्राप्ति चाहिये तथापि शुद्धब्रह्मकी प्राप्ति ज्ञानतेही होवै है, और कामनारूप प्रतिबंधते जाकूं ज्ञान हुवा नहीं; ताकूं कार्यब्रह्मकी प्राप्तिरूप सायुज्यरूप मोक्ष होवै है, १ ब्रह्मलोकमें प्राप्त जो उपासक है, ताकूं हिरण्यगर्भके समान विभूति प्राप्त होवै है, २ सत्यसंकल्प होवै है ३ जैसे शरीरकी इच्छा करे तैसाही उसका शरीर होवै है ४ जिन भोगनकी वांछा करै, सो सारेभोग संकल्पते ही प्राप्त होवैं है.५ जो एकसमय हजारशरीरनसे जुदे जुदे भोगनकी इच्छा करे, तो ताहीसमय हजार शरीर और उनके भोगनकी जुदी जुदी सामग्री उपजै है. और बहुत क्या कहैं; जो कछु संकल्प करै, सोई सिद्ध होवै है. परंतु जगत्की उत्पत्ति पालन संहार छोडिके और सारी विभूति ईश्वरके समान होवै है. याहीकूं सायुज्यमोक्ष कहैं हैं. ऐसे हिरण्यगर्भके समान हुवा बहुतकाल संकल्पसिद्ध दिव्यपदार्थनको भोगिके प्रलयकालमें जब हिरण्यगर्भके लोकका नाश होवे तब ज्ञान होयके उपासककूं विदेहमोक्षकी प्राप्ति होवै है.

जैसे ओंकाररूप ब्रह्मकी उपासना करनेवाला ब्रह्म-

लोककी प्राप्तिद्वारा मोक्षको प्राप्त होवै है, तैसे और भी उपनिषदनमें ब्रह्मकी उपासना कही है, तिनते यही फल होवै है. परंतु अहंग्रह उपासना बिना और उपासनाते ब्रह्मलोककी प्राप्ति होवै नहीं यह वार्त्ता सूत्रकारने और भाष्यकारने चतुर्थ अध्यायमें प्रतिपादन करी है.

१ जैसे नर्मदेश्वरका शिवरूपते और शालग्रामका विष्णुरूपते ध्यान कह्या है, सो प्रतीकध्यान है,अहंग्रह नहीं. और २ मनका ब्रह्मरूपते आदित्यका ब्रह्मरूपते ध्यान कह्या है, सो भी प्रतीकध्यान है, अहंग्रह नहीं. तिनते ब्रह्मलोककी प्राप्ति होवे नहीं. सगुण अथवा निर्गुणब्रह्मकूं अपनेते अभेदकरिके चिंतन करै, ताकूं अहंग्रहध्यान कहैं हैं. ताहीते ब्रह्मलोककी प्राप्ति होवैहै.

पूर्व कह्या जो मार्ग है ताकूं उत्तरायणमार्ग कहैं हैं और देवमार्ग भी कहैं हैं. ता देवमार्गते ब्रह्मलोककूं जो उपासक जावैं हैं; तिनकूं फेरि संसार नहीं होता, किंतु ज्ञान होयके विदेहमुक्तिकूं प्राप्त होवैं हैं. तहां ज्ञानके साधन जो गुरुउपदेशादिक हैं, तिनकी भी अपेक्षा नहीं किंतु ब्रह्मलोकमें गुरुउपदेशादिक साधन विनाही ज्ञान होवै है. काहेते ब्रह्मलोकमें तमोगुण

रजोगुणका तौ लेशभी नहीं केवल सत्वगुणप्रधान वह लोक है. १ तमोगुण नहीं; याते जडता आलस्यादिक नहीं.२ रजोगुण नहीं याते कामक्रोधादिरूप रजोगुणका कार्य विक्षेप नहीं. ३ केवल सत्वगुणहै याते सत्त्वगुणका कार्य ज्ञानरूप प्रकाश ता लोकमें प्रधान है.

ओंकारकी ब्रह्मरूपते जो पूर्व उपासना करी है, तब ओंकारकी मात्राका अर्थ इसरीतिसे चिंतन किया है:-१स्थूल उपाधिसहित विराट्विश्वचेतन अकारका वाच्य है २ सूक्ष्म उपाधिसहित चेतन हिरण्यगर्भतैजस उकारका वाच्य है. ३ कारण उपाधिसहित चेतन ईश्वरप्राज्ञ मकारका वाच्य है ऐसा अर्थ जो पूर्व चिंतन किया है, ताकी ब्रह्मलोकमें स्मृति होवै है. और सत्त्वगुणप्रभावते ऐसा विवेचन होवै है:-१ स्थूलउपाधिकरके चेतनमें विराट्पना और विश्वपना प्रतीत होवै है. स्थूलसमष्टिकी दृष्टिते विराट्पना है और स्थूलव्यष्टिकी दृष्टिते विश्वपना है. और समष्टिव्यष्टिस्थूलकी दृष्टिविना विराट्भाव और विश्वभाव प्रतीत होवै नहीं, किंतु चेतनमात्रही प्रतीत होवैहै. २ तैसे सूक्ष्मउपाधि सहित हिरण्यगर्भ तैजस चेतन उकारका वाच्य है. तहां समष्टिसूक्ष्म उपाधिकी दृष्टिते

चेतनमें हिरण्यगर्भता प्रतीत होवै है, और व्यष्टिसूक्ष्म उपाधिकी दृष्टिते तैजसता प्रतीत होवै है, सूक्ष्म उपाधिकी दृष्टिविना हिरण्यगर्भता और तैजसता प्रतीत होवै नहीं. ३ तैसे मकारका वाच्य ईश्वरप्राज्ञ है, तहां समष्टि अज्ञान उपाधिकी दृष्टिते चेतनमें ईश्वरता प्रतीत होवै नहीं, और व्यष्टिअज्ञान उपाधिकी दृष्टिते चेतनमें प्राज्ञता प्रतीत होवै है अज्ञान उपाधिकी दृष्टिविना ईश्वरता और प्राज्ञता प्रतीत होवै नहीं जो वस्तु जाकेविषे अन्यकी दृष्टिते प्रतीत होवै, सो ताकेविषे परमार्थसे होवै नहीं, जो जाका रूप अन्यकी दृष्टिविना प्रतीत होवै सो ताका परमार्थरूप होवै है. जैसे एक पुरुषमें पिताकी दृष्टिते पुत्रता, और दादाकी दृष्टिते पौत्रतादिकरूप भान होवै है, सो परमार्थसे नहीं पुरुषका पिंडही परमार्थ है. तैसे स्थूल सूक्ष्मकारणउपाधिकी दृष्टिते जो विराट्‌विश्वादिकरूपभान होवै है सो मिथ्या है, चेतनमात्रही सत्य है. सो चेतन सर्वभेदरहित है. काहेते, १ विराट् और विश्वका जो भेद है, सो उपाधि तौ दोनोंकी यद्यपि स्थूल है, तथापि समष्टिउपाधि विराट्की और व्यष्टिउपाधि विश्वकी सो समष्टिव्यष्टिउपाधिते तिनका भेद है; याते स्वरूपते भेद नहीं. तैसे

तैजसका हिरण्यगर्भते भेद भी समष्टिव्यष्टि उपाधिते है, स्वरूपते नहीं. तैसे ईश्वर ते प्राज्ञका भेद भी समष्टिव्यष्टिउपाधिके भेदते है; स्वरूपते नहीं. १ऐसे प्राज्ञका ईश्वरते अभेद है, और २ तैजसका हिरण्यगर्भते अभेद है ३ तथा विश्वका विराट्ते अभेद है या प्रकारते स्थूलउपाधिवालेका सूक्ष्मउपाधिवालेते, वा कारण उपाधिवालेते भेद नहीं. काहेते स्थूलसूक्ष्मकारणउपाधिकी दृष्टि त्यागेते चेतनस्वरूपमें किसी प्रकारका भेद प्रतीत होवै नहीं. और अनात्मासे भी चेतनका भेद नहीं. काहेते अनात्मदेहादिक अविद्याकालमें प्रतीत होवैं हैं. परमार्थसे नहीं. तिनका भी चेतनसे भेद बनै नहीं. ऐसे सर्वभेदरहित. असंग निर्विकार, नित्यमुक्त, ब्रह्मरूप आत्मा ओंकारका लक्ष्य स्वयंप्रकाशरूप तिस उपासककूं भान होवै है. ताते हिरण्यगर्भलोकवासीकूं संसार होवै नहीं.

यद्यपि महावाक्यके विवेक विना ज्ञान होवे नहीं, तथापि ओंकारका विवेकही महावाक्यका विवेक है १ स्थूलउपाधिसहित चेतन अकारका वाच्य है, स्थूलउपाधिको त्यागिके चेतनमात्र अकारका लक्ष्य, २ तैसे सूक्ष्मउपाधिसहित चेतन उकारका वाच्य है; सूक्ष्मउपाधिको त्यागिके चेतनमात्र उकारका लक्ष्य है

३ कारणउपाधिसहित चेतन मकारका वाच्य है कारण उपाधिकूं त्यागिके चेतनमात्र मकारका लक्ष्य है. इसरीतिसे १ उपाधिसहित विश्वादिक अकारादिमात्राके वाच्य हैं, और २ उपाधिरहित चेतन सर्वमात्राके लक्ष्य हैं. १ तैसे नामरूप सकलउपाधिसहित चेतन ओंकारवर्णका वाच्य है. और२ नामरूप सकलउपाधिरहित चेतन ओंकार वर्णका लक्ष्य है. ऐसे ओंकारका और महावाक्यका अर्थ एकही है. याते ओंकारके विवेकते अद्वैतज्ञान होवै है. ऐसे आचार्यके मुखते श्रवणकरिके अदृष्टि नाम जो मध्यमशिष्य, सो उपासनामें प्रवृत्त होयके ज्ञानद्वारा परमपुरुषार्थ मोक्षकूं प्राप्त हुवा ॥ १६८॥

निर्गुणउपासनामें जाका अधिकार नहीं, ताको कर्तव्य कहैं हैं।

सवैया-छन्द ।

जो यह निर्गुणध्यान न ह्वै तौ, सगुणईश करि मनकोधाम
सगुणउपासनहू नहिं ह्वैतौ, करि निष्कामकर्म भजि राम॥
जो निष्कामकर्म हू नहिं ह्वै, तौ करिये शुभकर्म सकाम ।
जो सकामकर्महुनहिं होवै, तौ शठ बारबार मरिजाम १६९

दोहा ।

ओंकारको अर्थ लखि, भयो कृतार्थ अदृष्टि ॥

पढै जु याहि तरंग तिहिं, दादू करहु सुदृष्टि ॥ १७० ॥

इतिश्री गुरुवेदादिव्यावहारिकप्रतिपादनमध्यमाधिकारीसाधननिरूपणं नाम पंचमस्तरंगः समाप्तः ॥ ५ ॥

षष्ठस्तरंगः ६.

अथ गुरुवेदादिसाधनमिथ्यावर्णन और-कनिष्ठअधिकारीको उपदेशका प्रकार ।

दोहा ।

चेतन भिन्न अनात्म सब, मिथ्या स्वप्नसमान ॥
यों सुनि बोल्यो तीसरो, तर्कदृष्टि मतिमान ॥ १ ॥

टीका--१ चतुर्थतरंगमें उत्तम अधिकारीकूं उपदेशका प्रकार कह्या. पंचमतरंगमें मध्यम अधिकारीकूं कह्या.या तरंगमें कनिष्ठ अधिकारीकूं उपदेशका प्रकार कहैं हैं जाकूं शंका बहुत उपजे, ताकी यद्यपि बुद्धि तीव्र होवै है, तथापि वह कनिष्ठ अधिकारी है. यह तरंग युक्तिप्रधान है, याते सुने अर्थमें जाकूं कुतर्क उपजे, ताकूं इस तरंगका उपयोग है. कुतर्क दूषितबुद्धि कनिष्ठअधिकारी होवै है.ताकूं उपदेशका प्रकार या तरंगमें है.पहले तरंगमें प्रणव उपासना और जगत्की उत्पत्तिनिरूपणसे पूर्व यह कह्याः--जो चेतनसे भिन्न अज्ञान और ताका कार्य अनात्म कहिये है. सो अनात्म

पदार्थ सारे स्वप्नकी न्याई मिथ्या हैं. इस बातकूं सुनि के दोनों भाइयोंकूं प्रश्नते उपराम देखिके तर्कदृष्टि प्रश्न करै हैः—

दोहा।

पहिली जानै वस्तुकी, स्मृती स्वप्नमें होय ॥
जाग्रतमें अज्ञात अति, ताहि लखै नहिं कोय ॥ २॥

टीका--पूर्व जो अत्यंतअज्ञातपदार्थ है, ताका स्वप्नमें ज्ञान होवे नहीं. किंतु जाग्रत्में जाका अनुभव ज्ञान होवे ताकी स्वप्नमें स्मृति होवै है याते स्मृति ज्ञानके विषय जाग्रत्के पदार्थ सत्य होनेते तिनका स्वप्नमें स्मृतिरूप ज्ञानभी सत्य है, याते स्वप्नके दृष्टांतसे जाग्रत्के पदार्थनकूं मिथ्या कहना संभवे नहीं.

अन्यप्रकारते स्वप्नज्ञानके विषय पदार्थनकूं सत्यता प्रतिपादन करैं हैं—

दोहा।

अथवा स्थूलहिं लिंग तजि, बाहिर देखत जाय ॥
गिरि समुद्रवनवाजिगज, सो मिथ्या किहिं भाय ३॥

टीका–अथवा कहिये और प्रकारते स्वप्नका ज्ञान और ताके विषय पदार्थ सत्य हैं, मिथ्या नहीं काहेते स्वप्न अवस्थामें स्थूलशरीरकूं त्यागिके लिंगशरीर

बाहिर निकसिके साचे गिरिसमुद्रादिकनकूं देखै है, याते स्वप्न मिथ्या नहीं उत्तर-

दोहा।

यह हस्ती आगे खरो, ऐसो होवे ज्ञान।
स्वप्नमाहिं स्मृतिरूप सो, कैसे होय सुजान॥४॥

टीका-१ पूर्वकालसंबंधीपदार्थका ज्ञानस्मृति होवै है जैसे पूर्व देखे हस्तीकी "सो हस्ती" ऐसी स्मृति होवै है और २"यह हस्ती सन्मुख स्थित है" ऐसा ज्ञान स्मृति नहीं किंतु प्रत्यक्ष कहिये है. और स्वप्नमें तौ "यह हस्ती आगे स्थित है, यह पर्वत है, यह नदी है;" ऐसा ज्ञान होवै है, याते जाग्रतमें देखे पदार्थनकी स्वप्नमें स्मृति नहीं, किंतु हस्तीआदिकनका प्रत्यक्ष ज्ञान होवे है.

और जो ऐसे कहैं:-"जाग्रत्में जाने पदार्थनकाही स्वप्नमें ज्ञान होवै है, अज्ञातपदार्थका ज्ञान नहीं होवे, याते जाग्रत् पदार्थनके ज्ञानके संस्कारनते स्वप्नके ज्ञानकी उत्पत्ति होवै है संस्कारजन्य ज्ञान स्मृति कहिये है. याते स्वप्नका ज्ञान स्मृतिरूप है." सो शंका बने नहीं. काहेते, प्रत्यक्षज्ञान दोप्रकारका होवै है. १ एक अभिज्ञारूप प्रत्यक्ष होवै है. २ दूसरा रूपज्ञाप्रत्यभि प्रत्यक्ष होवै है. १ केवल इंद्रियसंबंधते

जो ज्ञान होवै सो अभिज्ञाप्रत्यक्ष कहिये है. जैसे नेत्रके संबंधते हस्तीका "यह हस्ती है" ऐसा ज्ञान अभिज्ञाप्रत्यक्ष है. और पूर्व ज्ञानके संस्कारनते और इंद्रियसंबंधते जो ज्ञान होवे सो प्रत्यभिज्ञाप्रत्यक्ष कहिये है. जैसे पूर्वदेखे हस्तीका " सो हस्ती यह है" ऐसा ज्ञान होवे, सो प्रत्यभिज्ञाप्रत्यक्ष कहिये है, तहां पूर्व हस्तीके ज्ञानके संस्कार और हस्तीसे नेत्रका संबंध, प्रत्यभिज्ञाप्रत्यक्षका हेतु है. याते " संस्कारजन्य ज्ञान स्मृतिरूपही होवै है, यह नियम नहीं. किंतु प्रत्यभिज्ञाप्रत्यक्ष भी संस्कारजन्य होवै है. परंतु इंद्रियसंबंध विना केवलसंस्कारजन्य ज्ञान होवै, सो स्मृतिज्ञान कहिये है. १ स्वप्नमें हस्ती आदिकनका ज्ञान केवलसंस्कारजन्य नहीं किंतु निद्रारूप दोषजन्य है. और हस्ती आदिकनकी न्याई स्वप्नमें कल्पितइंद्रिय भी हैं. याते इंद्रियजन्य हैं यद्यपि स्वप्नके पदार्थ साक्षीभाष्य हैं, इंद्रियजन्य ज्ञानके विषय नहीं, तथापि अविवेकीकी दृष्टिते स्वप्नका ज्ञान इंद्रियजन्यकहिये है. इसरीतिसे स्वप्नका ज्ञान जाग्रत्‌के पदार्थनकी स्मृति नहीं. और २ निद्रासे जागिके पुरुष ऐसे कहै है:"–मैं स्वप्नमें हस्ति आदिकनकूं देखता भया" जो हस्ति आदिकनकी स्वप्नमें स्मृति होवै

तौ जागिके ऐसा कह्या चाहिये" मैं स्वप्नमें हस्ती-आदिकनकूं स्मरण करता भया" ऐसे कोई नहीं कहता, याते जाग्रत्‌के पदार्थनकी स्वप्नमें स्मृति नहीं. और ३ "जाग्रत्‌में जो देखे सुने पदार्थ हैं, तिनकाही स्वप्नमें ज्ञान होवै है" यह नियम नहीं. किंतु जाग्रत्‌में अज्ञातपदार्थनका ही स्वप्नमें ज्ञान होवै है, कदाचित् स्वप्नमें ऐसे विलक्षण पदार्थ प्रतीत होवैं हैं, जो सारे जन्मविषे कभी देखे सुने होवैं नहीं, याते तिनका ज्ञान स्मृति नहीं.

४ यद्यपि "इस जन्मके पदार्थनके ज्ञानके संस्कारही स्मृतिके हेतु हैं" यह नियम नहीं. किंतु अन्य-जन्मके ज्ञानके संस्कारनते भी स्मृति होवै. काहेते, अनूकूलज्ञानते प्रवृत्ति होवै है, अनूकूलज्ञानबिना प्रवृत्ति होवै नहीं. याते बालककी स्तनपानमें जो प्रथमप्रवृत्ति होवै है, ताका हेतु बालककूं भी "स्तनपान मेरे अनुकूल है" ऐसा ज्ञान होवै है. तहां अन्यजन्मविषे जो स्तनपानमें अनूकूलता अनुभव करी है, ताके संस्कारनते बालककूं प्रथम अनुकूलताकी स्मृत्ति होवै है. याते जन्मांतरके ज्ञानसंस्कारनते भी स्मृति होवै है. तैसे इस जन्म विषे अज्ञातपदार्थनकी भी अन्य जन्मके ज्ञानके संस्कारनते स्व-

प्नविषे स्मृति संभवै है. तथापि कोई पदार्थ स्वप्नमें ऐसे प्रतीत होवैं हैं; जिनका जाग्रत्में किसी जन्मविषे ज्ञान संभवै नहीं. जैसे अपने मस्तक छेदनकूं आप नेत्रनसे स्वप्नमें देखै है, तहां अपना मस्तकछेदन नेत्रसे जाग्रत्में देखे नहीं. याते जाग्रत् पदार्थनके ज्ञानके संस्कारनते स्वप्नमें स्मृति नहीं. ९ ऐसे स्वप्नकूं स्मृतिरूपखंडनमें अनेकयुक्ति ग्रंथकारोंने कही हैं, परंतु स्वप्नकूं स्मृति माननेमें पूर्वोक्त दूषण अतिप्रबल है. जो स्मृति ज्ञानका विषय सन्मुख प्रतीत होवै नहीं और स्वप्नके हस्ती आदिक सन्मुख प्रतीत स्वप्नकालमें होवैं हैं यातें हस्ती आदिकनकी स्वप्नमें स्मृति नहीं "लिंगशरीर बाहिर निकसिके साचे गिरिसमुद्रादिकनकूं देखे है. याका उत्तर—

दोहा।

बाहिर लिंग जु नीकसे, देह अमंगल होय ॥
प्राणसहित सुन्दरलसै, याते लिंगहि जोय ॥

टीका—जो स्थूलशरीरते निकसिके लिंगशरीर बाहिर साचे गिरिसमुद्रादिकनको देखै; तौ लिंगशरीरके निकसनेते जैसे मरण अवस्थामें शरीर भयंकररूप प्रतीत होवै है, तैसे, स्वप्नअवस्थाविषे भी लिंगके अभावते स्थूलशरीर अमंगल कहिये भयंकर हुवा चाहिये, तैसे

प्राणरहित मृतकसमान हुआ चाहिये और स्वप्नअव-
स्थामें ऐसा होवै नहीं, किंतु स्वप्नअवस्थामें स्थूलशरीर
प्राणसहित होवै है. और जाग्रत्की न्याई सुंदर कहिये
मंगलरूप होवै है, यातें स्थूलशरीरके बाहिर लिंगशरीर
स्वप्नावस्थामें निकसै नहीं और जो ऐसे कहैं—स्व-
प्नअवस्थामें प्राण तो जावैं नहीं, किंतु अंतःकरण
और इंद्रिय बाहिर पर्वतादिकनमें जायके तिनकूं
देखैं हैं. बाहिर नहीं जावै यातें स्थूलशरीर मरण-
अवस्थाके समान भयंकर होवै नहीं. और प्राणका
बाहिर जानेका कछु प्रयोजन भी नहीं काहेतें.
प्राणमें ज्ञानशक्ति नहीं, किन्तु क्रियाशक्ति है; यातैं
बाहिरके पदार्थनके ज्ञानकी जिनमें सामर्थ्य हैं, सोई
जावै हैं ज्ञानशक्ति अंतःकरण और ज्ञान इंद्रियनमें है
प्राणकी न्याई कर्मइंद्रियनमें भी ज्ञानशक्ति नहीं
क्रियाशक्ति है. यातैं प्राण और कर्मइंद्रिय शरीरमें रहैं
हैं. यातैं मरणनिमित्तते दाहादिकनकी रक्षा होवै है.
और बाहिर अंतःकरण ज्ञानइंद्रिय जावै है. साँचे
पर्वतादिकनकूं देखिके प्राण और कर्मेंद्रियनके समीप
आवै है, सो भी बनै नहीं काहेतैं १ स्थूलसूक्ष्मसमा-
जमें सर्वका स्वामी प्राण है. प्राणबिना शरीरकूं देखिके
क्षणमात्र भी रहने नहीं देते. बाहिर लेजावै हैं, दाहकरैहैं

स्पर्शते स्नान करै हैं. यातैं स्थूलशरीरका सार प्राण है. तैसे सूक्ष्मशरीरमें भी प्रधान प्राण है.

प्राणइंद्रियादिक परस्पर श्रेष्ठताविवाद करिके प्रजापतिके समीप जायके कह्या; हे भगवन् ! हमारेविषे कौन श्रेष्ठ है ? तब प्रजापतिने कह्या, तुम सारे स्थूल शरीरमें प्रवेश करिके एक एक निकसते जावो, जिसके निकसेते शरीर अमंगलरूप होइके गिरि पडै सो तुम्हारेमें श्रेष्ठ है, प्रजापतिके वचनतैं नेत्रादिकइंद्रियनते एक एकके अभावते अंधादिरूप शरीरकी स्थिति देखी और प्राणके निकसनेका उद्योग करतेही शरीर गिरने लगा, तब सर्वते यह निश्चय किया, हमारा सर्वका स्वामी प्राण है. इसकारणतैं जितने शरीरमें प्राण रहैं, उतने रहैं हैं शरीरतैं प्राणके निकसतेही सारे निकस जावैं हैं. यातैं सूक्ष्मसमाजका राजाकी न्याईं प्राणही प्रधान है. ताके निकसे विना अंतःकरण ज्ञानइंद्रिय कोई बाहिर निकसे नहीं, २ किंवा,

अंतःकरण और ज्ञानइंद्रिय भूतनके सत्त्वगुणनके कार्य हैं तिनमें ज्ञानशक्ति है क्रियाशक्ति नहीं, प्राणमें क्रियाशक्ति है, ताके बलतैं मरणसमय लिंगशरीर इस स्थूलकूं त्यागिके लोकांतरकूंजावै है, और प्राणकेही बलतैं इंद्रियद्वारा अंतःकरणकी वृत्ति बाहिर घटादिक-

नके समीप जावै है,और प्राणके सहारे विना अंतः-करणादिकनका बाहिर गमन संभवै नहीं इसीकारणतैं योगशास्त्रमें कहा है:-" प्राण निरोधविना मनका निरोध होवै नहीं.प्राणके संचारतैं मनका संचार होवै है, प्राणनिरोधतैं मनका निरोध होवै है," यातैं मनका निरोधरूप जो राजयोग, ताकी जिसकूं इच्छा होवै सो प्राणनिरोध रूप हठयोगका अनुष्ठान करै, यातैं भी प्राणके अधीन अंतःकरणका गमन है,ताके निकसे विना अंतःकरण ज्ञानइंद्रिय बाहिर निकसैनहीं.और ३ स्वप्नअवस्थामें स्थूलशरीर प्राण समेत प्रतीत होवै है. यातैं " बाहिर जायके सांचे पदार्थनकूं स्वप्नमें देखै है" यह संभवै नहीं ४ किंवा-

कोई पुरुष अपने संबंधीसे स्वप्नमें मिलिके जो व्यवहार करै, तौ जागिके वह संबंधी मिले, तब ऐसे नहीं कहता,कि रात्रिको हम मिले थे.और अमुक व्यवहार कियाथा. और पूर्वपक्षकी रीतिसे तो बाहिर निकसिके ता संबंधीसे मिलिके व्यवहार साचा किया है ता मिलनेका और व्यवहारका ज्ञान संबंधीकूं चाहिये; औरमिले जब संबंधीने कह्या चाहिये, और सिद्धांतमें तो संबंधी और ताका मिलाप सब अंतरही कल्पितहै. ५ किंवा,

जो बाहिर जायके सांचे पदार्थनकूं देखे,तो रात्रिमें सोया पुरुष हरिद्वारमें मध्याह्नके सूर्यते तपेमहल गंगाते पूर्व, और नीलपर्वत गंगाते पश्चिम देखै है.तहां रात्रिमें मध्याह्नका सूर्य नहीं गंगाते पूर्वदिशामें हरिद्वारपुरी नहीं, गंगाते पश्चिम नीलपर्वत नहीं. याते भी सांचे पदार्थनका देखना स्वप्नमें असंभव है. और जाग्रत्की स्मृति अथवा ईश्वरकृत पर्वतादिकनका बाहिर निकसिके स्वप्नमें ज्ञान होवै है, इन दोनों पक्षनका निराकरण किया है,

सिद्धांत—कहै हैं।

दोहा।

याते अंतर ऊपजे, त्रिपुटी सकल समाज ॥
वेद कहत या अ-[illegible]कूं, सब प्रमाण शिरताज ॥६॥

टीका—जाग्रत्के पदार्थनकी स्मृति, और बाहिरि लिंगका निकसना तौ संभवे नहीं. तथापि जाग्रत्की न्याई ज्ञाता ज्ञान ज्ञेय त्रिपुटी स्वप्नमें प्रतीत होवै है, याते कंठकी नाडीके अंतरही सब कुछ उत्पन्न होवै है. सब प्रमाणका शिरताज कहिये प्रधान जो वेद है, ताने यह कह्या है:– उपनिषद्में यह प्रसंग है:–"जाग्रत्के पदार्थ स्वप्नमें नहीं प्रतीत होवैं हैं, किंतु रथ और घोडे तथा मार्ग, तैसे रथमें बैठनेवाले स्वप्नमें नवीन उत्पन्न होवैं हैं" याते पर्वत

समुद्र नदी वन ग्राम पुरी सूर्य चंद्र जो कुछ स्वप्नमें दीखै है, सो नवीन उपजै है. जो स्वप्नमें पर्वतादिक नहीं होवैं; तौ तिनका प्रत्यक्षज्ञान स्वप्नमें होवै है सो नहीं हुवा चाहिये; काहेते, विषयते इंद्रियका संबंध, वा अंतःकरणकी वृत्तिका संबंध, प्रत्यक्षज्ञानका हेतु है. याते पर्वतादिक विषय, और तिनके ज्ञानके साधन इंद्रिय तथा अंतःकरण सारे अन्तर उत्पन्न होवैं हैं.

यद्यपि स्वप्नके पदार्थ शुक्तिरजतादिकनकी न्याईं साक्षी भास्य हैं, अंतःकरण इंद्रियनका स्वप्नके ज्ञानमें उपयोग नहीं, याते ज्ञेय जो पर्वतादिक हैं, तिनकीही उत्पत्ति स्वप्नमें माननी योग्य है, ज्ञाता ज्ञान और इंद्रियनकी उत्पत्ति माननी योग्य नहीं. १ तथापि जैसे स्वप्नमें पर्वतादिक प्रतीत होवैं हैं तैसे इंद्रिय अंतःकरण प्राणसहित स्थूल शरीर भी स्वप्नमें प्रतीत होवै है, याते तिनकी भी उत्पत्ति माननी चाहिये. २ किंवा,

स्वप्नके पदार्थनविषे नेत्रादिकनकी विषयता भान होवै है. सो व्यावहारिक नेत्रादिकनकी विषयता तौ स्वप्नके प्रातिभासिकपदार्थनविषे बनै नहीं. काहेते, समसत्तावाले पदार्थही आपसमें साधकबाधक होवैं हैं. यह पञ्चमतरंगमें प्रतिपादन करा है. याते व्यावहारिक-नेत्रादिक शरीरमें हैं भी, तिनतें स्वप्नके पदार्थनकी

विषमसत्ता होनेते तिनके ज्ञानकी विषयता स्वप्नके पर्वतादिकनकूं बनै नहीं. ३ किंवा व्यावहारिक जो इंद्रिय हैं, सो अपने अपने गोलकोंकूं त्यागिके कार्य करनेमें समर्थ होवैं नहीं. और स्वप्नअवस्थामें हस्तपाद वाक्के गोलक तौ निश्चल दूसरेकूं दीखे हैं, और हस्तमें द्रव्य ग्रहण करिके पुकारता धावन करैहै, याते स्वप्नमें इंद्रियनकी उत्पत्ति अवश्य मानी चाहिये. ४ तैसे सुखदुःख और तिनका ज्ञान,तथा सुखदुःख-ज्ञानका आश्रय प्रमाता स्वप्नमें प्रतीत होवै है. और बिनाहुये पदार्थकी प्रतीति होवै नहीं, याते सारा त्रिपुटीसमाज स्वप्नमें उत्पन्न होवै है.

अनिर्वचनीयख्यातिकी यह रीति हैः—जितने भ्रम-ज्ञान हैं तिनके विषय सारे अनिर्वचनीय उत्पन्न होवैं हैं. विषयबिना कोई ज्ञान होवै नहीं, यह सिद्धांत है। और शास्त्रनके मतमें तो अन्य पदार्थनका अन्यरूपते भान होवै, सो भ्रम कहिये है. सिद्धांतमें तौ जैसा पदार्थ होवै तैसाही ज्ञान होवै है. याते भ्रमस्थलमें भी विषयकी उत्पत्ति अवश्य होवै है. विषयविना ज्ञान होवे नहीं. इसरीतिसे स्वप्नमें त्रिपुटीकी प्रतीति होनेते सारा समाज उत्पन्न होवै है.

स्वप्नके उत्पत्तिकी शंका करिके अन्तःकरण वा अविद्याके परिणाम और चेतनके विवर्त स्वप्नकीसिद्धि।

याकेविषे ऐसी शंका होवे हैः—स्वप्नके जो पदार्थ प्रतीत होवैं हैं, तिनकी उत्पत्ति अंगीकार होवे, तो जैसे स्वप्नदृष्टांतसे जाग्रत्के पदार्थ मिथ्या सिद्धांतमें कहे हैं, तैसे जाग्रत्के पदार्थनकी न्याईं उत्पत्तिवाले होनेते स्वप्नके पदार्थही सत्य हुये चाहियें. और स्वप्नके माहिं पदार्थनकी उत्पत्ति नहिं माने तब यह दोष नहीं. काहेते, जाग्रत्तके पदार्थ तौ उत्पन्न हुए प्रतीत होवैं हैं, और स्वप्नमें पदार्थ बिनाहुये प्रतीत होवैं हैं याते स्वप्नमें बिना हुए पदार्थनका ज्ञान भ्रमरूप होवै है. तिनकी उत्पत्ति माननी योग्य नहीं, ता शंकाका समाधान-

दोहा।

साधनसामग्री बिना, उपजै झूठ सु होय ॥
बिन सामग्री ऊपजै, यों तिहि मिथ्या जोय ॥

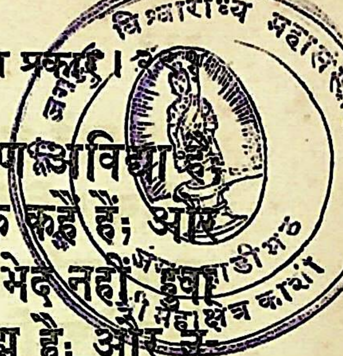
टीका–१ जिस वस्तुकी उत्पत्तिमें जितना देशकालादि सामग्री, साधन कहिये कारण है, उतनी सामग्रीबिना उपजै सो मिथ्या कहिये है. और स्वप्नके हस्ती आदिकनकी उत्पत्तिके योग्य देशकाल है नहीं. बहुत कालमें और बहुतदेशमें उपजने योग्य हस्ती आदिक क्षणमात्रकालमें सूक्ष्मकंठदेशमें उपजै हैं, याते मिथ्या हैं

२ यद्यपि स्वप्नअवस्थामें कालदेश भी अधिक प्रतीत होवै है, तथापि अन्यपदार्थनकी न्याईं स्वप्नमें अधिककाल और अधिकदेश भी अनिर्वचनीय प्रातिभासिक उत्पन्न होवै है. काहेते, विषयविना प्रत्यक्षज्ञान होवे नहीं और स्वप्नमें अधिकदेशकालका ज्ञान होवै है, व्यावहारिकदेशकाल न्यून हैं, याते प्रातिभासिक उत्पन्न होवैं हैं परंतु स्वप्नअवस्थामें उपजे जो प्रातिभासिकदेशकाल, सो स्वप्नअवस्थाके हस्ती आदिकनके कारण नहीं. काहेतें, कारण होवे सो पहली उपजैहै और कार्य पीछे उपजे है. स्वप्नके देशकाल और हस्ती आदिक एकही समयमें होवैं हैं, याते तिनका कार्यकारणभाव बनै नहीं. और व्यावहारिक देशकाल न्यून हैं; हस्ती आदिकनके योग्य नहीं, याते देशकालरूप सामग्रीबिना उपजें हैं. याते स्वप्नके पदार्थ मिथ्या हैं. ३ और भी मातासे आदिलेके हस्ती आदिकनकी सामग्री स्वप्नमें नहीं है. यद्यपि स्वप्नमें प्राणी पदार्थनके माता, पिता भी प्रतीत होवैं हैं, तथापि स्वप्नके माता, पिता, पुत्रकी उत्पत्तिके कारण नहीं काहेते; माता, पिता और पुत्र, एकक्षणमें साथ उपजें हैं याते तिनका कार्यकारणभाव नहीं. जा निद्रासहित अविद्यासे स्वप्नके पदार्थ उपजें हैं, सोई अविद्या तिन

पदार्थनविषे मातापना पितापना और पुत्रपना उपजावैं हैं. इस रीतिसे स्वप्नके पदार्थनकी उत्पत्तिमें और कोई सामग्री नहीं किंतु अविद्याही निद्रारूप दोषसहित कारण है जो दोषसहित अविद्यासे जन्य होवे, सो शुक्तिरजतकी न्याई मिथ्या होवै है. याते स्वप्नके पदार्थ सत्य नहीं, मिथ्या हैं तिनका उपादानकारण अंतःकरण है, अथवा साक्षात् अविद्याही तिनका उपादानकारण है. १ पहले पक्षमें साक्षीचेतन स्वप्नका अधिष्ठान है, और २ दूसरे पक्षमें ब्रह्म चेतन स्वप्नका अधिष्ठान है.इसरीतिसे अंतःकरणका अथवा अविद्याका परिणाम, और चेतनका विवर्त स्वप्न है.

याके विषे ऐसी शंका होवै हैः—दूसरे पक्षमें ब्रह्म चेतनस्वप्नका अधिष्ठान कह्या,और अविद्या उपादान कारण कही तहां अधिष्ठानज्ञानसे कल्पितकी निवृत्ति होवै है और स्वप्नका अधिष्ठान ब्रह्म है, याते ब्रह्मज्ञान बिना अज्ञानीकूं जागरणमें स्वप्नकी निवृत्ति नहीं हुई चाहिये.

अन्य शंका—जैसे स्वप्नका अधिष्ठान ब्रह्म, और उपादानकारण अविद्या है, तैसे वेदांतसिद्धांतमें जाग्रतके व्यावहारिक पदार्थनका



भी अधिष्ठान ब्रह्म है, औ उपादानकारण अविद्या है; याते १ जाग्रत्के पदार्थनकूं व्यावहारिक कहैं हैं; और २ स्वप्नकूं प्रातिभासिक कहैं हैं, ऐसा भेद नहीं, हुया चाहिये. काहेते, दोनोंका अधिष्ठान ब्रह्म है; और उपादानकारण अविद्या है याते १ जाग्रत् स्वप्न दोनों व्यावहारिक हुये चाहियें.२ अथवा दोनूं प्रातिभासिक हुये चाहियें.

सो दोनों शंका बने नहीं, काहेतैं, प्रथमशंकाका यह समाधान है–निवृत्ति दोप्रकारकी होवै है, यह पूर्व ख्याति निरूपणमें कही है.१ कारणसहित कार्यका विनाशरूप अत्यंत निवृत्ति तो स्वप्नकी जाग्रत्में ब्रह्मज्ञानबिना बने नहीं,२ परंतु दंडके प्रहारते जैसे घटका मृत्तिकामें लय होवै है; तैसे स्वप्नका हेतु जो निद्रादोष ताके नाशते, वा स्वप्नकी विरोधि जाग्रत्की उत्पत्तिते अविद्यामें लयरूप निवृत्ति स्वप्नकी ब्रह्मज्ञानबिना संभवै है.

और जो शंका करी–"जाग्रत् स्वप्न दोनों समान हुये चाहियें" सो बने नहीं काहेते, १ जाग्रत्के देहादिक पदार्थकी उत्पत्तिमें तो अन्यदोषरहित केवल अनादि अविद्याही उपादानकारण है, और २ स्वप्नके पदार्थनमें तो सादिनिद्रादोष भी अविद्याका सहायक

है. १ याते अन्यदोषरहित केवल अविद्याजन्य व्यावहारिक कहियें हैं. और २ सादिदोषसहित अविद्याजन्य प्रातिभासिक कहियें हैं. १ स्वप्नके पदार्थ निद्रादोषसहित अविद्याजन्य होनेते प्रातिभासिक हैं और २ जाग्रत्के पदार्थ अन्यदोषरहित अविद्याजन्य होनेते व्यावहारिक कहियें हैं. इसरीतिसे स्वप्नके पदार्थनमें जाग्रत्पदार्थनते विलक्षणता है, परंतु यह संपूर्ण तीनप्रकारकी सत्ता मानिके स्थूलदृष्टिसे कही है, विचारदृष्टिसे तौ १ तीनिप्रकारकी सत्ता बनै नहीं. और २ जाग्रत् स्वप्नकी परस्पर विलक्षणता भी बनै नहीं.

यद्यपि वेदांतपरिभाषादिक ग्रंथनमें पूर्व प्रकारते व्यावहारिक और प्रातिभासिकपदार्थनका भेद कह्या है. याते तीनि सत्ता मानी हैं. तैसे विद्यारण्यस्वामीने भी तीनि सत्ता मानी हैं. काहेते, यह प्रसंग तिन्होंने लिखा है दो प्रकारके देहादिक पदार्थ हैं, १ एक तौ ईश्वररचित हैं, सो बाह्य हैं, और दूसरे जीवके संकल्परचित हैं, सो मनोमय कहिये हैं, और अंतर हैं, तिन दोनोंमें २ जीवसंकल्पते रचित अंतर मनोमय साक्षीभास्य हैं. और ईश्वररचित बाह्य हैं, सो प्रमाता प्रमाणके विषय हैं और ३ अंतर मनोमय देहादिकही जीवकूं सुख दुःखके हेतु हैं; और बाह्य जो

ईश्वररचित हैं, सो सुखदुःखके हेतु नहीं, ४ याते मनोमयपदार्थनकी निवृत्ति मुमुक्षुकूं अपेक्षित है और बाह्यप्रपंच सुख दुःखका हेतु नहीं, याते ताकी निवृत्ति अपेक्षित नहीं. जैसे दोपुरुषनके दोपुत्र विदेशमें गये होवें, तिनमें एकका पुत्र मरिजावे, एकका जीवता होवे, सो जीवता पुत्र बडी विभूतिकूं प्राप्त होयके किसीपुरुषद्वारा अपने पिताकूं अपनी विभूतिप्राप्तिका और द्वितीयके मरणका समाचार भेजे, तहां समाचार सुनावनेवाला दुष्ट होवै, याते जीवते पुत्रके पिताकूं कहै तेरा पुत्र मरिगया और मरेपुत्रके पिताकूं कहै तेरा पुत्र शरीरते नीरोग है बड़ी विभूतिकूं प्राप्त हुवा है थोडेकालमें हस्तिआरूढ बडे समाजते आवैगा. ता वंचकवचनकूं सुनिके १ जीवते पुत्रका पिता रोवै है. बड़ेदुःखको अनुभव करै है, और मरे पुत्रका पिता बडे हर्षकूं प्राप्त होवे है. इसरीतिसे देशांतरविषे १ ईश्वररचित पुत्र जीवै है. तो भी मनोमयपुत्र मरिगया याते दुःख होवै है. ईश्वररचित जीवतेका सुख होवे नहीं २ तैसे दूसरेका ईश्वररचित पुत्र मरिगया है, ताका दुःख होवै नहीं मनोमय जीवै है ताका सुख होवै है, याते १ जीवसृष्टिही सुखदुःखकी हेतु है २ईश्वरसृष्टि सुखदुःखकी

हेतु नहीं. इसरीतिसे विद्यारण्यस्वामीने जीवसृष्टि दो प्रकारकी कही है तहां १ जीवसृष्टि प्रातिभासिक है और २ ईश्वरसृष्टि व्यावहारिक है, ऐसे और ग्रंथकारोंने भी सत्ता तीनिप्रकारकी कही है १ चेतनकी परमार्थसत्ता है, और चेतनसे भिन्न जडपदार्थनकी दो प्रकारकी सत्ता है. एक व्यावहारिकसत्ता और दूसरी प्रातिभासिकसत्ता है. २ सृष्टिके आदिकालमें ईश्वरसंकल्पते उपजे जो केवल अविद्याके कार्य, पंचभूत और तिनके कायकी व्यावहारिक सत्ता है ३ दोषसहित अविद्याके कार्य स्वप्न शुक्तिरजतादिकनकी प्रातिभासिकसत्ता है. इसरीतिसे १ जाग्रत्पदार्थनकी व्यावहारिकसत्ता और २ स्वप्नकी प्रातिभासिक सत्ता कही है;

तथापि अनात्मपदार्थनकी सर्वकी प्रातिभासिकही सत्ता है, याते दो प्रकारकीही सत्ता है. १ चेतनकी परमार्थ सत्ता है और २ चेतनसे भिन्न सकल अनात्माकी प्रतिभासिकही सत्ता है, जाग्रत् स्वप्नके पदार्थकी किंचित् मात्र भी विलक्षणता सिद्ध होवै नहीं. या उत्तमसिद्धांतकूं प्रतिपादन करैं हैं:—

चौपाई।

बिन सामग्री उपजत यातैं।स्वप्नसृष्टि सब मिथ्या तातैं॥
देशकालको लेशन जामैं ।सर्व जगत् उपजत है तामैं॥८॥

स्वप्नसमान झूठ जग जानहु। लेशसत्यताकूं मतिमानहु॥
जाग्रतमाहिं स्वप्न नहिं जैसे।स्वप्नमाहिं जाग्रत नहिं तैसे।

टीका—देशकालसामग्री विना स्वप्नके हस्तीपर्वतादिकउपजैहैं याते मिथ्या कहिये हैं तैसे आकाशादिक प्रपंचकी सृष्टि ब्रह्मते होवै है ता ब्रह्मविषे देशकालका लेश भी नहीं है. स्वप्नविषे हस्तीपर्वतादिकनके योग्य तौ देशकाल नहीं है, तथापि अल्पदेशकाल है, तैसे आकाशादिकनकी सृष्टिमें अल्पदेशकाल भी नहीं हैं काहेते, देशकालरहित परमात्मासे आकाशादिकनकी सृष्टि कही है. इसकारणते १ तैत्तिरीय श्रुतिमें आकाशादिकनकी क्रमते सृष्टि कही है, देशकालकी सृष्टि नहीं कही. और २ सूत्रकार भाष्यकारने भी देशकालकी सृष्टि नहीं कही. सृष्टि नाम उत्पत्तिका है. तहां तैत्तिरीय श्रुतिका और सूत्रकार भाष्यकारका यही अभिप्राय है:—आकाशादिक प्रपंचकी उत्पत्ति देशकालसामग्रीविना होवै है;याते आकाशादिक स्वप्नकी न्याईं मिथ्या है.

यद्यपि मधुसूदनस्वामीने देशकाल साक्षात् अविद्याके कार्य कहे हैं;याते मायाविशिष्टपरमात्मासे पहली मायाके परिणाम देश काल होवैं हैं. तिसते अनंतर आकाशादिकनकी उत्पत्ति होवै है. याते योग्यदेशकालते आकाशादिक प्रपंचकी उत्पत्ति संभवै है.

तथापि मधुसुदनस्वामीका यह अभिप्राय नहीं:—जो देशकाल प्रथम होवै है;और आकाशादिक उत्तर होवैं हैं. काहेते, १ अतीतकालमें होवे सो प्रथम और पूर्व कहिये है. और २ भविष्यकालमें होवे सो उत्तर कहिये है, जाकूं पाछे कहैं हैं. आकाशादिकनकी उत्पत्तिते प्रथम देश काल उपजैं हैं. या कहनेते आकाशादिकनकी उत्पत्तिकालते पूर्वकाल उपहितपरमात्मा देश कालका अधिष्ठान है; यह सिद्ध होवैगा याते देशकालकी उत्पत्तिमें पूर्वकालकी अपेक्षा होवेगी और कालकी उत्पत्तिविना पूर्वकाल असिद्ध है.याते आकाशादिक-नते पूर्वकालमें देशकालादिक होवै हैं, यह कहना बनै नहीं. किंतु; मधुसूदनस्वामीका यह अभिप्राय है:—१ जैसे भूत भौतिक प्रपंच प्रतीत होवै है तैसे देशकाल भी प्रतीत होवैं हैं और आत्मासे भिन्न कोई नित्य है नहीं. याते देशकाल नित्य नहीं. और विनाहुयेकी प्रतीति होवे नहीं. याते आकाशादिकनकी न्याई देशकालकी भी उत्पत्ति होवै है. सो देशकाल मायाके परिणाम हैं; और चेतनके विवर्त हैं, जो विवर्त होवे सो किसीका कारण होवे नहीं. याते आकाशादिक प्रपंचकी उत्पत्तिमें देशकालकूं कारणता बनै नहीं. २ किंवा, कारण प्रथम होवै है, कार्य उत्तर होवै है,

आकाशादिक प्रपंचते देशकाल प्रथम होवै है, यह कहना बनै नहीं, यह वार्ता नजदीक कहि आये हैं. याते भी देशकालकूं आकाशादिक प्रपंचकी कारणता बनै नहीं, किंतु स्वप्नके पिता पुत्रकी न्याई देशकालसहित आकाशादिक प्रपंच मायाविशिष्ट परमात्माते उत्पन्न होवै है. और कोई पदार्थ किसी देशमें किसी कालमें उपजे है, अन्यदेशमें अन्यकालमें नहीं उपजे है. इसरीतिसे सारे पदार्थ प्रलयकालमें नहीं उपजें हैं. सृष्टिकालमें उपजें हैं. याते देशकालकूं कारणता प्रतीति भी होवै है, तौ भी जा मायाते देशकालसहित प्रपंचकी उत्पत्ति होवै है, ता मायातेही देशकालमें कारणता, अन्यप्रपंचमें कार्यता, प्रतीत होवै है, और आकाशादि प्रपंचके देशकाल कारण नहीं याके विषे ऐसी शंका होवै है:–विनाहुये पदार्थनकी तौ प्रतीति होवे नहीं. और सिद्धांतमें अंगीकार नहीं. जो विनाहुयेकी प्रतीति मानैं; तौ १ असत्ख्यातिका अंगीकार होवेगा और विना हुये वंध्यापुत्र शशशृंगादिकनकी प्रतीति हुई चाहिये. याते विनाहुयेकी प्रतीति होवे नहीं. याते देशकालमें कारणता नहीं होवै, तौ देशकालमें सर्व पदार्थनकी कारणता मायाके बलतेभी प्रतीति नहीं हुई चाहिये. और कारणता

देशकालमें प्रतीत होवे है, याते. देशकाल सर्व प्रपंचके कारण हैं और जो सिद्धांती ऐसे कहैः—सर्वप्रपंचका कारण ब्रह्म है. ब्रह्मकी कारणता देश कालमें प्रतीति होवै है और देशकालमें कारणता नहीं, सो भी बनै नहीं, काहेते १ जैसे देशकालका अधिष्ठान ब्रह्म है, तैसे सर्व प्रपंचका अधिष्ठान ब्रह्म है, देशकालमेंही ब्रह्मकी कारणता प्रतीत होवै, अन्यमें नहीं, या कहनेमें कोई हेतु नहीं. याते अधिष्ठानब्रह्मकी कारणता देशकालमें प्रतीत होवे तो ब्रह्म सर्व प्रपंचका अधिष्ठान है, याते सर्वप्रपंचमें कारणता प्रतीत हुई चाहिये, किसीमें कारणता, किसीमें कार्यता, ऐसा भेद नहीं चाहिये, २ किंवा देशकालमें कारणता नहीं है और ब्रह्ममें कारणता है, सो ब्रह्मकी कारणता देश कालमें प्रतीत होवै या कहनेते अन्यथाख्यातिका अंगीकार होवेगा काहेते, अन्यवस्तुकी अन्यरूपते प्रतीतिकूं अन्यथाख्याति कहैं हैं.देश काल कारण नहीं,याते कारणते अन्य कारण है,तिनकी अन्य रूपते कहियै कारणरूपते प्रतीति माननेमें अन्यथाख्यातिका अंगीकार होवेगा;और सिद्धांतमें अन्यथाख्यातिका अंगीकार नहीं.जो या स्थानमें अन्यथाख्याति मानैं तो शुक्तिमें अनिर्वचनीयरूपकी

उत्पत्ति सिद्धांतमें मानी है, सो निष्फल होवेगी. काहेते अन्यथाख्यातिमें दो मत हैं:–एक तो अन्यदेशमें स्थित पदार्थकी अन्यदेशमें प्रतीति अन्यथाख्याति जैसे कांताकरमें स्थित रजतकी सन्मुख शुक्तिदेशमें प्रतीति अन्यथाख्याति अथवा अन्यपदार्थकी अन्यरूपते प्रतीति अन्यथाख्याति. जैसे शुक्तिकीही रजतरूपते प्रतीति अन्यथाख्याति. ऐसे सारे भ्रमस्थलमें अन्यथा-ख्यातिसे निर्वाह संभवैहै. अनिर्वचनीयरजतादिकनकी उत्पत्तिकथन असंगत होवेगा, और जो सिद्धांती ऐसे कहैं:–विषयके समानाकार ज्ञान होवै है. अन्यवस्तुका अन्यरूपते ज्ञान संभवै नहीं. याते रजताकारज्ञानका विषय भी अनिर्वचनीयरजत उत्पन्न होवै है. या अद्वैत सिद्धांतमें कारणते अन्य जो देश, काल, तिनविषे ब्रह्मकी कारणताका ज्ञान संभवै नहीं. याते देश कालमें कारणता जो प्रतीत होवै है, ताका विनाहुयेका अथवा ब्रह्ममें स्थितका भान संभवै नहीं, किंतु देश कालमेंही कारणता है; ताका भान होवै है. इसरीतिसे "आकाशादिक प्रपंचके कारण देशकाल नहीं" यह कथन असंगत है.

सो शंका बनै नहीं. काहेते ब्रह्मकी कारणता देश-कालमें प्रतीत होवै है, जैसे जपापुष्पसम्बन्धी स्फटिकमें

पुष्पकी रक्तता प्रतीत होवै है. अधिष्ठानकी सत्यता स्वप्नकालमें मिथ्या हस्तीपर्वतादिकनमें प्रतीत होवै है. तहां स्फटिकमें अनिर्वचनीयरक्तताकी उत्पत्तिका अंगीकार नहीं,किंतु पुष्पकी रक्तता स्फटिकमें प्रतीत होवैहै. याते श्वेत स्फटिककी रक्तरूपते प्रतीति होनेते रक्तताके ज्ञानमें अन्यथाख्यातिही मानीहै.तैसे स्वप्नमें मिथ्यापदार्थनविषै सत्यता प्रतीत होवै.तहां अनिर्वच-नीयसत्यता तिन पदार्थन विषे उत्पन्न होवैहै, यहकथन तो"सत्य, मिथ्या है," इस (व्याघातदोषवाले)वचनकी न्याई संभवै नहीं. और विनाहुयेकी प्रतीति होवै नहीं किंतु स्वप्नके अधिष्ठान चेतनकी सत्यता मिथ्या पदार्थनमें प्रतीत होवे है. यातें मिथ्यापदार्थनकी सत्यरूपते प्रतीति होनेते सत्यताके ज्ञानमें अन्यथा-ख्यातिही मानी है. तैसे अधिष्ठानब्रह्मकी कारणता देशकालमें अन्यथाख्यातिसे प्रतीत होवैहै. और-

जो ऐसे कहैं:-इतने स्थानमें अन्यथाख्याति मानें, तौ सारे भ्रममें अन्यथाख्यातिही मानी चाहिये. सो शंका बनै नहीं,काहेते शुक्तिरजतादिकनमें अन्यथाख्या-तिःमाननेमें यह दोष कह्या है:-विषयते विलक्षण ज्ञान बनै नहीं और जहां स्फटिकमें रक्तताका ज्ञान होवै, तहां रक्तपुष्पका स्फटिकते सम्बन्धहै. याते स्फटिका

संबन्धी पुष्पकी रक्तता स्फटिकमें प्रतीत होवै है. काहेते अंतःकरणकी वृत्ति जब रक्तपुष्पाकार होवै; ताही वृत्तिका विषय रक्तपुष्पसंबन्धी स्फटिक है, याते पुष्पकी रक्तता स्फटिकमें प्रतीत होवै है- और तैसे शुक्तिका तो रजतरूपते ज्ञान संभवै नहीं, काहेते, शुक्तिदेशमें अनिर्वचनीय तथा व्यावहारिकरजत तौ अन्यमतमें है नहीं, किंतु शुक्ति है ता शुक्तिके संबंधसे शुक्तिके समानाकारही अन्तःकरणकी वृत्ति होवेगी रजताकार अंतःकरणकी वृत्ति होवे नहीं. याते अविद्याका परिणाम चेतनका विवर्त अनिर्वचनीयरजत और ताका ज्ञान; दोनों उत्पन्न होवैं हैं. और स्फटिकमें रक्तता प्रतीत होवै, तहां वृत्तिका संबंध स्फटिक और रक्तपुष्प दोनोंसे होवै है. रक्तपुष्पके संबंधते रक्ताकारवृत्ति होवै है. ता वृत्तिका स्फटिकतेभी संबन्ध है और स्फटिकमें रक्तताकी छाया है. याते पुष्पका धर्म रक्तता, स्फटिकमें ताही वृत्तिका विषय है. इसरीतिसे १ जहां दो पदार्थनका संबंध है, तहां एकके धर्मकी दूसरेमें प्रतीति संभवै है, तहां अन्यथाख्यातिही संभवै है. २ जहां दोनों पदार्थनका संबंध नहीं, तहां अन्यथाख्याति नहीं, किंतु अनिर्वचनीयख्याति है, जैसे पुष्पसंबंधी स्फटिकमें पुष्पकी रक्तता प्रतीत होवै है तैसे स्वप्नके हस्तीपर्वतादिकनका भी

अधिष्ठानचेतनते संबन्ध है याते चेतनकी धर्मसत्यता भी चेतनसंबन्धी हस्तीपर्वतादिकनमें प्रतीति होवै है, सो अन्यथा ख्याति है तैसे अधिष्ठानचेतनका धर्मकारणता अधिष्ठानचेतन संबन्धी देशकालमें प्रतीतहोवै है

और जो पूर्व शंका करी "अधिष्ठान चेतनका संबन्ध सर्व प्रपंचते है, जो संबन्धीका धर्म अन्यथाख्यातिसे अन्यमें प्रतीत होवैं, तौ चेतनकी कारणता सर्वप्रपंचमें प्रतीत हुई चाहिये," सो शंका बनै नहीं काहेते, १ जैसे स्वप्नमें दो शरीर उत्पन्न होवै हैं, एक शरीर पितारूप प्रतीत होवे है और दूसरा शरीर पुत्ररूप प्रतीत होवै तहां दोनों शरीरनका स्वप्नके अधिष्ठानचेतनते संबन्ध भी है; तथापि पिता शरीरमें अधिष्ठान चेतनकी कारणता प्रतीत होवै है, और पुत्रशरीरमें कारणता प्रतीत होवै नहीं; किंतु पिताजन्य पुत्र है, इसरीतिसे पुत्रशरीरमें कार्यता प्रतीत होवै है इसरीतिसे यद्यपि अधिष्ठानचेतनसे संबंध तो सर्वका है, तथापि देशकालमें चेतनधर्म कारणताकी प्रतीति होवै है; औरनमें कार्यताकी प्रतीति होवै है. २ अथवा, प्यारा अधिष्ठानचेतन असंग है. सो किसीका परमार्थते कारण नहीं. मायामें आभास यद्यपि कारण है तथापि आभासका स्वरूप मिथ्या होवै है

जो आप ही मिथ्या होवै सो दूसरेका कारण बनै नहीं. याते परमात्मा विषे प्रपंचकी कारणता होवै, तो ताकी देशकालमें भ्रमते प्रतीत संभवै, सो परमात्माविषे कारणता है नहीं.परमात्मा कारणतादिक धर्मरहित असंग है.ताकी कारणतादेशकालमें प्रतीत होवै है; यह कहना संभवै नहीं किंतु मायाकृत अनिर्वचनीय देशकाल अनिर्वचनीय कारणतावाले होवैं हैं. और परमार्थ देशकाल कारण नहीं. जैसे पुत्रहीन पुरुष स्वप्नमें पुत्र पौत्र दोनुवांकूं देखे तहां पुत्र पौत्रशरीर अनिर्वचनीय होवै है,और पुत्रशरीरमें पौत्रशरीरकी अनिर्वचनीयकारणता होवै है. तहां परमार्थसे पुत्रशरीर और पौत्रशरीरका परस्पर कार्यकारणभाव नहीं होवै है. तैसे अनिर्वचनीयकारण देश काल प्रतीत होवै है, परमार्थसे देश काल और आकाशादिकप्रपंचका कार्यकारणभाव है नहीं इसरीतिसे देश काल सामग्रीविना जाग्रत्प्रपंचकी उत्पत्ति होवै है. याते स्वप्नकी न्याईं जाग्रत् भी मिथ्या है. और जैसे स्वप्नके स्त्री पुत्रादिक स्वप्नमें ही सुखदुःखके हेतु हैं जाग्रत्में तिनका अभाव है तैसे जाग्रत्के पदार्थनका स्वप्नमें अभाव होवै है दोनों सम हैं और जाग्रत्के पदार्थ ज्ञानके साथही होवैं हैं याते दूसरी जाग्रत्में रहैं नहीं ।

जो ऐसे कहैं-जाग्रत्से स्वप्न होयके फिरि जाग्रत् होवै तहां पहली जाग्रत्के जो पदार्थ हैं, सोई स्वप्नव्यवहित दूसरे जाग्रत्में रहै हैं. और प्रथमस्वप्नके पदार्थ दूसरे स्वप्नमें नहीं रहैं हैं याते स्वप्नके पदार्थनते जाग्रत्के पदार्थ विलक्षण हैं.

सो शंका भी सिद्धांतके अज्ञानी मूढनकी दृष्टिते होवै है. काहेते ऐसी मूर्खनकी दृष्टि है, संसारप्रवाह अनादि है, तामें जीवनकूं जाग्रत् स्वप्न सुषुप्ति होवै है, १ जाग्रत्कालमें स्वप्न सुषुप्ति नष्ट होवै है, और २ स्वप्नकालमें जाग्रत् सुषुप्ति नष्ट होवै है.३ तैसे सुषुप्तिकालमें जाग्रत् स्वप्न नष्ट होवै है, परन्तु स्वप्न सुषुप्ति होवै, तब जाग्रत् कालके स्त्री पुत्र पशु धनादिक दूरि होवैं नहीं; किंतु बनै रहैं, तिनका ज्ञानही दूरि होवै है. फिरि जाग्रत् होवे तब प्रथम जाग्रत्के विद्यमानपदार्थनका ज्ञान होवै है. यह अज्ञानी मूर्खनकी दृष्टि है. और-

सिद्धांत यह है:-१ सारे पदार्थ चेतनका विवर्त हैं २ अविद्याका परिणाम हैं. याते शुक्तिरजतकी न्याईं जिसकालमें जो पदार्थ प्रतीत होवे तिसकालमें अधिष्ठानचेतन आश्रित अविद्याका द्विविधपरिणाम होवै है.१ अविद्याके तमोगुण अंशका घटादि विषयरूप परि-

णाम होवै है और २ अविद्याके सत्त्वगुणका ज्ञानरूप परिणाम होवै है. यद्यपि चेतनकूं ज्ञान कहैं हैं, यातै सत्त्वगुणका परिणाम ज्ञान है. यह कहना बनै नहीं, तथापि सारेव्यापकचेतन ज्ञान नहीं किंतु साभासवृत्तिमें आरूढ चेतनकूं ज्ञान कहैं हैं. यातै चेतनमें ज्ञानव्यवहारकी संपादक वृत्ति है. इसरीतिसे चेतनमें ज्ञानपनेकी संपादक वृत्ति है. इस रीतिसे चेतनमें ज्ञानपनेकी उपाधि वृत्ति है ताके विषेभी ज्ञानशब्दका प्रयोग होवै है. जैसे लोकमें कहैं हैं, "घटका ज्ञान उत्पन्न हुवा, पटका ज्ञान नष्ट हुवा." तहां वृत्तिमें आरूढ चेतनका तो उत्पत्ति नाश सम्भवै नहीं, वृत्तिके उत्पत्ति. नाश होवैं हैं, और ज्ञानके उत्पत्ति नाश कहैं हैं. यातै वृत्तिमें भी ज्ञानशब्दका प्रयोग होवै है. सो वृत्तिरूप ज्ञान सत्त्वगुणका परिणाम है, यह कहना संभवै है. १ तावृत्तिरूप परिणाममें चेतनका आभास होवै है, २ घटादिक विषयरूप परिणाममें चेतनका आभास होवै नहीं. काहेते विषय और वृत्ति यद्यपि दोनों अविद्याके परिणाम हैं तथापि १ घटादिक विषय तो अविद्याके तमोगुणका परिणाम हैं, यातैं मलिन हैं, तिनमें आभास होवै नहीं. और २ वृत्ति, सत्त्वगुणका परिणाम

स्वच्छ है, तामें आभास होवै है इस रीतिसे १ वृत्तिको चेतनके आभासग्रहणकी योग्ता होनेते, वृत्तिअवच्छिन्न चेतनको ज्ञान कहैं हैं, और साक्षी कहैं हैं २घटादिक विषयकूं आभास ग्रहणकी योग्यता नहीं. इस कारणते विषयअवच्छिन्न चेतन ज्ञान नहीं, और साक्षी भी नहीं. इस रीतिसे जाग्रत्के पदार्थ और तिनका ज्ञान दोनों साथही उत्पन्न होवैं हैं और साथही नष्ट होवैं हैं. यह वेदका गूढ सिद्धांत है. याते जाग्रत्के पदार्थ दूसरी जाग्रत्में रहैं हैं; यह कहना संभवै नहीं.

यद्यपि स्वप्नते जागे पुरुषकूं ऐसी प्रत्यभिज्ञा होवैं है "जो पूर्वपदार्थ थे सोई यह पदार्थ हैं." याते जाग्रत्के पदार्थनका ज्ञानके समकाल उत्पत्ति नाश नहीं होवैं हैं, किंतु ज्ञानसे प्रथमविद्यमान होवैं हैं, और ज्ञान नाशते अनंतर भी रहै है.

तथापि जैसे स्वप्नके पदार्थ तिस क्षणमें उत्पन्न होवै हैं. और ऐसे प्रतीत होवैं हैः— "मेरे जन्मसे भी प्रथम उपजे ये पर्वतसमुद्रादिक हैं," तहां तत्काल उपजे पदार्थनमें बहुकाल स्थिरताकी भ्रांति होवै है. यातें जा अविद्याने मिथ्यापर्वत समुद्रादिक उपजाये है, तिसी अविद्यासे बहुकालस्थिरता और स्थिरताकी प्रतीति

अनिर्वचनीय उपजै है. तैसे जाग्रत्के पदार्थनविषे भी अनेक दिन स्थिरता है नहीं, किंतु अविद्याबलसे मिथ्या स्थिरता भी तिन पदार्थनके साथ उपजिकेप्रतीत होवै है. और–

जो ऐसे कहैं:–१ स्वप्नके पदार्थ साक्षात् अविद्याके परिणाम हैं, और २ जाग्रत्के पदार्थ साक्षात् अविद्याके परीणाम नहीं. किंतु घटकी उत्पत्ति दंड चक्र कुलालसे होवै है. तैसे सर्वपदार्थनकी उत्पत्ति अपने अपने कारणते होवै है, साक्षात् अविद्यासे नहीं. जो साक्षात् अविद्याके परिणामहोवैं, तो आकाशादिकक्रमते पंचभूतनकी उत्पत्ति और पंचीकरण तिनसे ब्रह्मांडकी उत्पत्ति श्रुतिमें कही है, सो असंगत होवैगी याते ईश्वरसृष्टि जाग्रत्के पदार्थ अपने अपने उपादानके परिणाम हैं. अविद्याके साक्षात् परिणाम नहीं. १ स्वप्नके तो सारे पदार्थ अविद्याके परिणाम हैं. तिनका एक अविद्या उपादान होनेते तिन पदार्थनकीऔर तिनके ज्ञानकी एक अविद्यासे, एक कालमें उत्पत्ति संभवै है. २ जाग्रत्के पदार्थ भिन्न भिन्न कारणसे उत्पन्न होवैं हैं कार्यते पहले कारण होवै है. और कारणमें कार्यका लय होवै है. याते घटकी उत्पत्तिसे प्रथम, और घटनाशते आगे मृत्पिंड रहै है; इस रीतिसे कोई पदार्थ अल्प

काल स्थिर, और कोई अधिककालस्थिर कार्यकारण हैं तैसे स्वप्नके नहीं.

सो शंका बनै नहीं. काहेते जाग्रत्के पदार्थनकी न्याईं स्वप्नके पदार्थनविषे भी कार्यकारणभाव प्रतीत होवै है. जैसे किसीकूं ऐसा स्वप्न होवैः—मेरी गऊके बच्छा हुवा है, अथवा मेरी स्त्रीके पुत्र हुवा है. तहां गऊ और स्त्रीविषे कारणताकी प्रतीति, और बहुकालस्थायिताकी प्रतीति होवै है, वत्स और पुत्रविषे कार्यता और अल्पकालस्थिरता प्रतीति होवै है, और सारे समकाल हैं, कोई किसीका कारण नहीं, किंतु गऊ वत्स स्त्रीआदिकनका अविद्याही उपादान है. तैसे जाग्रत्विषे भी कोई अधिककालस्थायीकारणस्वरूपते, कोई न्यूनकालस्थायीकार्यरूपते स्वप्नकी न्याईं प्रतीत होवै है. कोई किसीका परस्पर कार्य कारण नहीं, किंतु साक्षात् अविद्याके कार्य हैं. और—

श्रुतिविषे जो क्रमते सृष्टि कही है, तहां सृष्टिप्रतिपादनमें श्रुतिका अभिप्राय नहीं किंतु अद्वैतबोधनमें अभिप्राय है. सारे पदार्थ परमात्मासे उपजैं हैं, याते ताके विवर्त हैं. जो जाका विवर्त होवै सो ताकाही स्वरूप होवै है. याते सारा नामरूप ब्रह्मते पृथक् नहीं, ब्रह्मही है. इस अर्थबोधन करनेकूं सृष्टि कही है, सृष्टिका और

प्रयोजन नहीं. तहां क्रमका जो कथन है, सो स्थूलदृष्टिकूं विपरीत क्रमते लय चिंतनके निमित्त है, ताका भी अद्वैत बोध ही प्रयोजन है याते क्रमकथनमें भी अभिप्राय नहीं सृष्टिमें क्रम नहीं है किंतु सारे पदार्थ एक अविद्यासे उपजें हैं. तिनका परस्पर कार्यकारणभाव, और पूर्वउत्तरभाव, अविद्याकृत स्वप्नकी न्याईं मिथ्या प्रतीत होवै है, और श्रुतिनें तिनकी आपसमें कार्यकारणता और पूर्वउत्तरता कही है; सो लय चिंतनके निमित्त कही है ध्यानमें यह नियम नहीं, जैसा स्वरूप होवे तैसा ही ध्यान होवे है. याते जाग्रत्के पदार्थनका आपसमें कार्यकारणभाव नहीं. किंतु,

सारे पदार्थ साक्षात् अविद्याके कार्य हैं, शुक्तिरजतकी न्याईं वा स्वप्नकी न्याईं अविद्याकी वृत्ति उपहितसाक्षीते तिनका प्रकाश होवै है, याते सारेपदार्थ साक्षीभास्य हैं और ज्ञानाकार और ज्ञेयाकार अविद्याका परिणाम एकही कालमें उपजै है. साथही नष्ट होवै है याते जब पदार्थकी प्रतीति होवे, तबही प्रतीतिका विषय पदार्थ होवै है अन्यकालमें नहीं होवै है याहीकूं दृष्टिसृष्टिवाद कहें हैं.

या पक्षमें पदार्थकी अज्ञातसत्ता नहीं, ज्ञातसत्ता है. अद्वैतवादमें यह सिद्धांतपक्ष है, या पक्षमें दो सत्ता हैं

तीनि नहीं, काहेते, अनात्मपदार्थ सारे स्वप्नकी न्याईं प्रातिभासिक हैं, प्रतीतिकालसे भिन्नकालमें अनात्माकी सत्ता नहीं. यातेतीसरी व्यावहारिकसत्ता नहीं या पक्षमें सारे अनात्मपदार्थ साक्षीभास्य हैं, प्रमाताप्रमाणका विषय कोई भी नहीं, काहेते अंतःकरण और इंद्रिय तथा घटादिक, सारी त्रिपुटी और ज्ञान, स्वप्नकी न्याईं एककालमें उपजैं हैं, तिनका विषय विषयीभाव बनै नहीं, जो घटादिक विषय और नेत्रादिक इंद्रिय तैसे अंतःकरण ये ज्ञानते प्रथम होवें, तो नेत्रादि द्वारा अंतःकरणका वृत्तिरूप ज्ञान प्रमाणजन्य होवै. अंतःकरण, इंद्रिय, विषय. तीनों ज्ञानके पूर्वकालमें हैं नहीं; किंतु ज्ञानसमकालही स्वप्नकी न्याईं त्रिपुटी उपजै है. याते त्रिपुटीजन्य ज्ञान कोई भी नहीं. तथापि ज्ञानविषे स्वप्नकी न्याईं त्रिपुटीजन्यता प्रतीत होवै है. याते जाग्रत्के पदार्थ साक्षीभास्य हैं. प्रमाणजन्य ज्ञानके विषय नहीं; याते भी स्वप्नकी समान मिथ्या हैं. किंवा १ जाग्रत्में कितने पदार्थनकूं मिथ्यारूपकरिके जानैं हैं २ औरनकूं सत्यरूपकरिके ऐसे जानैं हैंः—अनादिकालके पदार्थ हैं. तिनमें कोई नष्ट होवैं हैं; और तिसके समान उत्पन्न होवैं हैं ऐसे प्रपंचधाराका उच्छेद कभी होवै नहीं. जाकूं ज्ञान होवै है, ताकूं प्रपंचकी प्रतीति होवै

नहीं, औरनकूं प्रपंचकी प्रतीति होवै है. ता ज्ञानके साधन वेदगुरु हैं. तिनते परमसत्यकी प्राप्ति होवै है,ऐसी प्रतीति जाग्रत्में होवै है.तहां १ किसी पदार्थमें मिथ्यापणा, २किसीमें नाश, ३ किसीमें उत्पत्ति, ४वेदगुरुतें, परमपुरुषार्थकी प्राप्ति, ये सारे अविद्याकृत स्वप्नकी न्याई मिथ्याहैं. वासिष्ठमें ऐसे अनंत इतिहास कहे हैं १ क्षणमात्रके स्वप्नमें बहुकाल प्रतीत होवैहै. और जाग्रत्की न्याई स्थायी पदार्थ प्रतीत होवैहैं और तिनतें बहुतकाल भोग होवैहै. याते जाग्रत्पदार्थकी स्वप्नतें किंचित् विलक्षणता नहीं किंतु आत्मभिन्न सर्व मिथ्याहै.

शिष्य उवाच-दोहा।

लाख हजारन कल्पको,यह उपज्यो संसार ॥
याते ज्ञानी मुक्ति है, बन्धे अज्ञ हजार॥११॥
झूठो स्वप्न समान जो,क्षण घटिका है याम ॥
बद्ध कौन को मुक्त है, श्रवणादिक किह काम॥

टीका-ईश्वरसृष्टि अनन्तकल्पते अनादि है:तामें ज्ञानी मुक्तहोवैहैं; अज्ञानीकूं बंध रहे है जो स्वप्न समान होवै तो स्वप्न एक क्षण घडी तथा पहर होवैहै तैसे संसार भी क्षण अथवा घडी वा पहरकाल, वा किंचित् अधिक काल होवैगा १ स्वप्नकी न्याई स्वल्पकाल स्थायी संसार होवै, तौ अनादि कालका बंधन नहीं होवैगा.

२ बन्धनिवृत्तिरूप मोक्षके निमित्त श्रवणादिक साधन निष्फल होवैंगे.

[गुरुः–] यद्यपि पूर्वोक्त सिद्धांतमें, १ बंध मोक्ष वेद गुरु अंगीकार नहीं.२ किंतु चेतन नित्यमुक्त है. ३ अविद्याके परिणाम चेतनमें नाना विवर्त होवैहैं, तातें आत्मरूपकी किंचित् मात्र भी हानि नहीं. ४ आत्मा सदा असंग एकरस है. ५ आजतक कोई मुक्त हुवा नहीं आगे होवै नहीं, किंतु चेतन नित्यमुक्त है.६ अविद्या और ताके परिणामका चेतनसे किसी कालमें संबन्ध नहीं याते बंध और वेद गुरु श्रवणादिक, और समाधि तथा मोक्ष, इनकी प्रतीति भी स्वप्नकी न्याई अविद्याजन्य है. याते मिथ्या है. ७ इन विषे बहुतकाल स्थायिता भी अविद्याजन्य है, तथापि या सिद्धांतकूं नहीं जानिके स्थूल दृष्टिका प्रश्न है.

गुरुवाक्य–दोहा ।

अगृयदेवकूं स्वप्नमें, भ्रम उपज्यो जिहि रीति ॥
शिष तोकूं यह ऊपजी, बंध मोक्ष परतीति ॥ १३ ॥

टीका–हे शिष्य! जैसे निद्रादोषते स्वप्नमें अध्यापक अध्ययन, वेदशास्त्र, पुराण, धर्मशास्त्र, और अध्ययन कर्त्ता, कर्म और तिनका फल प्रतीति होवेहै, और तिन सर्व पदार्थनमें सत्यताकी भ्रांति होवै है, तथापि स्वप्नके

सारे पदार्थ मिथ्या हैं. तैसे जाग्रत्के सारे पदार्थ मिथ्या हैं तिन विषे सत्यता प्रतीति भ्रम है. दोहेमें बंध मोक्ष ग्रहणते सर्व अनात्माका ग्रहण है, जैसे तेरेकूं हम गुरु प्रतीत होवैं हैं, वेद अर्थका बंध विघातक उपदेश करै है, सो तेरेकूं मिथ्याप्रतीति है, जैसे अगृधदेवकूं स्वप्नमें मिथ्या प्रतीतिके विषय गुरु वेदादिक अनिर्वचनीय उपजैहै तैसे तेरी प्रतीतिके विषें मेरेसे आदि लेके सारे अनिर्वचनीय मिथ्याहैं, सो-

अगृधदेवको ऐसा स्वप्न हुवाहै-एक अगृध नाम देवता अनादि कालका निद्रामें सोवताहुवा स्वप्नकूं देखताभया ता स्वप्नमें तिस पुरुषकूं ऐसी प्रतीति हुई-जो १ मैं चंडाल हूं, और २ महादुखी हूं और ३ अस्थि मज्जा रुधिर त्वचा मांस मेदवीर्यरूप सप्त धातुसे मेरा मुख भऱ्या है. और ४ महाघोर भयंकर सर्प हस्ती आदिकसे युक्त जो वन, ताके विषे मैं भ्रमण करूं हूं सो देवता भ्रमण कर्त्ता हुआ ता वनमें अनंत स्थान देखता हुवा. १ कहूं नाना भयंकर प्राणी सन्मुख भक्षण करनेकूं धावन करै हैं. और २ कहूं राध रुधिरसे भरे कुंड हैं, तिन्हमें पडे प्राणी हाहाकारशब्द करै हैं; और ३ कहूं लोहेके तप्त स्तंभ हैं, तिनसे बंधे पुरुष रोवैं हैं, और ४ कहूं तप्तबालुयुक्त मार्ग होयके

नग्नपाद पुरुष जावैं हैं, और तिन पुरुषनकूं राजभट लोहमय दण्डोंसे ताडना करैं हैं. इसरीतिसे १ नाना जो भयंकर स्थान हैं, तिनकूं सो देवता देखता हुवा और २ कदाचित् आप भी अपराध करिके स्वप्नमें तिन दुःखकूं प्राप्त होता भया.और –

कहूं दिव्य स्थान देखता हुवा १ तिन स्थानमें उत्तम देव विराजैं हैं, २ तिन देवनके दिव्य भोग हैं ३ अमृतके दर्शन मात्रसे तिनकूं तृप्ति रहै है ४ क्षुधा तृषाकी बाधा तिन देवनकूं होवे नहीं और ५ मल मूत्र रहित जिनका प्रकाशमान शरीर है, और ६ उत्तम विमानमें स्थित होयके, कोई देव रमण करै है, सो विमान ता देवकी इच्छाके अनुसार गमन करै है, और ७ कहूं रंभा उर्वशीसे आदिलेके अप्सरा नृत्य करैं हैं तिनके संपूर्ण अंग दोषरहित हैं और संपूर्ण स्त्री गुणयुक्त हैं, ८ उत्तम सुगंध तिनके शरीरसे कामकी प्रकाशक आवैं हैं, और कहूं तिनसे देव रमण करैं हैं, और ९ कदाचित् आप भी देवभावकूं प्राप्त होयके, तिनसे बहुत काल रमण करै है और १०, कदाचित् तिन अप्सरानसे दिव्य स्थानमें रमण करता हुआ अकस्मात् रुधिर मलपूरित जो कुण्ड हैं तिन विषे मज्जन करै है, और –

एक स्थानमें सर्वका अधिपति पुरुष स्थित है ताके आज्ञाकारी अनुचर ताके आगे स्थित हैं, १ कितने पुरुषनकूं सो अधिपति और ताके अनुचर सौम्य-रूप प्रतीत होवैं हैं. और २ कितने पुरुषनकूं महाभयं-कररूप प्रतीत होवैं हैं और ३ ता वनमें स्थित पुरुषनकूं कर्मके अनुसार फल देवैं हैं. इसरीतिसे अगृध नाम देवता स्वप्नकालमें नाना जो स्थान हैं तिनकूं देखता हुआ. और १ कहूं अन्यस्थानमें ब्राह्मण वेदकी ध्वनि करै हैं. और २ कहूं यज्ञशालामें उत्तमकर्म करै हैं. और ३ कहूँ उत्तम नदी बहैं हैं, तिनमें पुण्यके निमित्त लोक स्नान करैं हैं, और ४ कहूँ ज्ञानवान्आचार्य शिष्यनकूं ब्रह्मविद्याका उपदेश करैं हैं ता ब्रह्मविद्याकूं प्राप्त होयके ता वनसे निकसि जावैं हैं.

इसरीतिसे स्वप्नविषे अगृध नाम देवता क्षणमात्रमें नाना आश्चर्यरूप पदार्थ ता वनमें देखता हुवा, ताकूं ऐसी प्रतीति स्वप्नमें हुईः—जो १ मैं अनंतकालका या वनमें स्थित हूँ, २ या वनका कभी उच्छेद होवै नहीं ३ कदाचित् बागवान चारिमुखनसे नानाबीज निकासिके वनकी उत्पत्ति करै है, और जलसेचनसे पालन करैं हैं और कदाचित् घोरहास्य करिके मुखसे अग्नि निकासिके वनका दाह करै है.

४ वनकी उत्पत्तिके संगही मेरी उत्पत्ति होवै है, और वनके दाहसंगही मेरा दाह होवै है. और ५ सर्व वनका दाह करिके सो बागवान एकही रहै है. ६ ताके शरीरमें वनके बीज रहैं हैं. यह प्रतीति स्वप्नवेदके श्रवणसे ता अगृधदेवताकूं स्वप्नही विषे हुई.

अगृधदेवका गुरुसे मिलाप।

तब वारंवार अपना जन्म मरण सुनिके ता अगृध देवने विचार किया,जो १ किसी प्रकारसे वनके बाहर निकस जाऊं और २ वनके बाहर नहीं भी निकसूं तौ भी चांडालभाव मेरा दूरि होय जावे और देवभाव सदा बन्या रहे. ३ सो और तौ कोई उपाय वनते निकलनेका है नहीं. ब्रह्मविद्याके उपदेश करनेवाला आचार्य अपने शिष्यनकूं वनके बाहर निकासे हैं. यह विचारके आचार्यकूं स्वप्नकालमें ही सो अगृधदेवता प्राप्त हुवा. सो विधिपूर्वक प्राप्त हुआ जो शिष्य ताकूं, आचार्य देववाणीरूप मिथ्याग्रंथउपदेश करताहुवा.

मिथ्या आचार्यका मिथ्या शिष्यकूं मिथ्या संस्कृत ग्रंथसे उपदेशग्रंथके मंगलाचरण।

संस्कृतग्रंथ जो मिथ्या आचार्यने मिथ्याशिष्यकूं उपदेश किया ,ता ग्रंथकूं भाषाकरिके लिखें हैं. संस्कृत

ग्रंथके भाषा करनेमें मंगल करैं हैं. काहेते, १ मंगल करनेते जो ग्रंथकी समाप्तिके प्रतिबंधक विघ्न हैं. तिनका नाश होवै है. विघ्न नाम पापका है. पापते शुभकार्यकी समाप्ति होवै नहीं ता पापका मंगलते नाश होवै है. और २ जो पापरहित होवै सो भी ग्रंथके आरंभमें मंगल अवश्य करैं काहेते, जो ग्रंथ आरंभमें मंगल नहीं किया होवै तौ ग्रंथकर्त्ताविषे पुरुषनकूं नास्तिकभ्रांति होयके ग्रंथ में प्रवृत्ति होवे नहीं.

सो मंगल तीनि प्रकारका है; एक वस्तुनिर्देशरूप है और दूसरा नमस्काररूप है.और तीसरा आशीर्वादरूप है, सगुण अथवा निर्गुण जो परमात्मा सो वस्तु कहिये है ताके कीर्तनका नाम वस्तुनिर्देश कहिये है, अपना अथवा शिष्यनका जो वांछितवस्तु ताके प्रार्थनका नाम आशीर्वादरूप मंगल कहिये है, सो अपने वांछितका प्रार्थन चतुर्थ दोहेमें स्पष्ट है.शिष्यके इष्टका प्रार्थन पंचम दोहेमें स्पष्ट है.

गणेश और देवीकूं ईश्वरता पुराणमें प्रसिद्ध है, याते अनीश्वरका चिंतन नहीं, और पुराणमें गणेशका जो जन्म है, सो जीवकी न्याईं कर्मका फल नहीं, किंतु रामकृष्णादिकनकी न्याईं भक्तजनके अनुग्रहता-

स्ते परमात्माकाही आविर्भाव होवै है. यह व्यास भगवान्‌का परम अभिप्राय है, या स्थानमें यह रहस्य है:-परमार्थदृष्टिसे जीव भी परमात्मासे भिन्न नहीं, परंतु जन्ममरणादिक बंधक आत्माविषे जो अध्यास सो जीवका जीवपना है, सो जन्मादिक बंध गणेशादिकनकूं आत्मामें प्रतीत होवै नहीं, याते जीव नहीं इसरीतिसे गणेशादिकनकूं ईश्वरता है, याते ग्रंथके आरंभमें तिनका चिंतन योग्य है नानारूप ईश्वरका जो कथन है सो सर्वकूं ईश्वरता द्योतन करनेवास्ते है और ईश्वरभक्ति और गुरुभक्ति विद्याकी प्राप्तिका मुख्य साधन है, इस अर्थको भी द्योतन करनेवास्ते है.

अथ निर्गुणवस्तुनिर्देशरूप मंगल दोहा।

जो विभु सत्य प्रकाशते, परकाशत रवि चंद ॥
सो साक्षी मैं बुद्धिको, शुद्धरूप आनंद ॥ १ ॥

अथ सगुणवस्तुनिर्देशरूप मंगल-दोहा।

नाशै विघ्न समूलते, श्रीगणपतिको नाम॥
जा चिंतन बिन ह्वै नहीं, देवनहूके काम ॥ १ ॥
टीका-त्रिपुरवधमें यह वार्त्ता प्रसिद्ध है॥ २ ॥

अथ नमस्काररूप मंगल-सोरठा।

असुरनको संहार, लक्ष्मी पारवतीपति ॥
तिन्हैं प्रणाम हमार, भजतनकूं संतत भजैं॥ ३ ॥

अथ स्ववांछितप्रार्थनरूप आशीर्वाद मंगल।

दोहा ।

जा शक्तीकी शक्ति लहि, करै ईश यह साज ॥
मेरी वाणीमें बसहु, ग्रंथसिद्धिके काज ॥ ४ ॥

अथशिष्यवांछितप्रार्थनरूपआशीर्वाददोहा ।

बंधहरण सुखकरण श्री, दादू दीनदयाल॥
पढै सुनै जो ग्रन्थ यह, ताके हरहु जँजाल ॥ २ ॥

अथ वेदांतशास्त्रकर्त्ता आचार्य नमस्कार ।

कवित्त ।

वेदवादवृक्ष बन भेदवादी वायु आय,
पकर हलाय क्रिया कंटक पसारिके ।
सरल सुशुद्ध शिष्य कंज पुनि तोरि गेरि,
शूलनमैं फेरत फिरत फेरि फारिके ॥
पेखि सु पथिक भगवान जान अनुचित,
अंकमें उठाय ध्याय व्यासरूप धारिकै ।
सूत्रको बनाइ जाल वनको विभाग कीन्ह,
करत प्रणाम ताहि निश्चल पुकारिके ॥

टीका—जैसे वायु, वनमें पैठिके वृक्षनकूं हलायके तिनके कंटक पसारिके सुंदर कमलनके पुष्पनकूं स्व-स्थानसे तोरिके कंटकन विषे भ्रमावै, तिन भ्रमते पुष्पन-

कूं देखिके पथिकके चित्तमें ऐसी आवैः—कि,ये सुंदर कमल या स्थान योग्य नहीं किंतु उत्तम स्थान योग्य हैं यह विचारिके तिन पुष्पनकूं उठाइ लेवै, औ फिर विचार करै जो आगे भी पवन कंटकन विषे पुष्पनकूं तोडिके भ्रमण करावैगा, याते ऐसा उपाय करूं, जाते फिर वायु कंटकनमें पुष्पनकूं भ्रमावे नहीं.यह विचारिके सूत्रके जालसे कंटकयुक्त वृक्षनका विभाग करि देवे. ता जालसे पुष्पनका कंटकनमें प्रवेश होवेनहीं.

तैसे भेदवादी आचार्यरूप जो वायु है, सो वेदरूपी वनमें वाद कहिये अर्थवादरूप जो कंटकसहित वृक्ष हैं तिन्हते सकामकर्मरूप कंटक प्रवर्त्त करिके सरल कहिये कपटरहित और सुशुद्ध कहिये अतिशुद्ध रागादि दोष रहित जो शिष्यरूप कमलपुष्प तिन्हकूं समाधिरूप जो स्वस्थान तासों तोरिके सकाम कर्मरूप कंटकनविषे भ्रमावते देखिके पथिकसमान व्यापक विष्णुने विचार किया, जो यह सुन्दर कमलरूप शुद्धपुरुष या स्थान योग्य नहीं है, किंतु मेरे स्वरूपकूं प्राप्त होने योग्य है यह विचारिके व्यासरूप धारिके, तिन्ह शिष्यनकूं उपदेशरूप अंकमें स्थापन किया. जैसे पुरुषके अंकमें स्थित पुष्पकूं वायु उडावनेविषे समर्थ नहीं, तैसे ब्रह्मनिष्ठ आचार्यके उपदेशमें स्थित

पुरुषनकूं भेदवादी बहकावनेमें समर्थ नहीं. याते उपदेशही अंक कहिये गोद है. फिर व्यासभगवान्ने विचार किया जो भेदवादी और पुरुषनकूं आगे भी सकामकर्मरूप कंटकनमें भ्रमावेंगे. याते ऐसा उपाय होवे, जाते आगे शिष्य भ्रमैं नहीं. यह विचारिके सूत्ररूपी जालसे वेदके वाक्यरूप वृक्षनका विभाग करि दिया.

जैसे वनमें दोप्रकारके वृक्ष होवें; १ सकंटक और २ कंटक रहित तिन्हका जालसे विभाग करि देवे; और जालते पुष्पनका कंटकसहित वृक्षनमें प्रवेश होवै नहीं. तैसे वेदमें दोप्रकारके वाक्य हैं १ एक तौ कर्मकी स्तुति करके कर्मविषे बहिर्मुख पुरुषकी प्रवृत्ति करावैं हैं; और २ दूसरे कर्मके फलकूं अनित्य बोधन करिके पुरुषकी निवृत्ति करावैं हैं तिन्ह वाक्यनका वेदव्यासने विभाग करिके सूत्रनसे यह बोधन किया जो सर्व वाक्यनका निवृत्तिमें तात्पर्य है; प्रवृत्तिमें किसी वाक्यका भी तात्पर्य नहीं. जो प्रवृत्तिबोधक वाक्य हैं, तिन्हका भी स्वाभाविक और निषिद्ध जो प्रवृत्ति है, तासे निवृत्ति करिके विहितप्रवृत्तिसे अंतःकरण शुद्ध होयके, तासे भी निवृत्ति होयके, ज्ञाननिष्ठपुरुष होवे. इसरीतिसे निवृत्तिमें तात्पर्य है. और अर्थवाद वाक्यने जो कर्मका फल बोधन किया है, सो गुडजिह्वान्यायते

किया है. फलमें तिनका तात्पर्य नहीं. यह अर्थ सूत्रनसें व्यासजीने बोधन कियाहै या अर्थकूं सूत्रनसे जानिके पुरुषकी सकाम कर्ममें प्रवृत्ति होवे नहीं. जैसे सूतका जाल पुष्पनकूं कंटकनसे निरोध करै है; तैसे व्यास भगवान्‌के सूत्र सकामकर्मनसे निरोध करैं हैं; याते जालरूप कहे.

दोहा ।

कोउक शिष्य उदारमति, गुरुके शरणै जाय ॥
प्रश्न कियो कर जोरिके, पादपद्म शिरनाय ॥७॥

शिष्य उवाच-दोहा ।

भो भगवन् मैं कौन यह, संसृति कातें होइ ॥
हेतुमुक्तिको ज्ञान वा, कर्म उपासन दोइ ॥८॥

टीका–१ हे भगवन् ! मैं कौन हूँ देहस्वरूप हूं अथवा देहसे भिन्न हूं ? मैं मनुष्य हूं और मेरा शरीर है. यह दो प्रतीति होवें हैं, याते मेरेकूं संशय है, और देहसे भिन्न भी जो आप कहो, तो मैं कर्त्ता भोक्ता हूं अथवा अक्रिय हूं ? जो अक्रिय कहो, तो भी सर्वशरीरविषे एक हूं अथवा नाना हूं ? यह प्रथमप्रश्नका अभिप्राय है और २ यह संसृति कहिये संसार, ताका कर्त्ता कौन है, याका यह अभिप्राय है–या संसारका कोई कर्त्ता है, अथवा

आपही होवै है, जो कर्त्ता कहो तौ भी कोई जीव कर्त्ता है अथवा ईश्वर कर्ता है, जो ईश्वर कहो तौ भी एक देशमें सो ईश्वर स्थित है अथवा सो ईश्वर व्यापक है? जो व्यापक है, तौ भी जैसे व्यापक आकाशते जीव भिन्न है, तैसे ता ईश्वरते जीव भिन्न है, अथवा ईश्वरते जीव अभिन्न है? और मुक्तिका हेतु ज्ञान है ; अथवा कर्म है, अथवा उपासना है, अथवा दो हैं? जो दो कहो तौ भी ज्ञानकर्म है. अथवा ज्ञानउपासना है, अथवा कर्म उपासना है ?

श्रीगुरुरुवाच—अर्द्धदोहा ।

सत चित आनँद एक तूं, ब्रह्म अजन्य असंग ॥

टीका प्रथम जो शिष्यने प्रश्न किया, ताका उत्तर कहैं हैं—"तूंसत् चित् आनंदस्वरूप है" या कहनेते देहते भिन्न कह्या. काहेते देह असत्‌रूप है; और जडरूप है, और दुःखरूप है; और कर्त्ता भोक्ता भी नहीं. काहेतैं १ जाके विषेदुःखहोवै, सो दुःखकी निवृत्ति औ सुखकी प्राप्ति वास्ते क्रिया करे, सो कर्त्ता कहिये है. सो तेरे विषे दुःख है नहीं याते दुःखकी निवृत्तिवास्ते क्रियाका कर्त्ता नहीं, तूं आनंदस्वरूप है, याते सुखकी प्राप्तिके निमित्त भी तू क्रियाका कर्त्ता नहीं, २ जो कर्त्ता होवै, सोई भोक्ता होवै है, तू कर्त्ता नहीं याते भोक्ता भी नहीं. पुण्य

पापका जनक जोकर्म है,ताका कर्त्ता और सुख दुःख का भोक्ता स्थूलसूक्ष्मसंघात है,तू नहीं तू संघातका साक्षी· है.याहीते आत्मा एक है,नाना नहीं. जो आत्मा कर्ता भोक्ता होवै तब तो नाना होवै काहेते कोई सुखी है, कोई दुःखी है और कर्त्ताभोक्ता एकही अँगीकार होवे तो एकके सुख होनेते तथा दुःख होनेते सर्वकूं सुख तथा दुःख हुवा चाहिये याते भोक्ता नाना हैं,और आत्मा भोक्ता है नहीं याते एक है,

[पूर्वपक्षी]सांख्यके मतमें आत्मा कर्त्ता भोक्ता अंगीकार नहीं करिके नानापुरुष जो अंगीकार किये, सो अत्यंत विरुद्ध है. काहेते, यह सांख्यका सिद्धांत हैः— १सत्व-रज·तमगुणोंकी सम अवस्थाका नाम प्रधान कहैं हैं. सो प्रधान प्रकृति है, विकृति नहीं. विकृति नाम कार्यका है और प्रकृति नाम उपादानकारण है. सोप्रधान महत्तत्त्वका उपादानकारण है; याते प्रकृति है और अनादि है, याते विकृति नहीं. और महत्तत्त्व अहंकार पंचतन्मात्रा, ये सात प्रकृति हैं, उत्तर उत्तरके प्रकृति हैं. और पूर्व पूर्वके विकृति हैं.तन्मात्रा भी भूतनके प्रकृति हैं.इसरीतिसे सात प्रकृति विकृति हैं. और पंचभूत और दशइंद्रिय,और मन ये सोलह विकृति हैं. प्रकृति नहीं और पुरुष;प्रकृति विकृति नहीं काहेते,जो

हेतु किसी पदार्थका होवे, तो प्रकृति होवे और कार्य होवे तो विकृति होवे; सो पुरुष किसीका हेतु नहीं याते प्रकृति नहीं और कार्य नहीं, याते विकृति नहीं, याते पुरुष असंग है इसरीतिसे सांख्यमतमें पचीसतत्त्व हैं तत्त्वनाम पदार्थका है. २ सांख्यमतमें ईश्वरका अंगीकार नहीं. ३ स्वतंत्रप्रकृति जगत्का कारण है.और ४ पुरुषके भोग मोक्षके निमित्त प्रकृतिही प्रवृत्त होवै है, पुरुष नहीं.५प्रकृतिके विषयरूप परिणामते पुरुषकूं भोग होवै है, और६ बुद्धिद्वारा विवेकरूप प्रकृतिके परिणामतें मोक्ष होवै है. ७ यद्यपि पुरुष असंग है. ताकेविषे भोग मोक्ष बनै नहीं, तथापि ज्ञान सुख दुःख रागद्वेषसे आदिलेके बुद्धिके परिणाम हैं. ता बुद्धिका आत्मासे अविवेक है विवेक नहीं याते आत्मामें आरोपित बंध मोक्ष हैं परमार्थसे नहीं,८अविवेकसिद्धि जो आत्मामें भोग,तासेही आत्माकूं सांख्यमतमें भोक्ता कहैं हैं और ९परमार्थसे आत्मा भोक्ता नहीं बुद्धिही भोक्ता है१०बुद्धि आत्मासे भिन्न है,११इस ज्ञानका नाम विवेक है;१२ ताके अभावका नाम अविवेक है,इसरीतिसे सांख्यमतमें १३ आत्मा असंग है,और१४सुखादिक बुद्धिके परिणाम हैं, याते बुद्धिके धर्म हैं,और१५आत्मा नाना हैं, (सिद्धान्ती) सो वार्ता अत्यंत विरुद्ध है. जो सुख

दुःख आत्माके धर्म होवें, तो सुख दुःखके प्रति शरीर भेद होनेते आत्माका भेद होवे. सो सुख दुःख आत्माके धर्म तो हैं नहीं किंतु बुद्धिके धर्म हैं. याते सुख दुःखके भेदसे बुद्धिकाही भेद सिद्ध होवै है;आत्मा का भेद सिद्ध होवे नहीं.जैसे एकही व्यापक आकाशमें नाना उपाधिके धर्म उपाधि और आकाशके अविवेक से प्रतीत होवै हैं;तैसें एकही व्यापक आत्मामें नाना बुद्धिके धर्म अविवेकसे प्रतीत होवै हैं यह वार्त्ता सांख्यमतमें अंगीकार करनी उचित है,आत्माकूं असंग मानिके नाना अंगीकार करने निष्फल हैं. और कोई आत्मा मुक्त है औरनकूं बंध है, इसरीतिसे बंध मोक्षके भेदसे जो आत्माका भेद अंगीकार करै, सोभी बने नहीं. काहेतेजो बंध मोक्ष आत्मामें अंगीकार करें तो बंध मोक्ष के भेदसे आत्माका भेद सिद्ध होवे, सो बंधमोक्ष सांख्य मतमें असंग आत्मामें अंगीकार किये नहीं:किंतु–बुद्धि के अविवेकसे बंध अंगीकार किया है, और बुद्धिके विवेकसे बंधका मोक्ष अंगीकार किया है,जो वस्तु अविवेकसे होवै, और विवेकसे दूरि होवै, सो वस्तु रज्जु सर्पकी न्याई मिथ्या होवै है, आत्माविषे भी बुद्धिके अविवेकसे बंध है, और विवेकसे दूर होवै है,याते बंध मिथ्या है, जैसे बंध मिथ्या है,तैसे आत्माका मोक्ष भी

मिथ्या है, जामें बंध सत्य होवै; ताकाही मोक्ष सत्य होवै है, और आत्मामें बंध मिथ्या है; याते मोक्ष भी मिथ्याही है.इस रीतिसे मिथ्या जो बंध मोक्ष सो आकाशकी न्याई एक आत्मामें भी बनै है, तिनके भेदसे आत्माका भेद सिद्ध होवे नहीं याते सांख्यमतमें आत्माका भेद असंगत है. तैसे-

न्यायमतमें भी आत्माका भेद असंगत है, काहेते यह न्यायका सिद्धांत है:- १ सुख, ज्ञान, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, धर्म,अधर्म, ज्ञानके संस्कार, संख्या,परिमाण, पृथक्त्व, संयोग, विभाग, ये चतुर्दश गुण जीवरूप आत्माविषे हैं. २ संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग विभाग, ज्ञान, इच्छा, प्रयत्न ये अष्ट गुण ईश्वरमें हैं. इतना भेद है:-ईश्वरके ज्ञान, इच्छा, प्रयत्न, नित्य हैं, और जीवके तीनों अनित्य हैं; ईश्वर व्यापक है और नित्य है; जीव नाना हैं और संपूर्ण व्यापक हैं, नित्य हैं, और जीवका ज्ञान अनित्य है; याते जब ज्ञान गुण होवै तब तो जीव चेतन है, और ज्ञान गुणका नाश होवै,तब जडरूप रहैं हैं. ३ ईश्वर जीवकी नाई आकाश, काल, दिशा, मन नित्य हैं और,

४ पृथिवी, जल, तेज, वायुके परमाणु, नित्य हैं, जो झरोखेमें सूक्ष्मरज प्रतीत होवै है; ताके छठे भागका

नाम परमाणु है. परमाणु आत्माकी न्याईं नित्य है. ५ और भी जातिसे आदि लेके कितने पदार्थ न्यायमतमें नित्य हैं. वेदविरुद्ध सिद्धांतका बहुत लिखनेका जिज्ञासुकूं उपयोग नहीं, यातें लिखे नहीं. ६ "मैं मनुष्य हूं, ब्राह्मण हूं" ऐसी जो देहविषे आत्मभ्रांति, तासे राग द्वेष होवै है. ता राग द्वेषते धर्म अधर्मके निमित्त प्रवृत्त होवै हैं, तिनते शरीरके संबंधद्वारा सुख दुःख होवैहैं, इस रीतिसे न्यायमतमें आत्माकूं संसारका हेतु भ्रांतिज्ञान है.

७ सो भ्रांतिज्ञान तत्त्वज्ञानसे दूरि होवैहै, देहादिक संपूर्ण पदार्थनसे "आत्मा भिन्न है" या निश्चयका नाम तत्त्वज्ञान है. ता तत्त्वज्ञानसे "मैं ब्राह्मण हूं, मनुष्य हूं" यह भ्रांति दूरि होवै है. भ्रांतिके नाशते राग द्वेषका अभाव होवै है, तिन्हके अभावते धर्म अधर्मके निमित्त प्रवृत्तिका अभाव होवै है, प्रवृत्तिके अभावते शरीरसंबंधरूप जन्मका अभाव होवै है, और प्रारब्धका भोगते नाश होवै है. शरीरसंबंधके अभावते इक्कीसदुःखका नाश होवै है. ९ सो दुःखका नाशरूपही न्यायमतमें मोक्ष है. एक शरीर और श्रोत्र, त्वक्, नेत्र, रसना, घ्राण, मन ये षट्इंद्रिय और षट् इन्द्रियोंके विषय और षट्इन्द्रियोंके ज्ञान और सुख

दुःख, ये इक्कीस दुःख हैं; शरीरादिक भी दुःखके जनक हैं, याते दुःख कहिये है. और स्वर्गादिकोंका सुख भीनाशके भयते दुःखका हेतु है. याते दुःख कहियेहै.

यद्यपिन्यायमतमें श्रोत्र और मन नित्य हैं तिन्हकानाश बनै नहीं तथापि जिस रूपकरिके श्रोत्रमन दुःखके हेतु हैं; तिस रूपका नाश होवै है. पदार्थनके ज्ञानकी उत्पत्ति करिके दुःखके हेतु हैं. सो पदार्थनका ज्ञान मोक्षकालमें श्रोत्र और मन करें नहीं. काहेते, जो कर्णगोलकमें स्थित आकाश है सो श्रोत्र कहिये है. ता कर्णगोलकका मोक्षकालमें अभाव है. याते आकाशरूप श्रोत्रइंद्रिय हैभी, परंतु गोलकके अभावते ज्ञान होवैनहीं, इसरीतिसे ज्ञानका जनक जो श्रोत्रइंद्रियका स्वरूप, सोई दुःख है. और ताका ही नाश होवै है. और–

१० आत्माके साथ मनके संयोगते ज्ञान होवै है सो मनका संयोग न्यायसिद्धांतमें एककी क्रियाते अथवा दोकी क्रियाते होवै है, जैसे बीजवृक्षका संयोग एक बीजकी क्रियाते होवैहै, और दो मेषनका संयोग दोकी क्रियाते होवै है, तैसे विभु आत्मामें तौ क्रिया कभी भी होवै नहीं. और मोक्षकालमें मनमें भी क्रिया होवै नहीं याते संयोगवान् मनकाही मोक्षकालमें अभाव होवै है. और–

कोई एकदेशी त्वचाके साथ मनके संयोगकूं ज्ञानका हेतु कहैं हैं. आत्माके संयोगकूं नहीं सुषुप्तिमें पुरीतत् नाम नाडीविषे मन प्रवेश करै है– त्वचासे मनका संयोग है नहीं. याते सुषुप्तिमें ज्ञान होवैनहीं. तिन्हके मतमें त्वचासे संयोगवाला मनही ज्ञानद्वारा दुःखका हेतु होनेते दुःखरूप है; केवल मन नहीं. मोक्षमें त्वचाके नाश होनेते ताके साथ संयोग है नहीं याते ज्ञान होवै नहीं. मोक्षकालमें मन है भी परंतु दुःखका हेतु जो ज्ञानका जनक त्वचासे संयोगवाला मन ताका संयोगके नाशते नाश होवै है. ११ इसरीतिसे मोक्षकालमें परमात्मासे भिन्नही दुःखरहित होयके व्यापक आत्मा जडरूपस्थित होवै है. काहेते, ज्ञानगुणते आत्माका प्रकाश होवै है. सो जीवका ज्ञान संपूर्ण इंद्रियजन्यही है, नित्यहै नहीं. ता इंद्रियजन्य ज्ञानका मोक्षकालमें नाश होवै है, याते प्रकाशरहित जडरूप होयके आत्मा मोक्षकालमें स्थित होवै है,यह न्यायका सिद्धान्त है और–

न्यायमतमें पूर्वउक्तप्रकारसे सुख दुःख और बंधमोक्ष आत्माकूं होवैं हैं,याते आत्मा नाना है; और संपूर्ण व्यापक है. सर्व अल्प पदार्थनसे जो संयोग सोई न्यायमतमें व्यापकका लक्षण है. और

सजातीय, विजातीय, स्वगतभेदका अभाव, व्यापकका लक्षण नहीं; काहेते न्यायमतमें यद्यपि आत्मा निरवयव है, याते स्वगतभेदका तो ताके विषे अभाव है भी, परंतु सजातीय, और विजातीयके भेदका अभाव नहीं किंतु १ सजातीय जो दूसरा आत्मा, ताका भेद आत्मामें है. और २ विजातीय घटादिकनका भेद भी आत्मामें है. याते सजातीय, विजातीय, स्वगतभेदका अभाव व्यापकका लक्षण नहीं, किंतु सर्व अल्पपदार्थनसे संयोगही व्यापकका लक्षण है.

याकेविषे कोई शंका करैहै—न्यायमतमें आत्माकी न्याईं आकाश, काल, दिशा भी व्यापक हैं और परमाणु सूक्ष्म हैं निरवयवहैं. तिनसे सर्व व्यापकपदार्थनका संयोग बनै नहीं; काहेते जो परमाणु सावयवहोवैं, तब तो किसी देशमें आत्माका संयोग होवै, और किसी देशमें अन्यव्यापकपदार्थनका संयोग होवै. सो परमाणु सावयव है नहीं, किंतु निरवयव हैं, और अतिसूक्ष्म हैं तिन्हके साथ एकही देशमें सर्व व्यापकपदार्थनका संयोग होवेगा सो बनै नहीं. काहेते, जो एकके संयोगसे स्थान निरुद्ध है, ता देशमें अन्यपदार्थका संयोग बनैनहीं. याते नानापदार्थनकूं व्यापकता बनै नहीं, एकही कोई पदार्थ व्यापक बनै है.

यह शंका बनै नहीं.काहेते जोसावयववस्तुका संयोग है सो तो अन्यके संयोगका विरोधी है. १जैसे जा पृथिवीदेशमेंहस्तका संयोग होवै,तादेशमेंपादकासंयोग होवै नहीं और निरवयवका संयोग स्थानकूं रोकै नहीं,याते अन्यके संयोगका विरोधी नहीं यह वार्त्ता अनुभवसिद्ध है.२जैसे घटके जा देशमें आकाशका संयोग है,ता देश मेंही कालका और दिशाका संयोग भी है, जो कोई घटका देश आकाशकालदिशासे बाहिर होवै,तौ ता देश में आकाशकालदिशाका संयोग होवै नहीं,सो बाहिर तो कोई देश है नहीं.किंतु सर्वपदार्थनके सर्वदेश आकाश, काल,दिशामेंही हैं याते सर्वपदार्थनके सर्व देशनविषे आकाशकाल,दिशाका संयोग है इसरीतिसे परमाणुविषे भी एकहीदेशमें नानानिरवयवविभुका संयोग बनै हैकोई दोष नहीं,याते आत्मानानाहैं,औरसंपूर्णव्यापकहैं

[सिद्धांतीः—]सर्वका सर्वपदार्थनसे संयोग है यह न्यायका सिद्धांत है सो समीचीन नहीं काहेते; जो व्यापक आत्मा नाना अंगीकार करैंतो सर्वशरीरमें सर्वआत्मा का संबंध अंगीकार करना होवैगा.याते कौन शरीर किसका है, यह निश्चय नहीं होवैगा. किंतु एक एकआत्माके सर्वशरीर हुये चाहियें.जो ऐसे कहैः—जाके कर्म

से जो शरीर उत्पन्न हुवा है,ता आत्माका सो शरीर है. तो भी बनै नहीं;काहेते,कर्म जा शरीरसे होवै है ता कर्म करनेवाले पूर्वशरीरमें भी सर्वआत्माका संबंध है,याते कर्म भी सर्व आत्माकेही होवेंगे एकके नहीं.और ऐसे कहैं:-जा आत्माके मनसहित शरीर है ता आत्माका सो शरीर है.सो भी बनै नहीं,काहेते १ शरीरकी न्याईं मनके साथ भी सर्व आत्माका संबन्ध है,ताकेविषे यह निश्चय होवै नहीं. जो कौनसा मन किस आत्माका है, किंतु सर्व आत्माके सर्व मन हुए चाहियें.२ तैसे इंद्रिय भी सर्वआत्माके सर्वही होवेंगे.३ बाहरके पदार्थनविषे "यह मेरा है, यह औरका है"ऐसा व्यवहार भी शरीरनिमित्तक है. सो शरीर सर्व आत्माके सर्व हैं, याते बाहरके पदार्थ भी सर्व आत्माके सर्व हुए चाहियें और-

जो ऐसे कहैं-जा आत्माकूं जा शरीरमें अहंबुद्धि और ममबुद्धि होवे, ता आत्माका सो शरीर है. सो अहंबुद्धिऔर ममबुद्धि एक है; याते सर्व आत्मामें रहै नहीं. किंतु एक धर्म एकही धर्मीविषे रहै है. याते एकही आत्माका शरीर है. जा आत्माका जो शरीर है, ता शरीरके संबंधी मन इंद्रिय और बाहरके पदार्थ ता आत्माके हैं. याते व्यापक नाना आत्मा अंगीकार करनेमें भी दोष नहीं.

सो वार्ता भी बनै नहीं. काहेते यद्यपि अहंबुद्धि एकदेहमें एकही आत्माकूं होवै है, तथापि सो न्याय-मतमें बनै नहीं, किंतु सर्व आत्माकूं एकदेहमें अहंबुद्धि हुई चाहिये; काहेते न्यायमतमें बुद्धि नाम ज्ञानका है सो ज्ञान आत्मा और मनके संयोगते होवै है. सो मनके साथ संयोग सर्व आत्माका है.याते मनके संयोगसे जैसे एक देहमें एक आत्माकूं अहंबुद्धि होवै है.तैसे एक देहमें सर्व आत्माकूं अहंबुद्धि हुई चाहिये. जो ऐसे कहैं:—यद्यपि मनका संयोग तौ सर्व आत्मासे है, तथापि जा आत्मामें ज्ञानका जनक अदृष्ट है; ता आत्माकूंही अहंबुद्धि होवै है, तौ भी सर्वकूं ही ज्ञान हुआ चाहिये. काहेते जो व्यापक नाना आत्मा अंगीकार करैं, तो एक शरीरकी शुभ अशुभ क्रियाते शरीर-में स्थित सर्व आत्मामेंही अदृष्ट हुये चाहियें; यह वार्त्ता पूर्व कहि आये यातैं व्यापक जो नाना आत्मा अंगीकार करैं, तो एकदेहमें सर्वकूं सुख दुःखका भोग हुआ चाहिये, याते व्यापक नानाकर्ता भोक्ता आत्मा है; यह न्यायका सिद्धांत समीचीन नहीं और—

हमारे सिद्धांतमें तौ कर्त्ता भोक्ता अंतःकरण है, सो अंतःकरण नाना है, व्यापक और अणु नहीं किंतु शरीरके समान ता अन्तःकरणका परिमाण है. दीप-

कके प्रकाशकी न्याईं बडे शरीरकूं प्राप्ति होवै, तब अन्तःकरणका विकाश होवै है; और न्यूनशरीरमें संकोच होवै है, यह वार्त्ता सिद्धांतबिंदुके व्याख्यानमें मधुसूदनस्वामीने प्रतिपादन करीहै, जा अंतःकरणका जा शरीरसे संबंध है; ता अंतःकरणकूं शरीरसे भोग होवै है.

जो अंतःकरणकूं व्यापक अंगीकार करैं, तो सर्वशरीर सर्वके होवें और भोग भी सर्वकूं होवै, सो व्यापक अंतःकरण नहीं; याते दोष नहीं. और अंतःकरणकूं अणु अंगीकार करैं तौ शरीरके एकदेशमें अंतःकरण रहै है, ऐसा अंगीकार करना होवैगा, सो वार्त्ता बनै नहीं. काहेते, जो एककालमेंही पाद और मस्तकमें कंटकबेध होवे, तौ दोनों स्थानमें एकही कालमें पीडा होवै है; सो नहीं हुई चाहिये; काहेते, जो अंतःकरण अणु होवै, तौ एकही स्थानमें एकका-लमें रहै याते जा स्थानमें अंतःकरण होवै, ता स्थान-मेंही पीडा हुई चाहिये; दोनों स्थानमें नहीं. याते अंतःकरण अणु और व्यापक नहीं, किंतु शरीरके समान है. याते, कोई दोष नहीं, अणु और व्यापकसे विलक्षण जो है; ताकूंही मध्यपरिमाण कहैहैं. और—

न्यायमतमें किसी नवीनने ऐसा अंगीकार किय है:—१ आत्मा नाना है, कर्त्ता भोक्ता है, व्यापक नहीं

याते भोगका संकर नहीं. २ अणु भी नहीं, याते दो स्थानमें पीडाका असंभव भी नहीं. किंतु जैसे वेदांतमें अंतःकरण मध्यम परिमाण है, तैसे आत्मा भी मध्यम परिमाण है, ताके विषे चतुर्दश गुण रहैं हैं.

सो भी समीचीन नहीं. काहेते १ जो आत्माकूं संकोच विकाशवाला अंगीकार करें, तौ दीपकी प्रभाकी न्याईं आत्माविकारी, और विनाशवाला होवेगा. याते मोक्ष प्रतिपादक शास्त्र और साधन निष्फल होवेंगे, और २ मध्यमपरिमाण अंगीकार करिके संकोचविकाश अंगीकारनहीं करै, तो कौनसे शरीरकेसमान आत्माकूं अंगीकार करें, यह निश्चय होवे नहीं. ३ जो मनुष्यशरीरके समान अंगीकार करें तो जब आत्मा हस्तीके शरीरकूं प्राप्त होवे, तब सर्व शरीरमें आत्मा नहीं होवेगा. याते जा देशमें हस्तीके आत्मा नहीं है, ता देशमें पीडा नहीं हुई चाहिये, और ४ हस्तीके शरीरके समान अंगीकार करें, तौ तासे और शरीर बढे हैं, तिनके एक देशमें पीडा नहीं हुई चाहिये. और सर्वसे बडा किसीका शरीर है नहीं, जाके समान आत्मा अंगीकार करें, और ५ सर्वसे बडा विराट्का शरीर है, ताके समान जो आत्मा अंगीकार करें तो विराट्के शरीरके अंतर्भूत सर्व शरीर हैं. याते सर्व आत्माका सर्व शरीरसे संबंध

होवेगा; ताके विषे पूर्वदोष कहेही हैं.और यह नियम हैः—जो मध्यम परिमाणवस्तु होवे, सो शरीरकी न्याईं अनित्य होवै है याते आत्मा भी अनित्य होवेगा. और अंतःकरणका तौ हमारे मतमें ज्ञानते नाश होवै है; याते अनित्य है. मध्यम परिमाण अंगीकार कियेसे दोष नहीं. इसरीतिसे नवीन तार्किकका मत भी समीचीन नहीं. और –

(पूर्वपक्षीः-)जो कोई ऐसे कहैः—आत्मा नाना है और अणु है. (सिद्धांतीः—)सो वार्ता भी बनै नहीं. काहेते, १ जो आत्माकूं कर्ता भोक्ता अंगीकार करैं, तो अंतःकरणके अणुपक्षमें जो दोष कह्या, सो दोष होवेगा और २ कर्ता भोक्ता अंगीकार नहीं करैं तो नाना आत्मा अंगीकार निष्फल होवेगा. एकही व्यापक सर्वशरीरमें अंगीकार करना योग्य है;और कर्ता भोक्ता अंगीकार नहीं करैं तो अपने सिद्धांतका भी त्याग होवेगा.काहेते अणुवादीका यह सिद्धांत हैः—ज्ञान सुखदुःख धर्मसे आदिलेके आत्माके धर्म हैं, याते जो आत्माकूं अणु अंगीकार करैं,तौ जा शरीरमें आत्मा नहीं है, सो देश मृतसमान है;ताके विषे पीडादिक नहीं हुई चाहियें.

और जो ऐसे कहैंः–यद्यपि आत्मा तो शरीरके एक देशमें है;परंतु कस्तूरीके गंधकी न्याईं ताका ज्ञान

सारे शरीरमें व्याप्त है; याते सर्वशरीरविषे अनुकूल-प्रतिकूलके संबंधकूं अनुभव करै है. सो भी बनै नहीं. काहेते यह नियम है:-जितने देशमें गुण-वाला रहै, तासे बाहिर गुण रहै नहीं, किंतु गुणीमेंही गुण रहै है. जैसे रूप, घटादिकनते बाहिर रहे नहीं;तैसे आत्मासे बाहिर ज्ञान भी बनै नहीं.और कस्तूरीके सूक्ष्मभाग जितने देशमें व्याप्त होवैं उतने देशमेंही गंध व्याप्त होवै है, याते कस्तूरीका दृष्टांतभी बनै नहीं. "याते आत्मा अणु है" यह पक्ष भी बनै नहीं.और-

कहूं श्रुतिमें आत्मा अत्यंत अणुसे भी अणु जो कह्या है, सो दुर्विज्ञेय है,याते कह्याहै.जैसे अत्यंत अणुवस्तुका मंददृष्टिपुरुषकूं ज्ञान होवैनहीं,तैसे बहिर्मुखपुरुषकूं आत्माका भी ज्ञान होवै नहीं,याते अणुके समान है,यह श्रुतिका अभिप्राय है,और "आत्मा अणु है" यह अभिप्राय नहीं. काहेते,बहुत स्थानमें व्यापकरूप, आपही वेदने प्रतिपादन किया है,याते अणु नहीं इस रीतिसे "व्यापक तथा मध्यम परिमाण अथवा अणु आत्मा नानाहै," यह कहना संभवै नहीं.

परिशेषते एक व्यापक आत्मा है ताके विषे धर्म अधर्म सुख दुःख और बंध मोक्ष जो अंगीकार करैं,तौ किसीकूं सुख और किसीकूं दुःख किसीकूं बंध किसीकूं मोक्ष

ऐसा व्यवहार नहीं होवेगा.याते धर्मादिक बुद्धिके धर्म हैं यद्यपि बुद्धि जड है याते ताके विषे भी धर्मसुखादिक बनैं नहीं,तथापि आत्माके धर्म नहीं हैं,इस अभिप्रायते बुद्धिके धर्म कहिये हैं,और"बुद्धिके धर्म हैं"याके विषे अभिप्राय नहीं.बुद्धि और सुखादिक आत्मामें अध्यस्त हैं।१जो वस्तु जामें अध्यस्त होवै, सो तामें परमार्थसे होवै नहीं.जैसे सर्प रज्जुमें अध्यस्त है,सो परमार्थसे रज्जुमेंहै नहीं तैसे बुद्धि और सुखादिक आत्मामें हैं नहीं.और २ अध्यस्त वस्तु भी किसीका आश्रय होवैं नहीं,याते बुद्धि भी सुखादिकनका आश्रय है नहीं; परंतु अज्ञान तो शुद्धचेतनमें अध्यस्त है, और अंतःकरण अज्ञान उपहितमें अध्यस्त है और अंतःकरण उपहितमें धर्म अधर्मसुखदुःख बंध मोक्ष, अध्यस्त हैं. इसरीतिसेआत्मामें धर्मादिकनके अधिष्ठानपनेकाअन्तःकरण उपाधि है, याते अन्तःकरणके धर्म कहिये हैं.

जो अन्तःकरणविशिष्टमें धर्मादिक अध्यस्त कहैं तो बनै नहीं;काहेते,विशेषणयुक्तका नाम विशिष्ट है. धर्मादिक अध्यासका अधिष्ठान जो आत्मा ताकाअंतःकरण जो विशेषण अंगीकार करे तो अन्तःकरण भी धर्मसुखादिकनका अधिष्ठान होवेगा. सो वार्त्ता बनै नहीं. काहेते, मिथ्यावस्तु अधिष्ठान होवे नहीं.

याते आत्मामें धर्मादिकनके अध्यासका अन्तःकरण विशेषण नहीं, किंतु उपाधि है. १उपाधिका यह स्वभाव है, आप तटस्थ होयके जितने देशमें आप होवे, उतने देशमें स्थित वस्तुकूं जनावे.और २ विशेषणका यह स्वभाव हैः–जितने देशमें आप होवै,उतनें देशमें स्थित वस्तुकूं अपनेसहित जनावे १ विशेषणवान्कूं विशिष्टमें कहै हैं, और २ उपाधिवालेकूं उपहित कहैं हैं. इसरीतिसे अन्तःकरण विशिष्ट जो धर्मादि अध्यस्त कहैं, तो जितने देशमें अन्तःकरण हैं, ता देशमें स्थित चेतनभाग और अन्तःकरण दोनोंकूं अधिष्ठानता होवै सो अन्तःकरण आप भी अध्यस्त है, याते अधिष्ठान बनै नहीं.इस अभिप्रायते अन्तःकरण उपहितमें धर्मादिक अध्यस्त कहे. याते "जितने देशमें अन्तःकरण है उतने देशमें स्थित चेतन भागमात्रमें अधिष्ठानता है; अंतःकरणमें नहीं" यह वार्ता बन है. तैसे–

अंतःकरण भी अज्ञान उपहितमें अध्यस्त है;अज्ञानविशिष्टमें नहीं.इसरीतिसे अध्यस्त जो धर्मादिक,तिन्हका अधिष्ठान आत्मा है. अध्यासके अधिष्ठानपनेकी अंतःकरणउपाधि है. याते बुद्धिके धर्म कहै हैं और २ अविवेकसे अंतःकरण आत्मा दोनोंविषे प्रतीत होवें है. याते अंतःकरणविशिष्ट जो प्रमाता, ताके धर्म

कहैं हैं, १ धर्मादिक अंतःकरणके धर्म होवैं, २ अथवा अंतःकरणविशिष्टप्रमाताके धर्म होवैं, ३ अथवा रज्जु सर्प, स्वप्नके पदार्थ, गंधर्वनगर, नभनीलताकी न्याई किसीके धर्म ना होवैं; सर्वप्रकारसे आत्माके धर्म नहीं. यद्यपि आत्मामें अध्यस्त हैं, तथापि जो वस्तु जामें अध्यस्त होवै सो ताहीमें परमार्थसे होवै नहीं. अध्यस्त नाम कल्पितका है याते राग, द्वेष, धर्म,अधर्म, सुख, दुःख, बंध, मोक्षसे रहित एक व्यापक आत्मा है. सो–

आत्मा सत् है. १ जा वस्तुका ज्ञानसे अभाव होवे,सो असत् कहिये है. जाकी निवृत्ति किसीकालमें भी नहीं होवै, सो सत् कहिये है, सर्व पदार्थनका और तिनकी निवृत्तिका आत्मा अधिष्ठान है, जो आत्माकी निवृत्ति होवै, तौ ताका और अधिष्ठान कह्या चाहिये. काहेते, १ शून्यमें निवृत्ति होवे नहीं. २ जो आत्मा और ताकी निवृत्तिका अन्य अधिष्ठान अंगीकार करैं, तो ताका और अधिष्ठान अंगीकार करना होवैगा. इसरीतिसे अनवस्था होवैगी. और आत्माकी जो निवृत्ति अंगीकार करै, ताकूं यह पूछैं हैं:–१ जो आत्माकी निवृत्ति किसीने अनुभव करी है, २ अथवा नहीं, १ जो ऐसे कहैं; अनुभव करी

है.सो बनै नहीं. काहेते जो अनुभव करनेवाला है, सोई आत्मा है. और अपना स्वरूप है. ताकी निवृत्तिका अनुभव अपने मस्तकछेदनके अनुभव समान है, यातैं आत्माकी निवृत्तिका अनुभव बनै नहीं. और २ ऐसे कहैं जो –आत्माकी निवृत्ति तौ होवै है,परंतु ताकी निवृत्तिका अनुभव किसीकूं नहीं. तौ यह वार्त्ता सिद्ध हुई, जो आत्माकी निवृत्ति तौ होवै नहीं. काहेते, जो वस्तु किसीने अनुभव नहीं करी, सो वंध्यापुत्रके समान होवै है. याते आत्माकी निवृत्ति होवै नहीं, याहीते आत्मा सत् है. और–

आत्मा चित् है. प्रकाशरूप जो ज्ञान, सो चित् कहिये है, १ जो अप्रकाशरूप आत्मा अंगीकार करें, तौ अनात्मजडवस्तुका प्रकाश कभी होवै नहीं.जो अंतःकरण और इंद्रियनसे पदार्थनका प्रकाश कहैं, तौ बनै नहीं काहेते, अंतःकरण और इंद्रिय परिच्छिन्न हैं, याते कार्य हैं. १ जो परिच्छिन्न होवै, सो घटकी न्याई कार्य होवै है. और अंतःकरण इंद्रिय भी परिच्छिन्न हैं, याते कार्य है. २ देशकालते जाका अंत होवै, सो परिच्छिन्न कहिये है.३जो कार्य होवै सो जड होवै है. याते अंतःकरण और इंद्रियें भी जड हैं.तिनतैं किसीवस्तुका प्रकाश बनै नहीं.याते जो आत्मा सर्वका प्रकाश करै है, सो प्रकाशरूप है, और–

जो ऐसे कहैं—आत्मा प्रकाशरूप नहीं, किंतु आत्मा तौ जड है.और ताके विषे ज्ञानगुण है;ता ज्ञानते आत्मा और अनात्माका प्रकाश होवैहै. ताकूं यह पूछैं हैं–१ अनात्माका ज्ञान गुण नित्य है,२अथवा अनित्य है ? १ जो नित्य कहै तो आत्मा का स्वरूपही ज्ञान सिद्ध होवैगा. काहेते, यह नियम है जो आत्मासे भिन्न होवे,सो अनित्य होवे है.जो ज्ञानकू आत्मासें भिन्न अंगीकार करैं,तो अनित्यही होवैगा.याते नित्य मानिके आत्मासे भिन्नज्ञानहै यह कहना बने नहीं. और जो अनित्य अंगीकार करें तो घटादिकनकी न्याईं जड होवेगा.जो अनित्य वस्तु होवे,सो जड होवे है याते "ज्ञान अनित्य है" यह कहना बनै नहीं. किंतु ज्ञान नित्यही हैसो नित्यज्ञान आत्मस्वरूपही है.जो अनित्य अंगीकारकरैं, तो कदाचित् आत्मामें ज्ञान होवे, और नित्यअंगीकार कियेसे तो भिन्न होवे नहीं, जो गुण होवे सो गुणवान्‌विषे कदाचित् रहै; और कदाचित् नहीं भी रहै, जैसे वस्त्रका नील पीत गुण कदाचित् रहे, और कदाचित् नहीं रहे याते जो गुण होवे, सो आगमापायी होवे है. और ज्ञानकूं नित्यता होनेते, आगमापायी है नहीं,याते आत्मा का स्वरूपही ज्ञान है और –

ज्ञानकूं अनित्य कहैं,तौ इंद्रिय अथवा अंतःकरणसे ज्ञान उत्पन्न होवै है, यह कहना होवेगा. सो बनै नहीं. काहेते,सुषुप्तिमें इंद्रियादिक तो हैं नहीं, और सुखका ज्ञान होवै है. सो नहीं हुवा चाहिये. जो सुषुप्तिमें सुखका ज्ञान अंगीकार नहीं करें,तौ जागिके "मैं सुखसे सोया" यह सुषुप्तिके सुखकी स्मृति होवै है, सो नहीं हुई चाहिये. जा वस्तुका पूर्व ज्ञान होवै ताकी स्मृति होवै है, और अज्ञातवस्तुकी स्मृति होवै नहीं. और सुषुप्तिके सुखकी जागिके स्मृति होवै है. याते सुषुप्तिमें सुखका ज्ञान होवै है. ता ज्ञानके जनक इंद्रियादिक सुषुप्तिमें हैं नहीं; याते नित्य है. ज्ञानकूं त्यागिके आत्मा कभी भी रहै नहीं याते ज्ञान आत्माका स्वरूपहै जैसे उष्णताकूं त्यागिके अग्नि कभी रहै नहीं; याते उष्णता वह्निका स्वरूप है. तैसे ज्ञान भी आत्माका स्वरूप है जो आगमापायी होवै, सो गुण होवै है, उष्णता और ज्ञान आगमापायी हैं नहीं, याते अग्नि और आत्माके स्वरूप हैं. जो वस्तु कदाचित् होवै,और कदाचित् न होवै सो आगमापायी कहिये है.

उत्पत्ति और विनाश अंतःकरणकी वृत्तिके होवैहैं, ज्ञानके नहीं १ आत्मस्वरूप जो ज्ञान है, सो विशेष-व्यवहारका हेतु नहीं; किंतु ज्ञानसहितवृत्ति अथवा

वृत्तिमें आरूढज्ञान, व्यवहारका हेतु है. यह अवच्छेद-वादकी रीति है. और २ आभासवादमें आभाससहित वृत्तिसे व्यवहार होवै है.आभासद्वारा अथवा साक्षात्-वृत्तिद्वारा आत्मस्वरूपज्ञानतेही सर्वव्यवहार सिद्ध होवै है; नहीं तौ होवै नहीं. इसरीतिसे सर्वका प्रकाशक ज्ञानस्वरूप आत्मा है. याते चित् है. और आत्मा आनंदरूप है. जो आत्मा आनंदरूप नहीं होवै, तो विषयसंबंधसे स्वरूपआनंदका भान होवै है,सो नहीं हुआ चाहिये. विषयमें आनंद नहीं, यह वार्त्ता पूर्व कही है. जो विषयमें आनंद होवै. तो जा विषयते एकपुरुषकूं सुख होवै, तासेही अन्यकूं दुःख होवै जैसे अग्निके स्पर्शते अग्निकीटकूं, और सर्प सिंहके रूप देखनेते सर्पिणी सिंहिनीकूं आनंद होवै है,और अन्यपुरुषनकूं दुःख होवै है. सो नहीं हुवा चाहिये और सिद्धांतमें तौ अग्निकीटकूं अग्निस्पर्शकी इच्छा होवै, तब चंचलबुद्धिमें स्वरूप आनंदका भान होवै नहीं. अग्निसंबंधते क्षणमात्र इच्छा दूरि होयक निश्चलबुद्धिमें स्वरूप आनंदका भान होवै है. अन्यपुरुषनकूं अग्निसंबंधकी इच्छा है नहीं, किंतु अन्यपदार्थनकी इच्छा है. तिन पदार्थनकी इच्छा अग्निसंबंधसे दूरि होवै नहीं. याते चञ्चल अंतः-करणमें अग्निसंबंधसे आनंद होवै नहीं. याके विषे;

यह शंका होवै हैः—जो इच्छारूप अंतःकरणकी वृत्ति है, सो तो विषयप्राप्तिसे नाशकूं प्राप्त होय गई, और अन्य वृत्तिका कोई निमित्त है नहीं. याते उत्पत्ति हुई नहीं. और वृत्तिसे विना स्वरूप आनंद का भान होवै नहीं; याते विषयमेंही आनंद है.

सो शंका बनै नहीं काहेते १ यद्यपि इच्छारूप तौ अंतःकरणकी वृत्तिका अभाव है, सो इच्छारूप वृत्ति होवै तौ भी ताके विषे आनंदप्रकाश होवै नहीं काहेते इच्छारूप वृत्ति राजस है,और आनंद का प्रकाश सात्त्विकवृत्तिमें होवै है. तथापि वांछित पदार्थ जो मिथ्या है, ताके स्वरूपकूं विषय करनेवास्ते जो ज्ञान-रूप अंतःकरणकी वृत्ति है; सो सात्त्विक है. काहेते; सत्त्वगुणसे ज्ञान होवै है यह नियम है. ता सात्त्विक वृत्तिमें आनंदका भान होवै है, परंतु सो ज्ञानरूप वृत्ति बहिर्मुख है. ताके पृष्ठभागमें स्थित जो अंतःकरण उप-हित चेतनस्वरूप आनंद, ताका तिस वृत्तिसे ग्रहण होवै नहीं. याते विषयउपहित चेतनरूप आनंदका भान होवै है. सो विषयउपहित चेतन आत्मासे भिन्न नहीं याते आत्मानंदकाही विषयमें भान कहिये है. ता ज्ञानरूप वृत्तिविषे विषयके साथ नेत्रादिकनका संबंधही निमित्त है. २ अथवा—

ज्ञानरूप जो बहिर्मुखवृत्ति,तासे अन्य अंतर्मुखवृत्ति होवै है; ताके विषे अंतःकरणउपहित चेतनरूप आनंदकाही भान होवै है यह उत्तम सिद्धांत है. ता वृत्तिकी उत्पत्तिमें इच्छादिकनका अभावही निमित्त है. जैसे इच्छादिकनते रहित जो एकांतमैं उदासीन पुरुष स्थित है, ताकूं बहिर्मुखज्ञान रूपते कोई वृत्ति होवै नहीं,आनंदका भान होवै है.याते इच्छादिकनके अभावरूप निमित्तते अंतर्मुखवृत्ति आनंदग्रहणकरनेवाली होवैहै.तासे वांछित विषयके लाभसे इच्छादिकनका अभाव होनेते ज्ञानसे अनंतर अंतर्मुखवृत्ति होवै है.तिसते अंतःकरणउपहित आनंदकाही ग्रहण होवै है.सो स्वरूप आनंदका ग्रहण और विषयका ज्ञान अत्यन्त अव्यवहित है. याते पुरुषकूं ऐसी भ्रांति होवै है "मैंने विषयमें आनंद अनुभव किया है" प्रथमपक्षसे यह पक्ष उत्तम है. काहेते जो विषयकी ज्ञानरूपवृत्ति है; तासे अंतःकरणउपहित आनंदका तौ भान बनै नहीं; याते विषयउपहित आनंदका भान होवेगा, तो मार्गमें वृक्षकी जो ज्ञानरूपवृत्ति है सो. भी सात्त्विक है; तासे भी वृक्षउपहित चेतनस्वरूप आनंदका भान हुआ चाहिये. तैसे सर्वज्ञानसे ज्ञेय उपहितचेतनरूप आनंदका भान हुवा चाहिये. याते अनात्मवस्तुके

ज्ञानरूप जो बहिर्मुखवृत्ति; तासे ज्ञेय उपहितचेतनस्वरूप आनंदका ग्रहण होवै नहीं, इसरीतिसे विषयके संबंधस आत्मस्वरूपानंदका भान होवै है. जो आत्मा आनंदरूप नहीं होवै, तौ विषयसंबधसे आनंदका भान बनै नहीं. याते आत्मा आनंदरूप है. और—

आत्माका संबंधी जो वस्तु है, ताके विषे प्रेम होवैहै. तासे सन्निहितमें अधिक प्रेम होवै है. इसरीतिसे बाहिर बाहिरके पदार्थनकी अपेक्षाते अंतरअंतरके पदार्थनमें अधिक प्रीति है. १ परम्पराते आत्माका संबंधी जो पुत्रका मित्र है तामें प्रीति होवै है. २ पुत्रके मित्रकी अपेक्षाते पुत्रमें अधिक प्रीति है. और ३ पुत्रसे भी स्थूल सूक्ष्म शरीरमें अधिक प्रीति है, और ४ स्थूल सूक्ष्म शरीरमें भी स्थूलते सूक्ष्ममें अधिक प्रीति है पूर्वपूर्वसे उत्तर उत्तर आत्माके समीप है १ आत्माका आभास सूक्ष्मशरीरमें है; और मैं नहीं याते आभासद्वारा आत्माका सूक्ष्मशरीरसे संबंध है, औरसे नहीं २ स्थूलशरीरसे सूक्ष्मशरीरका संबंध है याते, स्थूलशरीरसे सूक्ष्मशरीरद्वारा आत्माका संबंध है. और ३ पुत्रसे स्थूल शरीरद्वारा संबंध है; और पुत्रके मित्रसे पुत्रद्वारा संबंध है इसरीतिसें उत्तर उत्तर जोआत्माके समीप, ताके विषे अधिक प्रीति है. जा आत्माके संबंध होनेते

पदार्थमें प्रीति होवै; ता आत्मामेंही मुख्य प्रीति है; और पदार्थमें नहीं. जैसे पुत्रके मित्रमें पुत्रके संबंधसे प्रीति है, याते पुत्रमेंही प्रीति है; पुत्रके मित्रमें नहीं तैसे आत्माके अधिकसमीपमें अधिक प्रीति होवै है, याते आत्माविषेही सर्वकी प्रीति है.

सो प्रीति आनंदमें और दुःखके अभावमें होवै है, और में नहीं, और पदार्थमें जो प्रीति होवै, सो आनंद और दुःखके अभावके निमित्त होवै है. याते आनंद और दुःखके अभावसे औरमें प्रीति नहीं. याते सर्वकी प्रीतिका विषय जो आत्मा सो आनंदरूप है; और दुःखका अभाव आत्मारूप है, कल्पितका अभाव अधिष्ठानरूप होवै है, जैसे सर्पका अभाव रज्जुरूप है. याते कल्पित जो दुःख, ताका अभाव भी आत्मारूप है, इसरीतिसे आत्मा आनंदरूप है, और–

न्यायमतमें आत्माका आनंदगुण है, सो समीचीन नहीं काहेते, जो आनंदगुणकूं नित्य अंगीकार करें, तौ आगमापायी नहीं होवै, याते आत्माका स्वरूपही आनंद सिद्ध होवेगा. और नित्य आनंद न्यायमतमें है भी नहीं. और अनित्य जो कहैं; तो अनुकूलविषय और इंद्रियके संबंधसे आनंदकी उत्पत्ति अंगीकार करनी होवेगी. याते सुषुप्तिमें आनंदकाभान नहीं हुवा चाहिये.

काहेते,सुषुप्तिमें विषयका और इंद्रियका संबंध है नहीं; याते आत्माका आनंद गुण नहीं, किंतु आत्मा आनंद स्वरूप है, इसरीतिसे आत्मा सत् चित् आनन्दरूप है, सो सच्चिदानन्द परस्पर भिन्न नहीं, किंतु एकही है. जो आत्माके गुण होवें तौ परस्पर भिन्नभी होवें, और आत्मस्वरूप है, याते भिन्न नहीं. १ एकही आत्मा निवृत्तिरहित है, याते सत् कहिये है. और २ जडसे विलक्षण प्रकाशरूप है, याते चित् कहिये है. और ३ दुःखसे विलक्षण मुख्यप्रीतिका विषय है, याते आनंद कहिये है. जैसे उष्णप्रकाश रूप अग्नि है, तैसे सच्चित्आनंदरूप आत्मा है. और सच्चित् आनंदस्वरूपही शास्त्रमें ब्रह्म कह्या है याते ब्रह्म स्वरूप आत्मा है. और ब्रह्म नाम व्यापकका है. १देशते जाका अंत नहीं होवै, सो व्यापक कहिये है. तासे आत्मा जो भिन्न होवै, तो देशते अंतवाला होवैगा. २जाका देशते अंत होवै, ताका कालसे भी अंत होवै है; यह नियम है. याते अनित्य होवैगा. जाका कालसे अंत होवै सो अनित्य कहिये है. याते ब्रह्मसे भिन्न आत्मा नहीं और आत्मासे भिन्न जो ब्रह्म होवै; तो अनात्मा होवैगा. जो अनात्मा घटादिक हैं; सो जड हैं; याते आत्मासे भिन्न ब्रह्म भी जडही होवैगा.

याते आत्मासे भिन्न ब्रह्म भी नहीं; किंतु ब्रह्मस्वरूपही आत्मा है.

१ एकही चेतन सर्वप्रपंच और मायाका अधिष्ठान है याते ब्रह्म कहिये है. २ अविद्या और व्यष्टि देहादिकनका अधिष्ठान है याते आत्मा कहिये है. १ तत्पदका लक्ष्य ब्रह्म कहिये है,और२त्वंपदका लक्ष्य आत्मा कहिये है १ ईश्वरसाक्षी तत्पदका लक्ष्य है, और २जीवसाक्षी त्वंपदका लक्ष्य है. १ व्यष्टिसंघातउपहित चेतन जीवसाक्षी है, और २ समष्टिसंघातउपहित चेतन ईश्वरसाक्षी कहिये है.यद्यपि जीवकी और ईश्वरकी एकता बनै नहीं तथापि जीवसाक्षी और ईश्वरसाक्षीका उपाधिके भेदसे भेद है और स्वरूपसे एकही. ६. जैसे मठमें स्थित जो घटाकाश और मठाकाश तिन्हका उपाधिके भेदविना स्वरूपसे भेद नहीं तैसे आत्मा और ब्रह्मका उपाधिभेद विना भेद नहीं एकही वस्तु हैं. सो–

ब्रह्मरूप आत्मा अजन्मा कहिये जन्मरहित है जो आत्माका जन्म अंगीकार करैं, तौ अनित्य होवेगा सो वार्त्ता परलोकवादी जो आस्तिक हैं. तिन्हकूं इष्ट नहीं काहेते जो आत्मा उत्पत्तिनाशवान् होवै, तौ

अधिष्ठानरूप है और सर्पदण्डादिकनकी न्याईं व्यभिचारी नाम, रूप कल्पित हैं और अस्तिभातिप्रिय सच्चित् आनंदरूप है; याते आत्मस्वरूप है. इस रीतिसे सच्चित् आनंदरूप आत्माविषे संपूर्ण नामरूप प्रपंच कल्पित है. सो कल्पित पदार्थ कोई आत्माके जन्मका हेतु बनै नहीं, याते आत्मा अजन्मा है. जा वस्तुका जन्म होवै, ताहीके सत्ता, वृद्धि, परिणाम, अपक्षय, विनाशरूप पांच विकार और होवै हैं. आत्माका जन्म होवै नहीं, याते उत्तर पांच विकार भी होवैं नहीं, इस रीतिसे अजन्मा कहिये जन्मादिक षट्विकारसे रहित आत्मा है. सत्ता नाम प्रगटताका है और अपक्षय नाम घटनेका है. सो,—

आत्मा असंग है. संग नाम संबंधका है. सो सजातीय, विजातीय, स्वगतपदार्थसे होवै है. जैसे १ घटका घटसे जो संबंध है, सो सजातीयसे संबंध है. और २ घटका पटसे जो संबंध, सो विजातीयसे संबंध है. ३ स्वगत नाम अवयवका है याते पटका तन्तुसे जो संबंध, सो स्वगतसे संबंध है. १ आत्मा दो अथवा अनंत होवैं, तो सजातीयसे आत्माका संबंध होवै, सो आत्मा एक है; याते सजातीय आत्मासे आत्माका संबंध नहीं और २ आत्मासे विजातीय अनात्मा है, सो मृगतृष्णाके जलकी न्याईं आत्मामें कल्पित है. ता कल्पितसे आत्माका संबंध बनै नहीं जैसे मृगतृष्णाके जलसे पृथिवीका संबंध होवै नहीं; जो संबंध होवै तौ ऊषरभूमि ता जलसे गीली हुई चाहिये. जैसे मृगतृष्णाके जलसे ऊषरभूमिका संबंध नहीं तैसे आत्मामें कल्पित जो विजातीय अनात्मा, तासे आत्माका

रज्जुका सामान्य ज्ञान कहै हैं. सो सामान्य इदम् अंश सत्य है. काहेते, रज्जुका ज्ञान हुयेसे अनंतर भी ता इदम् अंशकी प्रतीति होवै है. १ जैसे भ्रांतिकालमें "यह सर्प है" या रीतिसे सर्पादिकनसे मिलिके इदम् अंशकी प्रतीति होवै है. २ तैसे भ्रांतिकी निवृत्तिसे अनंतर भी, "यह रज्जु है" या रीतिसे रज्जुके साथ मिलिके इदम् अंशकी प्रतीति होवै है. जो इदम् अंश भी मिथ्या होवे, तो सर्पादिकनकी न्याईं भ्रांतिकी निवृत्तिसे अनंतर ताकी भी प्रतीति नहीं हुई चाहिये. याते सर्पादिकभ्रांतिमें व्यापक जो इदम् अंश सो सत्य है और अधिष्ठान रज्जुरूप है और परस्पर व्यभिचारी जो सर्पादिक, सो कल्पित हैं.

तैसे सर्वपदार्थनमें पांच अंश हैं; १ एक नाम २ और रूप ३ और अस्ति ४ तथा भाति ५ और प्रिय. १ "घट" यह दो अक्षर नाम, और २ "गोल" रूप ३ "घट है" यह अस्ति और ४ "घट प्रतीत होवै है" यह भाति, और ५ "घट, प्रिय है" यह आनंद, (सर्पादिक भी सर्पिणी आदिकनकूं प्रिय हैं.) इस रीतिसे सर्वपदार्थनमें पांच अंश हैं. तिन्ह विषे अस्ति-भाति-प्रिय-रूप तीनि अंश सर्व पदार्थनमें व्यापक हैं और नाम, रूप व्यभिचारी हैं. जो वस्तु कहूं होवै और कहूं नहीं होवै, सो व्यभिचारी कहिये है. घट नाम और गोल रूप, पटविषे नहीं है. पट नाम और ताका रूप घटविषे नहीं हैं. इस रीतिसे सर्वपदार्थनविषे नाम, रूप अंश व्यभिचारी हैं और अस्ति-भाति-प्रिय-रूप सर्वविषे अनुगत हैं. जैसे सर्पदंडादिकनमें अनुगत इदम् अंश सत्य और अधिष्ठान है तैसे सर्व पदार्थनमें अनुगत अस्तिभातिप्रियरूप सत्य है और

अधिष्ठानरूप है और सर्पदण्डादिकनकी न्याईं व्यभिचारी नाम, रूप कल्पित हैं और अस्तिभातिप्रिय सच्चित् आनंदरूप है; याते आत्मस्वरूप है. इस रीतिसे सच्चित् आनंदरूप आत्माविषे संपूर्ण नामरूप प्रपंच कल्पित है. सो कल्पित पदार्थ कोई आत्माके जन्मका हेतु बनै नहीं, याते आत्मा अजन्मा है. जा वस्तुका जन्म होवै, ताहीके सत्ता, वृद्धि, परिणाम, अपक्षय, विनाशरूप पांच विकार और होवै हैं. आत्माका जन्म होवै नहीं, याते उत्तर पांच विकार भी होवैं नहीं, इस रीतिसे अजन्मा कहिये जन्मादिक षट्विकारसे रहित आत्मा है. सत्ता नाम प्रगटताका है और अपक्षय नाम घटनेका है. सो,–

आत्मा असंग है. संग नाम संबंधका है. सो सजातीय, विजातीय, स्वगतपदार्थसे होवै है. जैसे १ घटका घटसे जो संबंध है, सो सजातीयसे संबंध है. और २ घटका पटसे जो संबंध, सो विजातीयसे संबंध है. ३ स्वगत नाम अवयवका है याते पटका तन्तुसे जो संबंध, सो स्वगतसे संबंध है. १ आत्मा दो अथवा अनंत होवैं, तो सजातीयसे आत्माका संबंध होवै, सो आत्मा एक है; याते सजातीय आत्मासे आत्माका संबंध नहीं और २ आत्मासे विजातीय अनात्मा है, सो मृगतृष्णाके जलकी न्याईं आत्मामें कल्पित है. ता कल्पितसे आत्माका संबंध बनै नहीं जैसे मृगतृष्णाके जलसे पृथिवीका संबंध होवै नहीं; जो संबंध होवै तौ ऊषरभूमि ता जलसे गीली हुई चाहिये. जैसे मृगतृष्णाके जलसे ऊषरभूमिका संबंध नहीं तैसे आत्मामें कल्पित जो विजातीय अनात्मा, तासे आत्माका

संबंध नहीं३जो आत्माके अवयव होवैं तौ आत्माका स्वगतसे संबंध होवै. आत्मा नित्य है याते निरवयव है. ताका स्वगतसे संबन्ध बनै नहीं. इस रीतिसे सजातीय विजातीय स्वगतसंबन्ध आत्माविषे नहीं, याते असंग है. इसरीतिसे, हे शिष्य! सच्चित्आनंदब्रह्मरूप, जन्मादिकविकाररहित, असंग आत्मा है, "सो तू है." यह प्रथम प्रश्नका अर्द्ध दोहेसे आचार्यने उत्तर कह्या.

"जगत्का कर्त्ता कौन है?" यह द्वितीय प्रश्नका उत्तर अर्द्ध दोहेसे कहै हैं-

दोहार्द्ध।

विभु चेतन माया करै, जगको उत्पति भंग॥

टीका-विभु कहिये व्यापक जो चेतन,ताके आश्रित और ताकूं विषय करनेवाली माया कहिये, सत् असत्से विलक्षण अद्भुतशक्तिरूप अज्ञान; तासे जगत्की उत्पत्ति भंग होवै है.उत्पत्ति और भंग कहनेते स्थितिका ग्रहण अर्थते होवै है. याते यह अर्थ सिद्ध हुआ-१मायायुक्त जो चेतन सो ईश्वर कहिये है. २ सो ईश्वर जगत्की उत्पत्ति पालन नाशका हेतु है. या कहनेते १"जगत्का कोई कर्त्ता है, अथवा आपसे होवै है" याका उत्तर कह्या और २ "जगत्का कर्त्ता कोई जीव

है, अथवा ईश्वर है?" याका भी उत्तर कह्या.

जगत्का कर्त्ता ईश्वर है, आपसे होवै नहीं. जो कर्त्तासे विना जगत् होवै तौ कुलालविना घट हुआ चाहिये. याते जगत्का कोई कर्त्ता है. १ सो कर्त्ता सर्वज्ञ है. काहेते, जो कार्यका कर्त्ता होवै सो ता कार्यकूं और ताके उपादानकूं जानिके करै है. याते जगत्का कर्त्ता भी जगत्कूं और जगत्के उपादानकूं जानिके करै है. इसरीतिसे जगत्का कर्त्ता जगत्कूं, और जगत्के उपादानकूं जानै है; याते सर्वज्ञ है. और २ सर्वशक्तिमान् है. काहेते जो अल्पशक्तिवाले जीव हैं, तिन्हसे या जगत्की रचना मनसे भी चिंतन होवै नहीं, याते अद्भुत जगत्का कर्त्ता अद्भुतशक्तिवाला है. इस रीतिसे जगत्का कर्त्ता सर्वशक्तिमान् है. और ३ स्वतंत्र है. काहेते, जो न्यूनशक्तिवाला होवै, सो पराधीन होवै है. और सर्वशक्तिवाला पराधीन होवै नहीं; याते स्वतंत्र है. इस रीतिसे जगत्का कर्त्ता सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान् स्वतंत्र है, ताहीकूं ईश्वर कहैं हैं. और अल्पज्ञ अल्पशक्तिमान् पराधीनकूं जीव कहैं हैं. यद्यपि अल्पज्ञतादिक जीवमें भी परमार्थसे नहीं, तथापि अविद्याकृत मिथ्या अल्पज्ञतादिक जीवमें प्रतीत होवैं हैं; याते जीवम

कहिये हैं. अविद्याकृत अल्पज्ञतादिकनकी जो भ्रांति सोई जीवता है. सो अल्पज्ञतादिकनकी भ्रांति ईश्वरमें है नहीं; किंतु मायाकृत सर्वज्ञतादिक ईश्वरमें हैं. यह वार्त्ता विस्तारसे आगे प्रतिपादन करैंगे. इस रीतिसे जगत्का कर्त्ता जीव नहीं; ईश्वर है.

सो ईश्वर एकदेशमें स्थित नहीं, किंतु सर्वत्र व्यापक है. जो एकदेशमें अंगीकार करैं, तौ जा वस्तुका देशते अंत होवै, ताका कालसे भी अंत होवैहै; याते अनित्य होवेगा. जो अनित्यहोवै सो कर्त्तासेजन्य होवै है याते ईश्वरका भी कर्त्ता अंगीकार करना होवेगा सो ईश्वरका कर्त्ता बनै नहीं; काहेते, १आप तो अपना कर्त्ता बने नहीं. जो अपना कर्त्ता आपही अंगीकार करैं तो आत्माश्रय दोष होवेगा. आपही क्रियाका कर्त्ता, (आश्रय) और आप ही क्रियाका कर्म क्रिया विषयरूप कार्य होवै. तहां आत्माश्रय होवै है. जैसे कुलाल क्रियाका कर्त्ता है, और घट कर्म हैं तैसे क्रियाका कर्त्ता और कर्म भिन्न होवै हैं, एक बनै नहीं याते आत्माश्रय दोष है कर्म नाम कार्यका है, और कार्यके विरोधीका नाम दोष है आत्माश्रय कार्यका विरोधी है, याते दोष है, याते २ईश्वरका कर्त्ता अन्य अंगीकार करना होवेगा

सो अन्य भी प्रथम कर्ताकी न्याई कर्ता-जन्यही कहना होवेगा सो ताका कर्त्ताभी प्रथमकी न्याई तासे भिन्नही कहना होवेगा:सो प्रथम जो ईश्वर है ताकूं द्वितीयकर्त्ताका कर्त्ता अंगीकार करैं; तो अन्योन्याश्रयदोष होवेगा,याते३तृतीय कर्त्ता और अंगीकार करना होवेगा. ता तृतीयका कर्त्ता जो द्वितीय मानैं;तब तोअन्योन्याश्रयदोषहोवै,और प्रथममानैं तब चक्रिकादोष होवेगा. जैसे चक्रका भ्रमण होवै है तैसे प्रथमकर्त्ता द्वितीयजन्य और द्वितीयकर्त्ता तृतीय जन्य, और तृतीय प्रथमजन्य,सो प्रथम फिर द्वितीयजन्य,इसरीतिसे कार्यकारणभावका भ्रमण होवेगा,चक्रिकास्थानमें कोई भी सिद्ध होवे नहीं,सर्वकी परस्पर अपेक्षा है४अन्योन्याश्रयमें दोकी परस्पर अपेक्षा है,एककी सिद्धि हुये बिनाअन्यकी सिद्धि होवै नहीं.याते,जैसे कुलालकाकर्त्ता आप नहीं किंतु ताका पिता है,तैसे प्रथम ईश्वरकर्त्ताका अन्य कर्त्ता है,और कुलालका पिता अपने पुत्रसे उत्पन्न होवै नहीं,किंतु अन्यपितासे उत्पन्न होवै है.तैसे द्वितीयकर्त्ता प्रथमकर्त्तासे उत्पन्न होवै नहीं किंतु अन्यकर्त्तासेही कहना होवेगा. और कुलालका पितामह, कुलाल और ताके पितासे उत्पन्न होवै नहीं, किंतु चतुर्थ जो कुलालका

प्रपितामह, तासे उत्पन्न होवै है; तैसे तृतीयकर्त्ता भी प्रथम और द्वितीय कर्त्तासे उत्पन्न होवै नहीं. याते चतुर्थ कर्त्ता और अंगीकार करना होवैगा.ता चतुर्थका कर्त्ता और पंचम मानना होवेगा, याते अनवस्थादोष होवैगा.धाराका नाम अनवस्था है. जो कर्त्ताकी धारा अंगीकार करैं, तौ कौनसा कर्त्ता जगत् करै है, यह निर्णय नहीं होवेगा. ५ किसीएककूं जगत्का कर्त्ता मननेमें कोई युक्ति नहीं. ता युक्तिके अभावका नामही विनिगमनाविरह कहैं हैं.और ६ धाराकी कहूं विश्रांति अगीकार करैं,तो जा कर्त्तामें धाराका अंत अंगीकार किया, सोई कर्त्ता जगत्का मानने योग्य है. पूर्व सारे निष्फल होवेंगे, याका नामही प्राग्लोप कहैं हैं पिछलेके अभावका नाम प्राग्लोप है. इस रीतिसे ईश्वरका देशते अंत अंगीकार करैं तो उत्पत्ति अंगीकार करनी होवैगी. और उत्पत्ति अंगीकार करैं तौ आत्माश्रयादि षट् दोष होवेंगे. यातें ईश्वरका देशते अंत नहीं,किंतु व्यापक है,याहीते नित्य है.

ता व्यापक ईश्वरका और जीवका स्वरूपसे भेद नहीं, किंतु उपाधिसे भेद है.काहेते,१अवच्छेदवादमें,मायाविशिष्टचेतनईश्वर कहैंहैं;और अविद्याविशिष्टचेतन जीव

कहैं हैं. २ आभासवादमें माया और आभासविशिष्टचेतन ईश्वर कहैं हैं; और आभाससहित अविद्याविशिष्टचेतनकूं जीव कहैं हैं. १ आभासवादमें आभाससहित अविद्या और मायाका भेद है; चेतनका नहीं. २ तैसे अवच्छेदवादमें भी अविद्या और मायाका भेद है; स्वरूपसे चेतनका भेद नहीं. ३ और अज्ञानमें चेतनका प्रतिबिंब जीव है; और बिम्ब ईश्वर है. या पक्षमें भी चेतनका स्वरूपसे भेद नहीं; किंतु एकही चेतनमें जीवपना और ईश्वरपना आरोपित है. यह वार्ता आगे कहैंगे इसरीतिसे जगत्‌का कर्त्ता सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान् स्वतंत्र ईश्वर है. सो ईश्वर व्यापक है, ताका और जीवका विशेषणमात्रसे भेद है; और स्वरूपसे अभेद है. यह द्वितीय प्रश्नका उत्तर कह्या.

"मोक्षका साधन ज्ञान है, अथवा कर्म है अथवा उपासना है अथवा दो हैं?" याका उत्तर कहैं हैं:-

दोहा।

हेतु मोक्षको ज्ञान इक, नहीं कर्म नहिं ध्यान॥
रज्जु सर्प तबही नशै, होय रज्जुको ज्ञान॥

टीका-मुक्तिका हेतु कर्म और ध्यान कहिये, उपासना नहीं; किंतु ज्ञानही हेतु है, काहेतें, जो आत्मामें

बंध सत्य होवै तौ ताकी निवृत्तिरूप मोक्ष ज्ञानसे होवै नहीं किंतु कर्म अथवा उपासनाते होवै, सो बन्ध आत्मामें सत्य है नहीं; किंतु रज्जु सर्पकी न्याई मिथ्या है, ता मिथ्याकी निवृत्ति अधिष्ठानज्ञानसेही बनै है, कर्म अथवा उपासनासे नहीं, जैसे रज्जुका सर्प किसी क्रियाते दूरि होवै नहीं, केवल रज्जुके ज्ञानसे दूरिहोवैतैसे आत्माके अज्ञानसे प्रतीत जो होवै है बन्ध, ता बन्धकी प्रतीति और अज्ञान आत्माके ज्ञानसे ही दूरि होवै है.

१जो कर्मका फल मोक्ष होवै तो मोक्षअनित्यहोवैगा, काहेतेयह नियम है:--जो कृषिआदि कर्मका फल अन्नादिक हैं; सोअनित्य हैं, और यज्ञादिककर्मका फल स्वर्गादिक भी अनित्य हैं, जो मोक्ष भी कर्मका फल मोक्ष नहीं. २ तैसे उपासनाका फल जो अंगीकार करैं तो भी मोक्ष अनित्य होवेगा. काहेते उपासना भी मानस कर्मही है; और कर्मका फल अनित्य होवै है; याते उपासनारूप कर्मका फल भी मोक्ष नहीं और--

कर्मकर्त्ताकूं कर्मसे पांचप्रकारका उपयोग होवै है. १ पदार्थकी उत्पत्ति; २ तथा नाश, ३ अथवा पदार्थकी प्राप्ति, ४ वा पदार्थका विकार ५ तैसे संस्कार. अन्यरूपकी प्राप्तिका नाम विकार है. संस्कार दो प्रकारका होवै है. मलकी निवृत्ति और गुणकी उत्पत्ति यह पांच

प्रकारका कर्मसे उपयोग होवै है, सो मुमुक्षुकूं कोई भी बनै नहीं, याते मुमुक्षुज्ञानके साधन श्रवणादिकविषे ही प्रवृत्त होवै, और कर्ममें नहीं १ जैसे कुलालके कर्मते कुलालकूं घटकी उत्पत्ति उपयोग होवै है, तैसे मुमुक्षुकूं कर्मते मोक्षकी उत्पत्ति उपयोग बनै नहीं. काहेते, जो अनर्थकी निवृत्ति, और परमानंदकी प्राप्तिरूप मोक्ष है, सो अनर्थकी निवृत्ति आत्मामें नित्यसिद्ध है. जैसे रज्जुमें सर्पकी निवृत्ति नित्यसिद्ध है और आत्मा परम आनन्दस्वरूप है. याते परमानंदकी प्राप्ति भी नित्यसिद्ध है, इसरीतिसे स्वभावसिद्ध मोक्षकी कर्मसे उत्पत्ति बने नहीं. जो वस्तु आगे सिद्ध नहीं होवै ताकी कर्मसे उत्पत्ति होवै है. और सिद्धवस्तुकी उत्पत्ति होवै नहीं. और–

वेदांतश्रवणभी मोक्षकी उत्पत्तिके निमित्त नहीं कह्या, किंतु आत्मा नित्यमुक्त है, किंचित्मात्र भी कर्तव्य नहीं इस वार्त्ताके जाननेवास्ते श्रवण है, यह जानिके कर्तव्यभ्रांति दूरि होवै है. और वेदांतश्रवणसे अनंतर भी जिनकूं कर्तव्यप्रतीति होवै है; तिन्हने तत्त्व जाना नहीं; इसीकारणते नित्यनिवृत्त जो अनर्थ, ताकी निवृत्ति, और नित्यप्राप्त आनंदकी प्राप्ति, वेदांतश्रवणका फल देवगुरुने नैष्कर्म्यसिद्धिमें कह्या है. याते मोक्षकी उत्पत्तिरूप कर्मका उपयोग मुमुक्षुकूं बनै नहीं.

२ जैसे दंडके प्रहाररूप कर्मका घटका नाशरूप उ-

पयोग होवै है,तैसे मुमुक्षकूं कर्मते किसीपदार्थका नाश रूप उपयोग भी बनै नहीं. काहेते, अन्यपदार्थका नाश तो मुमुक्षुकूं वांछित है नहीं,बंधका नाशही कर्मसे उपयोग कहना होवैगा. सो बंध आत्मामें है नहीं मिथ्या प्रतीति होवै है. ता मिथ्याप्रतीतिका नाश कर्मसे बनै नहीं, और आत्माके यथार्थ ज्ञानसे तो मिथ्याप्रतीतिका नाश बनै है. याते मुमुक्षुकूं पदार्थका नाशरूप उपयोग भी कर्मसे बनै नहीं. ३जैसे गमनरूप कर्मते ग्रामकी प्राप्ति होवै है तैसे मोक्षकी प्राप्तिरूप उपयोग कर्मसे बनै नहीं काहेते जो आत्मा नित्यमुक्त हैताकूं मोक्षकी प्राप्तिकहनाबनै नहीं,जाकूं बंध होवै ताकूं मोक्षकी प्राप्ति कहना बनै है, और आत्मामें बंध है नहीं, याते मोक्षकी प्राप्तिरूप कर्मका उपयोग मुमुक्षुकूं बनै नहीं.

४ जैसे पाकरूप कर्मसे अन्नका विकाररूप उपयोग पाचककूं होवै है, तैसे मुमुक्षुकूं कर्मसे विकाररूप उपयोग भी बनै नहीं. काहेते; और तो कोई विकार बनै नहीं, जो आत्मामें प्रथम बंध अंगीकार करैं; और मोक्षदशामें चतुर्भुजादिक विलक्षणरूपकी प्राप्ति अंगीकार करै, तौ अन्यरूपकी प्राप्तिरूप विकार कर्मका उपयोग मुमुक्षुकूं बनै. सो अन्यरूपकी प्राप्ति आत्मामें अंगीकार नहीं याते कर्मसे विकाररूप उपयोग भी मुमुक्षुकूं बनै नहीं.

९ जैसे वस्त्रके क्षालनरूप कर्मका मलकी निवृत्तिरूप संस्कार होवै है तैसे मलकी निवृत्तिरूप संस्कार भी मुमुक्षुकूं कर्मसे उपयोग नहीं.काहेते,अन्यके मलकीनिवृत्तितो मुमुक्षुकूं वांछित है नहीं,आत्माके मलकी निवृत्ति कहनी होवैगी.सो आत्मा नित्यशुद्ध है,ताकेविषे मल है नहीं. याते मलकी निवृत्तिरूप संस्कार बनै नहीं, और अंतःकारणविषे पापरूप जो मल है, ताकी निवृत्ति जो कर्मसे उपयोग कहैं; तो यह वार्ता सत्य है, परंतु शुद्धअंतःकरणवाला जो मुमुक्षु है, ताका विचार करै हैं.ताके अंतःकरणमें भी पाप है नहीं,याते पापरूप मलकी निवृत्तिरूप संस्कार भी मुमुक्षुकूंकर्मसेउपयोगबनै नहीं, और अज्ञानकूं जो मल कहै, तोअज्ञानआत्मामें है परंतु ताकी निवृत्ति कर्मसे होवै नहीं. काहेते अज्ञानका विरोधी ज्ञान है; कर्म नहीं. याते मुमुक्षुकूं मलकी निवृत्तिरूप संस्कार कर्मसे उपयोग बनै नहीं. जैसे वस्त्रका कुसुंभमें मज्जनरूप कर्मका रक्तगुणकी उत्पत्तिरूप संस्कार उपयोग होवै है, तैसे गुणकी उत्पत्तिरूप संस्कार मुमुक्षुकूं कर्मसे उपयोग बनै नहीं,काहेते, अन्यविषे ता गुणकी उत्पत्ति कहना बनै नहीं; आत्माविषे ही कहना होवैगा. सो आत्मा निर्गुण है;ताकेविषे गुणकी उत्पत्ति बनै नहीं, याते मुमुक्षुकूं गुणकी उत्पत्तिरूप

संस्कार भी कर्मका उपयोग बनै नहीं. या प्रकरणमें उपयोग नाम फलका है. कर्मका पांचही प्रकारका फल होवै है, और नहीं. सो पांचप्रकारका फल कर्मका मुमुक्षुकूं बनै नहीं, याते कर्मकूं त्यागिके ज्ञानके साधन श्रवणविषेही मुमुक्षु प्रवृत्त होवै. उपासना भी मानसकर्मही है, याते ताके खंडनमें पृथक्युक्ति नहीं कही. इसरीतिसे केवल कर्म अथवा उपासना मोक्षका हेतु नहीं; किंतु केवल ज्ञान है. और [पूर्वपक्षीः–] कोई कर्मउपासना सहित ज्ञानकूं मोक्षके हेतु अंगीकार करैं हैं, और ताकेविषे युक्तिदृष्टांत भी कहै हैं. १ दृष्टांतः–जैसे आकाशमें पक्षीका एकपक्षसे गमन होवै नहीं किंतु दो पक्षसे गमन होवै है; तैसे मोक्षलोककूं भी एक ज्ञानरूपपक्षसे गमन होवै नहीं किंतु एक पक्ष तो उपासनासहित कर्म है, और द्वितीय पक्ष ज्ञान है. उपासना भी मानसकर्मही है, याते एकही पक्ष है.

२ अन्य दृष्टांतः-जैसे सेतुके दर्शनसे पापका नाश होवै है. सो सेतुका दर्शन भी प्रत्यक्षरूप ज्ञान है, और श्रद्धाभक्तिसहित गमनादिनियमकी अपेक्षा करै है. जो श्रद्धादिक रहित पुरुष होवै ताकूं सेतुदर्शनसे फल होवै नहीं. जैसे सेतुका प्रत्यक्षज्ञान श्रद्धानियमादिकनकी

फलकी उत्पत्तिमें अपेक्षा करै है, तैसे ब्रह्मज्ञान भी मोक्षरूपफलकी उत्पत्तिमें कर्मउपासनाकी अपेक्षा करै है और केवल ज्ञानसे जो मोक्ष अंगीकार करैं हैं, सो भी ज्ञानका हेतु तो कर्मउपासना मानैं हैं. शुद्ध और निश्चल अंतःकरणमें ज्ञान होवै है. सो अंतःकरण शुभकर्मसे शुद्ध होवै है; और उपासनासे निश्चल होवै है. इसरीतिसे अंतःकरणकी शुद्धि और निश्चलताद्वारा कर्मउपासना ज्ञानके हेतु अंगीकार किये हैं.

जैसे ज्ञानके हेतु कर्मउपासना अंगीकार किये, तैसे ज्ञानके फल मोक्षके हेतु अंगीकार करने योग्य हैं.

१ दृष्टांत—जैसे जलका सेचन वृक्षकी उत्पत्तिका हेतु, और वृक्षके फलकी उत्पत्तिका भी हेतु है. जो वनके वृक्षनके जलसेचन विना फल होवे है, सो भी वृक्षके मूलमें नीचे जलका संबंध है; याते फल होवै है, और जलके संबंध विना वृक्षही सूखजावे, फल होवै नहीं.

तैसे कर्म उपासना ज्ञानकी उत्पत्तिके हेतु हैं; और ज्ञानका फल जो मोक्ष, ताके भी हेतु हैं. इसरीतिसे कर्म उपासना ज्ञान तीनों मोक्षके हेतु हैं. याते ज्ञानवान्‌भी कर्म करै.

अथवा, कर्मउपासना ज्ञानकी रक्षाके हेतु हैं; काहेते, जोकर्म उपासनाका ज्ञानवान् त्याग करै, तो उत्पन्नहुवा

ज्ञान भी जलके विना वृक्षकी न्याईं नष्ट होय जावेगा काहेते, शुद्ध अंतः-करणमें ज्ञान होवै है और शुभकर्म नहीं करे तो ज्ञानवान्कूं पाप होवेगा और उपासनाके त्यागसे अंतःकरण फेरि चंचल होय जावेगा ता मलिन और चंचलअंतःकरणमें ज्ञान रहे नहीं. जैसे सूखी भूमिमें उत्पन्नहुवा वृक्ष भी रहै नहीं.

२ अन्य दृष्टांत–जैसे संस्कारसे शुद्ध किये स्थानमें वेदपाठी ब्रह्मचारी निवास करै है और शुद्ध किया स्थान-भी किसी निमित्तसे फेरि मलिन होय जावे, तो ता स्थानकूं त्यागि देवे है तैसे कर्मके त्यागसे मलिन और उपासनाके त्यागसे चंचलहुवा जो अंतःकरण ताके विषे ज्ञान रहै नहीं. याते कर्म और उपासना ज्ञानकी रक्षाके हेतुहैं. इसरीतिसे १ कर्म उपासना ज्ञान, तीनोंमोक्षके हेतुअंगीकार करैं, २ तथा ज्ञानकी रक्षाके हेतुकर्मउपासना अंगीकार करैं, और केवलज्ञान मोक्षका हेतु अंगीकार करैं, दोनों प्रकारसे ज्ञानवान्कूं कर्मउपासना कर्तव्य है. याकूं समुच्चयवाद कहैं हैं, [सिद्धान्तीः–]सो समीचीन नहीं. काहेते देहसे भिन्न जो आत्मा नहीं जाने, तासे कर्म होवै नहीं. काहेते जन्मांतरके भोगके निमित्त कर्म करैं हैं. और देहका अग्निविषे दाह होवै है; तासे जन्मांतरका भोग बनै नहीं, याते १ शरीरसे भिन्न आत्माका ज्ञान कर्मका हेतु है. सो शरीरसे भिन्न भी

आत्मा का कर्ताभोक्तारूपकरिकै ज्ञान कर्मका हेतु है "मैं पुण्य पापका कर्त्ता हूँ,और पुण्यपापका फल मेरेकूं होवैगा," ऐसा जाकूं ज्ञान है, सो कर्म करे है. और ज्ञानवानकूं ऐसा आत्माका ज्ञान है नहीं,किंतु पुण्यपाप और सुखदुःखतै रहित असंग ब्रह्मरूप आत्मा है ऐसा वेदांतवाक्यसें ज्ञान होवै है. सो ज्ञान कर्मका हेतु नहीं उलटा विरोधी है. याते ज्ञानवान्‌से कर्म होवै नहीं और

२कर्त्ता कर्मफलका भेदज्ञान कर्मका हेतु है.सो कर्ता कर्मफलकी ज्ञानवान्‌कूं आत्मासे भिन्न प्रतीति होवै नहीं, संपूर्ण आत्मस्वरूपही प्रतीत होवै है, याते भी ज्ञान-वान्‌से कर्म होवै नहीं. और भाष्यकारने बहुत प्रकारसे ज्ञानवान्‌कूंकर्मका अभाव प्रतिपादन किया है. कर्मका और ज्ञानका फलसे विरोध है. याते भी ज्ञानकर्मका समुच्चय बनै नहीं. १ कर्मका फल अनित्य संसार है; और २ ज्ञानका फल नित्य मोक्ष है, और ३ आत्मामें जाति आश्रम अवस्थाका अध्यास कर्मका हेतु है. काहेते, जाति आश्रम अवस्थाके योग्य भिन्न भिन्न कर्म कहे हैं.याते जाति आदिकनका अध्यासकर्मकाहेतु है यद्यपि जाति आश्रम अवस्था देहके धर्म हैं, और कर्मीकूं देहमें आत्मा बुद्धि है नहीं, किंतु देहसे भिन्न कर्त्ता आत्मा कर्मी जानै है. यह वार्त्ता पूर्व कही. याते जाति आश्रम अवस्थाकी प्रतीति आत्मामें कर्मीकूं

भी बनै नहीं, तथापि देहसें भिन्न आत्माका कर्मीकूं अपरोक्षज्ञान नहीं, किंतु शास्त्रसे परोक्षज्ञान है और देहमें आत्मज्ञान अपरोक्ष है. जो देहसे भिन्न आत्माका अपरोक्षज्ञान होवै, तो देहमें अपरोक्ष आत्मज्ञानका बिरोधी होवे, और परोक्षज्ञानका अपरोक्षज्ञानसे विरोध है नहीं, याते देहसे भिन्न कर्त्ता आत्माका ज्ञान, और देहमें आत्मबुद्धि दोनों एककूं बनैं हैं. दृष्टांतः—मूर्तिमें ईश्वर ज्ञान शास्त्रसे परोक्ष है, और पाषाणबुद्धि अपरोक्षःहै; तिन्हका विरोध नहीं, दोनों एककूं होवैं हैं. और रज्जुमें जाकूं सर्पसे अपरोक्ष भेदज्ञान है; ताकूं अपरोक्ष सर्पभ्रांति दूरि होवै है. याते यह नियम सिद्ध हुवाः—अपरोक्षभ्रांतिका अपरोक्षज्ञानसे विरोध है परोक्षसे नहीं. याते देहसे भिन्न आत्माका परोक्षज्ञान और देहमें अपरोक्षज्ञान बनै है. सो दोनों कर्मके हेतु हैं. १ देहसे भिन्न भी कर्त्तारूपकरिके आत्माका ज्ञान कर्मका हेतु है. सो कर्त्तारूपकरिके आत्माका ज्ञान भ्रांतिरूप है. और भ्रांति विद्वानकूं है नहीं, याते कर्मका अधिकार नहीं. और देहमें अपरोक्षआत्मबुद्धि होवै तब देहके धर्म जाति अश्रम अवस्था प्रतीत होवै, सो देहमें आत्मबुद्धि भी विद्वान्कूं है नहीं किंतु ब्रह्मरूपकरिके आत्माका अपरोक्षज्ञान है. याते जाति आश्रम अवस्थाकी भ्रांतिके अभावते भी विद्वान्कूं कर्मका अ-

धिकार नहीं और उपासना भी "मैं उपासक हूं, देव उपास्य है" या बुद्धिसे होवै है. सो विद्वान्कूं उपास्य उपासकभाव प्रतीत होवै नहीं "देहादिकसंघात तो मरा और देवका स्वप्नकी न्याईं कल्पित है. और चेतन एक है." यह विद्वान्का निश्चय है.याते ज्ञानका उपासनासे विरोध है. और—पक्षीके गमनका दृष्टान्त भी बनै नहीं. काहेते,पक्षीके तो दो पक्ष एककालमें रहैं हैं, तिनका परस्पर विरोध नहीं,और ज्ञानका तो कर्मउपासनासे विरोध है, एककालमें बनै नहीं. और

ज्ञानमें कर्मउपासनाकी अपेक्षा नहीं।

सेतुके ज्ञानका दृष्टांत बनै नहीं.काहेते,सेतुका दर्शन दृष्टफलका हेतु नहीं. किंतु अदृष्टफलका हेतु है १प्रत्यक्ष जो फल प्रतीत होवै,सो दृष्टफल कहिये है. जैसे भोजनका फल तृप्ति प्रत्यक्षहै;याते भोजन दृष्टफलका हेतु है.२ तैसे सेतुके दर्शनसे प्रत्यक्षफल प्रतीत होवै नहीं. किंतु पापका नाशरूप फल शास्त्रसे जाना जावै है,जो शास्त्रसे फल जानिये, और प्रत्यक्ष प्रतीत होवै नहीं सो अदृष्टफल कहिये है.याते जैसे यज्ञादिक कर्म स्वर्गादिक अदृष्टफलके हेतु हैं, तैसे सेतुका दर्शनभी पापके नाशरूप अदृष्टफलका हेतु है, जो अदृष्टफलका हेतु होवै है, सो तो जितना फलकी उत्पत्तिमें शास्त्रने सहाय

बोधन किया है, ता सहित फलका हेतु होवै है, केवल नहीं. याते श्रद्धानियमादिकसहित सेतुका दर्शन पापनाशरूप फलका हेतुहै, श्रद्धानियमादिकरहित हेतु नहीं. काहेते, सेतुके दर्शनसे प्रत्यक्ष तो कोई फल प्रतीत होवै नहीं, केवल शास्त्रसे जाना जावै है. सो शास्त्र श्रद्धादिकसहित सेतुके दर्शनसे फल बोधन करै है, केवल दर्शनसे फलकी उत्पत्तिमें कोई प्रमाण नहीं. याते सेतुका दर्शनफलकी उत्पत्तिमें श्रद्धा नियमभक्तिकी अपेक्षा करैहै. और–

ब्रह्मविद्या अपने फलकी उत्पत्तिमें कर्मउपासनाकी अपेक्षा करै नहीं काहेते, जो ब्रह्मविद्याका फल भी स्वर्गकी न्याईं लोकविशेष अदृष्ट होवै, सोलोक विशेषभी केवल ब्रह्मविद्यासे शास्त्रने बोधन नहीं किया होवै, किंतु कर्मउपासनासहितसे बोधन किया होवै, तौ ब्रह्मविद्याभी सेतुके दर्शनकी न्याईं फलकी उत्पत्तिमें कर्मउपासनाकी अपेक्षा करै, सो ब्रह्मविद्याका फल मोक्ष, स्वर्गकी न्याईं लोकविशेषरूप अदृष्ट तो है नहीं, किंतु मोक्ष नित्यप्राप्त है. और भ्रांतिसे बंध प्रतीत होवै है, ता भ्रांतिकी निवृत्तिही ब्रह्मविद्याका फल है, सो भ्रांतिकी निवृत्ति केवल ब्रह्मविद्यासे हमारेकूं प्रत्यक्ष है. और रज्जुज्ञानसे सर्पभ्रांतिकी निवृत्ति सर्वकूं प्रत्यक्ष है. याते अधिष्ठान

ज्ञानका भ्रांतिकी निवृत्ति इष्टफल है, इष्टफलकी उत्पत्ति जितनी सामग्रीसे प्रत्यक्ष प्रतीत होवै है, सो सामग्री इष्टफलकी हेतु कहिये है. १ जैसे तुरीतंतुवेमसे पटकी उत्पत्ति प्रत्यक्ष है. याते तुरीतंतुवेम पटके हेतु हैं और २ केवलभोजनसे तृप्तिरूप फल प्रत्यक्ष प्रतीत होवै है. याते केवल भोजन तृप्तिका हेतु है. तैसे केवल अधिष्ठानज्ञानते भ्रांतिकी निवृत्ति प्रत्यक्ष प्रतीत होवै है याते केवल अधिष्ठानका ज्ञानही भ्रांतिकी निवृत्तिका हेतु है. जैसे रज्जुकाज्ञान भ्रांतिकी निवृत्तिमें अन्यकी अपेक्षा करै नहीं, तैसे बंधकी भ्रांतिका अधिष्ठान जो नित्यमुक्त आत्मा ताका ज्ञान भी बंधभ्रांतिकी निवृत्तिमें कर्मउपासनाकी अपेक्षा करै नहीं और–

१ ज्ञानके फल मोक्षकूं जो स्वर्गकी न्याईं लोकविशेष अदृष्ट अंगीकार करै है;सो वेदवाक्यसे विरुद्ध है काहेते ज्ञानवान्‌के प्राण किसीलोककूं गमन नहीं करते यह वेदमें कहा है. और २ लोकविशेष अंगीकार करनेते, स्वर्गकी न्याईं मोक्ष अनित्य होवेगा. याते लोकविशेषरूप मोक्ष नहीं. और ३ लोकविशेष जो मोक्ष अंगीकारकरै ताकूं भी केवल ज्ञानसेही मोक्षलोककी प्राप्ति अंगीकार करनी योग्य है. काहेते, जो शास्त्रने प्रतिपादन किया अर्थ होवै, सो शास्त्रके अनुसारही

अंगीकार करिये है, सो शास्त्र केवल ज्ञानसे मोक्ष कहै है, याते केवलज्ञान मोक्षका हेतु है, कर्म उपासना ज्ञान तीनों नहीं. और–

वृक्षका दृष्टांत भी बनै नहीं. काहेते यद्यपि जलका सेचन, वृक्षकी उत्पत्ति और रक्षामें हेतु है; तथापि वृक्षके फलकी उत्पत्तिमें नहीं, वृद्ध जो वृक्ष है. ताकेविषे जलका सेचन वृक्षकी रक्षाके निमित्त है, फलके निमित्त नहीं. जलसे पुष्ट जो वृक्ष, सोई फलका हेतु है, जलसेचन नहीं. तैसे कर्मउपासनाका भी ज्ञानकी उत्पत्तिमें उपयोग है, मोक्षमें नहीं. याते ज्ञानकी उत्पत्तिसे पूर्वही अंतःकरणकी शुद्धि और निश्चलताके निमित्त कर्मउपासना करै, ज्ञानसे अनंतर मोक्षके निमित्त नहीं.

ज्ञानकी उत्पत्तिसे पूर्व भी जितने अंतःकरणमें मल और विक्षेप होवैं तब पर्यंत ही करे. शुद्ध और निश्चल अंतःकरण जाका होवै, सो जिज्ञासु श्रवणके विरोधी कर्मउपासनाका त्याग करे मल नाम पापका है, सो अशुभवासनाका हेतु है. जबपर्यंत मल होवै, तबपर्यंत अशुभवासना होवै है. जब अशुभवासना होवै नहीं, तब मलका अभाव निश्चय करै. अंतःकरणकी चंचलता और एकाग्रता अनुभवसिद्धि है याते उत्तमजिज्ञासु और विद्वानकूं कर्मउपासना निष्फल है .और–

पूर्व जो कहा "ज्ञानकी रक्षाके निमित्त कर्मउपासना करै. जैसे जलसे उत्पन्न हुवा जो वृक्ष,ताकी जलसे रक्षा होवैहैं, जो जलका संबंध नहीं होवै तो वृद्ध वृक्ष भी सूखजावे है. तैसे कर्मउपासनासे उत्पन्न हुवा जो ज्ञान, ताकी कर्मउपासनासे रक्षा होवै है. जो ज्ञानी कर्मउपासना नहीं करै, तौ अंतःकरण मलिन और चंचल फेरि होय जावेगा, ता मलिन और चंचल अंतःकरणमें सूखी भूमिमें वृक्षकी न्याईं उत्पन्न हुवा ज्ञान भी नष्ट होय जावेगा.यातैं ज्ञानवान् भी कर्मउपासना करै."

सो बनै नहीं. काहेते आभाससहित अथवा चेतनसहित जो अंतःकरणकी "मैं असंग ब्रह्म हूं" यह वृत्ति, सो वेदांतका फलरूप ज्ञान है, ताका कर्मउपासनासे विना नाश होवैगा,अथवा चेतनस्वरूप ज्ञानका नाश होवैगा. जो ऐसे कहैं– स्वरूपज्ञान तो नित्य है, यातें ताका तो नाश और रक्षा बनै नहीं, परंतु वेदांतका फल जो ब्रह्मविद्यारूप ज्ञान है,ताकी कर्मउपासनासे उत्पत्ति होवै है, और कर्मउपासनाके त्यागसे उत्पन्न हुई विद्या भी नष्ट होय जावेगी याते ताकी रक्षाके निमित्त कर्मउपासना करै. सो बनै नहीं. काहेते १ एकवार उत्पन्न हुई जो अंतःकरणकी ब्रह्माकारवृत्ति तासे अज्ञान

और भ्रांतिका नाशरूप फल तिसही समय सिद्ध होवै है अज्ञान और भ्रांतिके नाशते अनंतर फेरि वृत्तिकी रक्षाका उपयोग नहीं, और २ अंतःकरणकी वृत्तिकी कर्मउपासनासे रक्षा बनै भी नहीं. काहेते, जब कर्मउपासनाका अनुष्ठान करेगा, तब कर्मउपासनाकी सामग्रीका ही वृत्तिरूप ज्ञान होवैगा, ब्रह्मका ज्ञान बनै नहीं. और वृत्ति हुयेते प्रथमवृत्ति रहै नहीं; याते कर्मउपासना, ज्ञानकी उत्पत्तिके तो परंपराते हेतु हैं, और उत्पन्न हुई वृत्तिके विरोधी हैं. याते कर्मउपासनाते ज्ञानकी रक्षा होवै नहीं और—

पूर्व जो कह्या "ज्ञानवान्कूं कर्मके त्यागसे पाप होवै है" सो वार्ता बनै नहीं. काहेते, १जो शुभकर्मका त्याग है, सो पापका हेतु नहीं, किंतु, निषिद्धं कर्मका अनुष्ठानही पापका हेतु है, यह वार्ता भाष्यकारनें बहुतप्रकारसे प्रतिपादन करी है; याते कर्मके त्यागसे पाप होवै नहीं और ज्ञानवान्कूं तो सर्वप्रकारसे पापका असंभव है, काहेते, पुण्य पाप और तिनका आश्रय अंतःकरण परमार्थसे हैं नहीं, अविद्यासे मिथ्याप्रतीति होवै है, सो अविद्या और मिथ्याप्रतीति ज्ञानवान्के है नहीं. याते ज्ञानवान्कूं शुभकर्मके त्यागसे अथवा अशुभके अनुष्ठानसे पाप बनै नहीं.

या स्थानमें यह सिद्धांत है—१मंद और२दृढ दोप्रकारका ज्ञान है.१ संशयादिक सहित जो ज्ञान, सो मंदज्ञान कहिये है;और २संशयादिक रहित ज्ञान दृढ कहिये है जाकूं दृढज्ञान होवै ताकूं किंचित्‌मात्र भी कर्त्तव्य नहीं एकवार उत्पन्न हुवा जो संशयादिकरहित अंतःकरणकी वृत्तिरूप ज्ञान, सोई अविद्याका नाश करिदेवै है. सो ज्ञान आप भी दूरि होय जावे तो भी भलेप्रकारसे जाने आत्मामें फेरि भ्रांति होवै नहीं.काहेते जो भ्रांतिका कारण अविद्या है, सो अविद्या एकवार उत्पन्न हुए ज्ञानसे नष्ट होय गई,याते भ्रांति और अविद्याके अभावते वृत्तिज्ञानकी आवृत्तिका कुछ उपयोग नहीं. और जीवन्मुक्तिके आनंदवास्ते जो वृत्तिकी आवृत्ति अपेक्षित होवै तो वारंवार वेदांतके अर्थका चिंतनही करै. वेदांतके अर्थ चिंतनसेही वारंवार ब्रह्माकारवृत्ति होवै है. कर्मउपासनाते नहीं. काहेते, कर्म और उपासनाका अंतःकरणकी शुद्धि और निश्चलताद्वाराही ज्ञानमें उपयोग है, और रीतिसे नहीं. और विद्वान्‌के अंतःकरणमें पाप और चञ्चलता हैं नहीं रागद्वेषद्वारा पाप और चञ्चलताका हेतु अविद्या है ता अविद्याका ज्ञानसे नाश होवै है. याते विद्वान्‌के पाप और चञ्चलताके अभावते कर्मउपासनाका उपयोग नहीं और—

जो कदाचित् ऐसे कहैं:—रागद्वेषादिक अंतःकरणके सहज धर्म हैं, जितने अंतःकरण हैं, उतने रागद्वेषका सर्वथा नाश ज्ञानवान्के भी होवै नहीं. तिन्ह रागद्वेषते ज्ञानवान्का भी अंतःकरण चञ्चल होवै है. यातें चंचलता दूरि करनेवास्ते ज्ञानवान् भी उपासना करै

यद्यपि ज्ञानवान्कूं अंतःकरणकी चंचलतासे विदेह मोक्षमें हानि नहीं. तथापि चंचल अंतःकरणमें स्वरूप-आनंदका भान होवै नहीं, याते चंचलता जीवन्मुक्तिकी विरोधी है, याते जीवन्मुक्तिके निमित्त चंचलता दूरि करने वासते उपासना करै सो बनै नहीं काहेते यद्यपि दृढबोध जाके अंतःकरणमें हुवा है, ताक समाधि और विक्षेप समान है याते अंतःकरणकी निश्चलताके निमित्त किसी यत्नका आरंभ विद्वानकूं बनै नहीं।

तथापि विद्वान्की प्रवृत्ति और निवृत्ति प्रारब्धके अधिन है प्रारब्धकर्म सबका विलक्षण है. १ किसी विद्वान्का जनकादिकनकी न्याईं भोगका हेतु प्रारब्ध है, और २ किसीका शुकदेव वामदेवादिकनकी न्याईं निवृत्तिका हेतु प्रारब्ध है. १जाके भोगका हेतु प्रारब्ध है ताकूं ता प्रारब्धसे भोगकी इच्छा और भोगके साधनका यत्न होवैहै और २जाके निवृत्तिका हेतु प्रारब्ध होवै, ताकूं जीवन्मुक्तिके आनंदकी इच्छा होवे है, और भोगमें ग्लानि

होवैहै.जाकूं जीवन्मुक्तिके आनंदकी इच्छा होवे सो ब्रह्माकारवृत्तिकी आवृत्तिके निमित्त वेदांतअर्थका चिंतनही करै; उपासना नहीं काहेते, अंतःकरणकी निश्चलतामात्रसे ब्रह्मानंदका विशेष रूपसे भान होवे नहीं. किंतु ब्रह्माकारवृत्तिसेही होवे है. सो ब्रह्माकारवृत्ति वेदांतचिंतनसेही होवै है, उपासनाते नहीं. और अंतःकरणकी चंचलता भी विद्वान्कूं वेदांतके चिंतनसेही दूरि होय जावैहै, याते अंतःकरणकी निश्चलताके निमित्त भी उपासनामें प्रवृत्ति होवे नहीं. इस रीतिसे दृढबोध जाके हुवा है, ताकी कर्मउपासनामें प्रवृत्ति होवै नहीं, और—

१ जाके मंदबोध है, सो भी मनन और निदिध्यासन ही करै, कर्म उपासना नहीं काहेते मंदबोध जाकूं हुआ है, सो उत्तम जिज्ञासु है ता उत्तम जिज्ञासुकूं मनननिदिध्यासनसे विना अन्य कर्तव्य नहीं, यह वार्ता शारीरकमें सूत्रकार और भाष्यकारने प्रतिपादन करी है. और २ विद्वान्कूं मनननिदिध्यासन भी कर्तव्य नहीं जो जीवन्मुक्तिके आनंदवास्ते विद्वान् मनननिदिध्यासनमें प्रवृत्त होवै है सो भी अपनी इच्छासे प्रवृत होवै है. और "मैं वेदकी आज्ञा नहीं करूंगा,तो मेरेकूं जन्म मरण संसार होवैगा"इस बुद्धिसे जो क्रिया करै

सो कर्तव्य कहिये है सो जन्मादिकनकी बुद्धि विद्वान्के होवै नहीं याते अपनी इच्छाते जो विद्वान् मनन निदिध्यासन करे सो कर्तव्य नहीं; इसरीतिसे मंदबोध अथवा दृढबोध जाके हुवा है तिसकूं कर्मउपासना कर्तव्य नहीं. और–

३ जाके बोध नहीं हुआ है; किंतु आत्माके जाननेकी तीव्र इच्छा है, भोगकी नहीं, ताका अंतःकरण शुद्ध है; याते सो भी उत्तमही जिज्ञासु है. ताकूं भी बोधके वास्ते श्रवणादिकही कर्तव्य हैं, कर्म उपासना नहीं. काहेते जो कर्मउपासनाका फल है, सो ताके सिद्ध है और ४ ज्ञानकी सामान्य इच्छाते जो श्रवणमें प्रवृत्त हुआ है, और अंतःकरण भोगनेमें आसक्त है, सो मन्दजिज्ञासु है सो भी श्रवणकूं त्यागिके फेरि कर्म उपासनामें प्रवृत्त होवे नहीं, जो कर्म उपासनाका फल अंतःकरणकी शुद्धि और निश्चलता है, सो ताकूं श्रवणसेही होजावेगा. श्रवणकी आवृत्तिसे अंतःकरणके दोष दूरि होयके इस जन्मविषे अथवा अन्य जन्मविषे अथवा ब्रह्मलोकविषे ज्ञान होवे है, आवृत्ति नाम वारंवारका है, और श्रवणकूं त्यागिके जो कर्मउपासनामें प्रवृत्त होवे है, सो आरूढपतित कहियेहैं, १-२ इसरीतिसे ज्ञानवान् और उत्तमजिज्ञासुका कर्मउपास-

नाविषे अधिकार नहीं. और ३ मन्दजिज्ञासु भी जो वेदांतश्रवणमें प्रवृत्त हुवा है, ताका अधिकार नहीं.. और ४ ज्ञानकी जाकूं इच्छा तो है, परंतु भोगमें बुद्धि आसक्त है याते श्रवणमें प्रवृत्त नहीं हुवा ऐसा जो मंदजिज्ञासु ताका निष्कामकर्म और उपासनामें अधिकार है. और-

५ जाकी भोगविषे ही आसक्ति है, ज्ञानकी इच्छा नहीं. ऐसा जो बहिर्मुख है ताका सकामकर्मविषे भी अधिकार है याते ज्ञानवान्कूं कर्मउपासनाका अधिकार नहीं. कर्म उपासनाका ज्ञान विरोधी है. और-

दृढबोधके कर्म उपासना विरोधी नहीं परंतु मंदबोधके विरोधी हैं ॥

कर्मउपासना भी अंतःकरणकी शुद्धि और निश्चलताद्वारा ज्ञानकी उत्पत्तिके तो हेतु हैं; परंतु ज्ञानकी उत्पत्तिसे अनंतर जो कर्म उपासना करै; तो उत्पन्न हुवा ज्ञान नष्ट होय जावेगा याते ज्ञानके विरोधी हैं, रक्षाके हेतु नहीं. काहेते १ "मैं कर्त्ता हूँ और यज्ञादिक मेरेकूं कर्तव्य हैं, यज्ञादिकनका स्वर्गादि फल है;" या भेदबुद्धिसे कर्म होवै है. और २ "मैं उपासक हूं, देव उपास्य है;" या भेद बुद्धिसे उपासना होवै है. सो दोनों प्रकारकी बुद्धि "सर्व ब्रह्म है" या बुद्धिकं दूरि करिके

होवै है याते कर्म उपासना ज्ञानके विरोधी हैं यद्यपि ज्ञानवान् आत्माकूं असंग जानैहै, तौ भी देहका भोजनादिक व्यवहार, अथवा जनकादिकनकी न्याईं अधिक राज्यपालनादिक व्यवहार करै है, ता व्यवहारका ज्ञान विरोधी नहीं और व्यवहार ज्ञानकाभी विरोधी नहीं, काहेते जो आत्मस्वरूप ज्ञानसे असंग जाना है. ता आत्माविषे जो व्यवहार प्रतीत होवे तो व्यवहारका विरोधी ज्ञान, तथा ज्ञानका बिरोधी व्यवहार होवै; सो विद्वान्कूं आत्माविषे व्यवहार प्रतीत होवै नहीं किंतु संपूर्ण व्यवहार देहादिकनके आश्रित हैं. और आत्माविषे व्यवहारसहित देहादिकनका संबंध है नहीं. या बुद्धिसे संपूर्ण व्यवहार करै है. इसी कारणते विद्वान्की प्रवृत्ति भी निवृत्ति ही कही है.

जैसे अन्यव्यवहार ज्ञानका विरोधी नहीं तैसे कर्मउपासनाभी अन्यबहिर्मुखपुरुषनके करावनेवास्ते आत्माकूं असंगजानिके और देह वाक अंतःकरणके आश्रित क्रिया जानिके जो कर्म-उपासना करै;तो ज्ञानके विरोधी नहीं. काहेते आत्मा विद्वान्ने असंग जाना है,ताकूं कर्ता जानिके जो कर्मउपासना करै,तो ज्ञानके विरोधी होवे सो आत्माका असंगरूप दृढनिश्चय कर्म उपासनासे विद्वा-

नका दूरि होवै नहीं.याते आभासरूप कर्म और उपासना दृढज्ञानके विरोधी नहीं इसीकारणते जनकादिकनने आभासरूप कर्म करे हैं.जो आत्माकूं असंग जानिके और व्यवहारकी न्याईं देहादिकनके धर्म जानिके विद्वान् शुभक्रिया करै, सो आभासरूप कर्म कहिये है, ताका ज्ञानसे विरोध नहीं और भाष्यकारने कर्म उपासनाका जो ज्ञानसे विरोध कहा है सो आत्मामें कर्त्ता बुद्धिसे जो कर्म उपासना करै है, ताका विरोध कहा है; और आभासरूपसे नहीं तथापि-

मंदबोधके आभासरूपकर्म, और आभासरूप उपासना भी विरोधी हैं. काहेते, जो संशयादिक सहित बोध है, सो मंदबोध कहिये है. जाके अंतःकरणमें "आत्मा असंग है; अथवा नहीं है"ऐसा कदाचित् संशय होवै, सो पुरुष जो वारंवार"आत्मा असंग है, तेरेकूं किंचित्मात्र भी कर्तव्य नहीं"या अर्थकूं चिंतन करै तबतो संशय दूरि होयके दृढबोध होय जावे. और कर्मउपासना करेगा, तो मंदबोध जो उत्पन्न हुवा है,सो दूरि होयके"मैं कर्ता भोक्ता हूँ" यह विपरीत निश्चय होय जावेगा. याते मंदबोधकी उत्पत्तिसे पूर्व ही कर्मउपासना करै,और अनंतर नहीं.जो मंदबोधवाला कर्मउपासना करेगा,तो उत्पन्न हुवा बोध नष्ट हो.

य जावेगा दृष्टांतः—जैसे पक्षी अपनें अंडकूं पक्षकी उत्पत्तिसे पूर्व सेवन करै है, और पक्षकी उत्पत्तिसे अनंतर नहीं जो पक्षकी उत्पत्तिसे अनंतर भी अंडेकूं सेवन करै, तो बालकपक्षीके ताअण्डेके जलसे पक्ष गल जावैं. तैसे ज्ञानकी उत्पत्तिसे पूर्वही कर्मउपासनाका सेवन करै, और ज्ञानकी उत्पत्तिसे अनंतर नहीं. जो ज्ञानकी उत्पत्तिसे अनंतर भी कर्म उपासनाका सेवन करै तो बालपक्षीकी न्याईं मंदज्ञानका नाश होय जावे और वृद्धपक्षीकी जैसे अंडके संबंधसे हानि होवै नहीं, तैसे दृढबोधकी तो हानि होवै नहीं और वृद्धपक्षीकी न्याईं दृढबोधकूं कर्म उपासनासे उपयोग भी नहीं.इस रीतिसे ज्ञानवान्‌कूं मोक्षके निमित्त किंचित् मात्र भी कर्तव्य नहीं. यह तृतीय प्रश्नका उत्तर कहा.

वो शिष्यकूं आचार्यने उत्तर कहे, सो वेदके अनुसार कहे, याते यथार्थ हैं, यह वार्त्ता कहैं हैं:—

दोहा।

शिष्य कह्यो जो तोहि मैं, सर्व वेदको सार।
लहैताहिअनयासही,संसृतिनशै अपार॥११॥

टीका—हे शिष्य ! जो मैं तेरेकूं कहा सो सर्ववेदका सार है. यात याविषे विश्वास कर. और याके जान-

नेते अनायास कहिये खेदविना अपार जो संसृति कहिये जन्म मरणरूप संसार, ताका नाश होवै है.

यद्यपि खेदका नाम आयास है, ताके अभावकानाम अनायासहै, तथापि छंदके वास्ते अनयास पच्या है. भाषामें छंदके वास्ते गुरुके स्थानमें लघु और लघुके स्थानमें गुरुपढनेका दोष नहीं.

और मोक्षके स्थानमें मोच्छही भाषामें पाठ होवै है. काहेते, यह भाषाकी संप्रदाय है.

दोहा ।

लघु गुरु गुरु लघु होतहै, वृत्त हेत उच्चार ।
रू ह्वै अरुकी ठौरमें, अबकी ठौर बकार ॥
संयोगी क्ष न ऊपर ख न, नहीं टवर्ग णकार ।
भाषामें ऋ लृ ॡ नहीं, अरु तालव्य शकार ॥

टीका—इतने अक्षर भाषामें नहीं; कोई लिखे तौ कवि अशुद्ध कहै. १ क्षके स्थानमें छ, २ खके स्थान ष, ३ णकारके स्थानमें नकर, ४ ऋ लृके स्थानमें रि लि है, ५ शकारके स्थानमें सकार भाषामें लिखने योग्य है.

"जगत्का कर्त्ता ईश्वर है, सो तेरेसे भिन्न नहीं और सत् चित् आनंदरूप ब्रह्म तू है." यह आचार्यने कह्या सोई कृपाते फिरि कहैं हैं ।

कवित्त ।

दीनताकूं त्यागि नर अपनो स्वरूप देखि
तू तौ शुद्धब्रह्म अज दृश्यको प्रकाशी है।
आपनै अज्ञानते जगत सब तूही रचे,
सर्वको संहार करे आप अविनाशी है ॥
मिथ्या परपंच देखि दुःख जिन आनि जिय,
देवनको देव तू तो सब सुखराशी है ॥
जीव जगईश होय मायासे प्रभासे तूं ही,
जैसे रज्जु सांप सीप रूपहैप्रभासी है॥१२॥

अर्थ–स्पष्ट है ॥ १२ ॥

कवित्त ।

राग जारि लोभ हारि द्वेष मारि मार वारि,
बारबार मृगवारि पारवार पेखिये ।
ज्ञानभानु आनि तम तम तारि भागयाग,
जीव सीव भेद छेद वेदन सु लेखिये ॥
वेदको विचार सार आपकूं संभारि यार,
टारि दासपास आशा ईशकी न देखिये।

निश्चल तू चल न अचल चलदल छल,
नभनिल तलमल तासूं न विशेषिये ॥१३॥

टीका—ज्ञानके साधन कहैं हैं;—हे शिष्य! राग जो पदार्थनमें दृढ आसक्ति है, ताकूं जारिके, लोभकूं हारि कहिये नाशकरि द्वेषकूं मारि, मार कहिये कामकूं वारि दूरिकर राग लोभ द्वेष कामके ग्रहणते सर्व राजसी तामसी वृत्तिका ग्रहण है. याते सर्व राजसी तामसी वृत्तिका नाश कर यह अर्थ सिद्ध हुवा राजसीवृत्ति और तामसी वृत्ति ज्ञानकी विरोधी हैं. तिन्हके नाशविना ज्ञान होवै नहीं. याते तिन्हकी वृत्ति जिज्ञासुकूं अपेक्षित विवेक; वैराग्य, शमादि षट्संपत्ति; मुमुक्षुता; ये चारि जो ज्ञानके साधन हैं, तिन्हमें विवेक प्रधान है. काहेते विवेकसे वैराग्यादिक उत्पन्न होवैं हैं याते, विवेकका उपदेश आचार्य करैं हैं:—हे शिष्य! पारवार जो संसार है, ताकूं वारंवार मृगवारि-कहिये मृगतृष्णाके जल समान मिथ्या जान १ पारबार नाम संसारका है; और २ अपारवार नाम आत्माका है. पारवार मिथ्या है, या कहनेते अपारवार मिथ्या नहीं किंतु सत्य है-यह वार्ता अर्थसे कही. जैसे बाजीगरके तमासे देखते पुत्रकूं पिता कहै—"हे पुत्र! यह आम्रवृक्षसे आदिलेके जो बाजीगरने बनाये हैं, सो मिथ्या है" या

कहनेते बाजीगरकूं मिथ्या नहीं जानै है; किंतु सत्य जानै है. तैसे जगतकूं मिथ्या कहनेते आत्माकूं सत्य जानि लेवेगा. या अभिप्रायते आचार्यने वारंवार मिथ्या कह्या. इसरीतिसे जगत् मिथ्या है, और आत्मा सत्य है; या विवेकका उपदेश कऱ्या. ता विवेकसे अन्यसाधन आप ही उत्पन्न होवैं हैं. याते विवेकके उपदेशते सर्वसाधनका उपदेश अर्थसे कह्या. ज्ञानके बहिरंगसाधन कहे, अंतरंगसाधन श्रवणादि कहे हैं:-हे शिष्य! ज्ञानरूपी जो भानु है, ताकूं आनि कहिये; श्रवणसे संपादन करिके, तम कहिये अज्ञानरूपी जो तम अंधेरा है, ताकूं तारि कहिये नाश कर, तम नाम अंधेरे और अज्ञानका है. अंधेरा उपमान है; और अज्ञान उपमेय है. प्रथम जो तम शब्द है, सो उपमेयका वाचक है, और दूसरा उपमानका वाचक है.

दोहा ।

जाकूं उपमा दीजियें, सो उपमेय बखानि ॥
जाकी उपमा दीजिये, सो कहिये उपमानि १४॥

ज्ञानका स्वरूप अन्यशास्त्रनमें नानाप्रकारका अंगीकार किया है. याते, महावाक्यके अनुसार ज्ञानका स्वरूप कहैं हैं:- हे शिष्य! १ जीव और ईश्वरविषे अविद्या और मायाभागकूं त्यागिके तिन्हका जो भेद

प्रतीत होवै है; ताकूं छेद कहिये दूरि कर, और २ जीव ईश्वरमें जो वेदन कहिये चेतनभाग है,ताकूं भेद-रहित जान. या कहनेते यह वार्ता कही—महावाक्य-नमें भागत्यागलक्षणाते जीव ईश्वरकी एकता जान शिवके स्थानमें सीव पढ्या है; तृतीयपादका अर्थ स्पष्ट है.

पूर्वकहे अर्थकूं संक्षेपते चतुर्थपादसे कहैं हैं. हे शिष्य चल कहिये विनाशी जो देहादिक संघात, सो तूं नहीं किंतु अचल कहिये अविनाशी जो ब्रह्म सो तूं है. और चलदल कहिये वृक्षरूप जो संसार, सो छल कहिये मिथ्या है. जैसे नभविषे नीलता और तलमल कहिये कटाहरूपता है नहीं,किंतु मिथ्या प्रतीत होवै ह. तैसे संसार भी आत्मविषे हैं नहीं, मिथ्या प्रतीत होवै है. वृक्षरूप करिके संसार, श्रुतिस्मृतिमें कह्या है; याते वृक्षके वाचक चलदल शब्दका संसारमें प्रयोग कऱ्या है. मोक्षका साधन ज्ञान है या अर्थकूं अन्यप्रकारसे कहैं हैं—

कवित्त

बध मोक्ष गेह देहवान ज्ञानवान जान,
राग रु विराग दोइ ध्वजा फररात ।
विषे विषे सत्यभ्रम भ्रममति वात तात,
हललात प्रात रात घरी न ठहरात है ॥

साछ्य साछी पूतरी अनूजरी रु ऊजरी द्वै,
देखि रागी त्यागी ललचात जन जात हैं।
चञ्चल अचल भ्रम ब्रह्म लखि रूप निज,
दुःख रूप आनन्द स्वरूपमें समात है॥ १६ ॥

टीका–हे शिष्य ! देहवान् कहिये देह अभिमानी अज्ञानी, और ज्ञानवान्, बंध और मोक्षके गेह कहिये धाम हैं. १अज्ञानी तो बंधका धाम है, और २ज्ञानी मोक्षका धाम है. राग और विराग तिनकी ध्वजा हैं जैसे ध्वजा राजाके नगरका चिह्न होवै है, तैसे राग और विराग तिनके चिह्न हैं. १ अज्ञानीका राग चिह्न है,और २ ज्ञानीका विराग चिह्न है. अज्ञानीविषे भी विराग होवै है. याते ज्ञानीका ज्ञानीसे विलक्षण विराग कहैं हैं–हेतात! विषय जो शब्दादिक हैं, तिन्हविषे सत्यभ्रम कहिये,सत्यपनेकी भ्रांति,और भ्रममति कहिये. रज्जुसर्पकी न्याई विषय भ्रमरूप हैं, यह जो मति-निश्चय सो वातकी न्याई राग और विरागकूं हलावै है. जैसे वायु ध्वजाकी चचलता करै है, तैसे विषयमें सत्यबुद्धि और भ्रमबुद्धि राग और विरागकूं चंचल करै हैं; शिथिल होने देवैं नहीं, १ विषयमें सत्यबुद्धिसे रागकी शिथिलता दूरि होवै है और २ विषयमें भ्रमबुद्धिसे विरागकी शिथिलता दूरि होवै है.

विषय असत्य है, याते तिन्हमें सत्यबुद्धि भ्रांतिरूप है. इस वार्त्ताके जनावनेकूं कवित्तमें सत्यभ्रम कह्या, सत्यबुद्धि नहीं कही. भ्रांतिज्ञान और भ्रांतिज्ञानका विषय जो मिथ्यावस्तु सो दोनों भ्रम कहिये हैं. या कहनेते, अज्ञानीके विरागते ज्ञानीके विरागका भेद कह्या, काहेते, जो अज्ञानीका विराग है, सो विषयमें मिथ्याबुद्धिसे उत्पन्न नहीं हुवा, याते मंद है. विषय मिथ्या हैं, यह बुद्धि अज्ञानीकूं होवै नहीं. १ यद्यपि शास्त्रयुक्तिसे अज्ञानी भी मिथ्या जाने है तथापि विषय मिथ्या हैं, यह अपरोक्षमति ज्ञानवान्कूंही होवै है, अज्ञानीकूं नहीं. याते अज्ञानीकूं विषयमें परोक्ष जो मिथ्याबुद्धि, तासे अपरोक्ष सत्यभ्रांति दूरि होवै नहीं. इस रीतिसे अज्ञानीकूं विषयमें जब विराग होवै है, ता कालमें परोक्ष मिथ्याबुद्धि है भी परंतु परोक्ष मिथ्याबुद्धिसे प्रबल अपरोक्ष सत्यबुद्धि है. याते अज्ञानीकी परोक्ष मिथ्याबुद्धि विरागकी हेतु नहीं, किंतु प्रबल जो सत्यबुद्धि; तासे विषयमें रागही होवै है, और जो विराग होवै तो भी मिथ्याबुद्धिसे नहीं. किंतु विषयमें दोषदृष्टिसे होवै है. और २ ज्ञानवान् सर्वप्रपंचकूं अपरोक्षरूप करिके मिथ्या जानै हैं. ता अपरोक्ष मिथ्याबुद्धिसे, अपरोक्ष सत्यबुद्धि दूरि होवै है, याते रागकी हेतु विषयमें स-

त्यबुद्धि, तो ज्ञानीकूं है नहीं. विरागकी हेतु विषयमेंमि-
थ्याबुद्धि ज्ञानवानकूं है. जो ज्ञानीकूं विषयमें सत्यबुद्धि
फेरि होवै, तो राग फेरि होवै; और विराग दूरि होवै.
सो अपरोक्षरूपते मिथ्या जाने पदार्थमें फेरि सत्यबुद्धि
होवै नहीं जैसे अपरोक्षरूपते मिथ्या जान्या जो
रज्जुमें सर्प ताकेविषे सत्यबुद्धि फेरि होवै नहीं
तैसे ज्ञानीकूं फेरि सत्यबुद्धि होवै नहीं. इसरी-
तिसे रागकी उत्पत्ति और विरागकी निवृत्ति
ज्ञानीको होवै नहीं, याते ज्ञानीका विराग दृढ है.
और दोषदृष्टि से जो अज्ञानीकूं विराग होवै है, सो तो
दूरि होय जावे है. काहेते जा पदार्थनमें दोषदृष्टि होवै है,
ता पदार्थमेंही अन्यकालमें सम्यक् बुद्धि भी होयजावै
है जैसे सर्व पुरुषनकूं पशुधर्मके अंतमें स्त्रीविषे दोष
दृष्टि होवै है और कालांतरमें फेरि सम्यक्बुद्धि होवै है
इसरीतिसे दोषदृष्टि जब दूरी होवै तब अज्ञानीका वि-
राग भी दूरि होय जावै है, याते अज्ञानीकूं दृढविराग
होवे नहीं. इसरीतिसे राग और विराग अज्ञानीके और
ज्ञानीके चिह्न कहे और भी चिह्न कहैं हैं:—हे शिष्य!
जैसे धामके ऊपरि पुतरी कहिये हस्ती आदिकनकी
मूर्ति होवै है, तैसे बंधमोक्षका धाम जो अज्ञानी और
ज्ञानीका अंतःकरण है ताकेविषे साक्ष्य साक्षी पुतरी

है; १ अज्ञानी अंतःकरणविषे तो साक्ष्यरूपी पूतरी है और २ ज्ञानी अंतःकरणमें साक्षीरूपी पूतरी है.साक्षी का विषय जो प्रपंच है. ताकूं साक्ष्य कहैं हैं. १ साक्ष्यरूपी पूतरी अनूजरी कहिये मलिन है. और २ साक्षी रूपी पूतरी ऊजरी कहिये शुद्ध है. आगे अर्थ स्पष्ट है. चंचलभ्रम निजरूप लखि, और अचलब्रह्म निजरूप लखि, या क्रमते अन्वय है.

भागत्यागलक्षणाका जो कवित्तमें विशेषकरिके ग्रहण किया है,ताविषे हेतु कहनेकूं लक्षणाका भेद कहैं हैं.

दोहा।

त्रिविधलच्छना कहत हैं, कोविद बुद्धिनिधान।
जहती अरु अजहती पुनि, भागत्याग निजजान॥
आदि दोइ नहिं संभवैं, महावाक्यमें तात।
भागत्यागते रूप निज, ब्रह्मरूप दरशात॥

अर्थ—स्पष्ट है।

शिष्य उवाच—अर्धशंकर—छन्द।

अब लच्छना प्रभु कहत काकूं, देहु यह समुझाय॥
पुनि भेद ताके तीनि तिनके, लच्छनहुं दरशाय॥१७॥

टीका—सामान्यज्ञानसे अनंतर विशेषका ज्ञान होवै है.जैसे सामान्यब्राह्मणका ज्ञान हुयेसे अनंतर सारस्वत आदिक विशेषका ज्ञान होवै है.तैसे लक्षणासामा-

न्यका ज्ञान होवै, तो जहती आदिक विशेष रूपनका ज्ञान होवै लक्षणाका सामान्यरूप जाने विना,जहती आदिक विशेषरूपनका ज्ञान होवै नहीं. इस अभिप्रायतें शिष्य कहै है—हे प्रभो ! लक्षणा काकूं कहते हैं ? यह मैं नहीं जानूं हूं. याते लक्षणाका सामान्यरूप दिखायके तिसते अनंतर जो जहती आदिक लक्षणाके तीन भेद कहिये विशेष हैं; तिन्हके जुदे जुदे लक्षण दिखावो. छंद वास्ते प्रभोकूं प्रभु पढ्या, और भाषाकी संप्रदायते लक्षणाके स्थानमें लच्छना पढ्या. लक्षणके स्थानमें लच्छन पढ्या.

गुरुवाक्य—शंकरछंद ।

श्रुति चित्त निज एकाग्रकरि,अब शिष्य सुनि मम बानि।
ज्यूं लच्छना अरु भेद ताके, लेहु नीके जानि ॥
सुनि वृत्ति है द्वैभांति पदकी,शक्ति तामें एक।
दूजी लच्छना पुनि जानि दूजी,सुनहु सो सविवेक॥१८॥

टीका—पदका जो अर्थसे संबन्ध, सो वृत्तिकहिये है.सो वृत्ति दो प्रकारकी है. ता दो प्रकारमें, एक शक्ति वृत्तिहै और दूजी लच्छना वृत्ति है.तिनकूं सविवेक कहिये विवेकसहित याका अर्थ लच्छनसहित सुनि.

अथ शक्तिलक्षण—दोहा।

जा पदतैं जा अर्थकी, है सुनतेहिं प्रतीति ॥

ऐसी इच्छा ईशकी, शक्ति न्यायकी रीति ॥

टीका—जा पदतै कहिये घटपदतै, जा अर्थकी कहिये कलश अर्थकी सुनतेही प्रतीति कहिये ज्ञान सर्वपुरुषनकूं होवै, ऐसी जो ईश्वरकी इच्छा, ताकूं न्यायशास्त्रमें शक्ति कहैं हैं.

अथ स्वरीतिशक्तिलक्षण ।

(पदमैं अर्थके ज्ञानकी सामर्थ्य)

अर्धशंकर—छन्द ।

सामर्थ्य पदकी शक्ति जानहु, वेदमत अनुसार ॥
सो वह्निमें जिम दाहकी है, शक्ति त्यूं निरधार ॥

टीका—१ घटपदके श्रोताकूं कलशरूप अर्थके ज्ञान करनेका जो घटपदविषे सामर्थ्य, सोई घटपदमें शक्ति है. २ तैसे पटपदके श्रोताकूं वस्त्ररूप अर्थके ज्ञान करनेक जो पटपदविषे सामर्थ्य, सोई पटपदमें शक्तिवृत्ति ।] ऐसे सर्व पदनमें जानि लेनी. दृष्टांतः—जैसे व[ह्नि] अपनेसे मिलतेही वस्तुके दाह करनेकी सामर्थ्यरू[प] शक्ति है, तैसे श्रोताके कर्णसे मिलतेही वस्तुके ज्ञा[न] करनेकी जो पदविषे सामर्थ्य, सो शक्ति कहिये । सामर्थ्य नाम समर्थपनेका है. जाकूं समर्थाई कहैं हैं. अ[रु] बल भी कहैं हैं, जोरभी कहैं हैं, जैसे अग्निमें दाह[की] शक्ति है, तैसे जलविषे गीलाकरनेकी, तृषा दूरि क-

नेकी, पिंड बांधनेकी, जो समर्थाई है, सो शक्ति है इस प्रकारसे सर्वपदार्थनविषे अपना अपना कार्य करनेकी सामर्थ्य है, सोई शक्ति है.यह वेदका सिद्धांत है ताहीकूं निर्धार कहिये निश्चय कर, और न्यायकी रीति त्यागनेकूं योग्य है.

प्रश्नः–वर्ण समुदायसे जुदी शक्ति नहीं. यातैं ईश इच्छाशक्ति है।

शिष्य उवाच–शंकरछन्द।

ननु वह्निमैं नहिं शक्ति भासै, वह्नि विन कछु और।
है हेतुता जो दाहकी, सो वह्निमें तिहि ठौर॥
इस पदनहूमैं वर्णबिन कछु, शक्ति भासत नांहिं।
या हेतुतैं जो ईशइच्छा, शक्ति मो मति मांहिं॥१२॥

टीका–ननुशब्द संदेहका वाचक है,वह्निमें ताके स्वरूपसे जुदी शक्ति भासे कहिये प्रतीत होवै नहीं,और पूर्व कह्या दाहका हेतु जो वह्निमें सामर्थ्य,सोई वह्निमें शक्ति है सो बनै नहीं काहेते, दाहकी हेतुता कहिये जनकता, कारणपना केवल वह्निमेंही है. अप्रसिद्ध सामर्थ्य वह्निमें मानिके ताकेविषे हेतुता माननेका, और प्रसिद्धवह्निमें हेतुता त्यागनेका कुछ प्रयोजन नहीं.जैसे दृष्टांतमें, शक्ति नहीं संभवै, इम कहिये इसरीतिसे पदनके विषे भी वर्णका समुदाय जो पदनका स्वरूप,

तासे जुदी शक्ति भासै नहीं. और ताका प्रयोजन भी नहीं. या हेतुते ईश्वरकी इच्छारूप जो न्यायकी रीतिसे शक्ति, सोई मेरी मति मांहि भासैहै.

सिद्धान्तरीतिसे अग्निआदिकमैं दाहादिकार्यकी सामर्थ्यरूप-

शक्तिका प्रतिपादन।

गुरुरुवाच-शंकरछंद।

प्रतिबंध होते वह्नितैं नहिं, दाह उपजे अंग।
उत्तेजक रु जब धरे तब फिरि, दहै वह्नि स्वसंग॥
ह्वै वह्निमैं जो हेतुता तो, दाह ह्वै सबकाल।
जो नशै उपजै वह्नि होते, हेतु शक्ति सुवाल॥२२॥

टीका-हे अंग ! प्रिय ! प्रतिबंधक होते अग्निसे दाह होवै नहीं. और उत्तेजक समीप धरै, तब स्वसंग कहिये, अग्निसे मिल्या जो पदार्थ ताका दाह, प्रतिबंध होते भी होवै है. जो शक्तिसे विना केवल अग्निकूं दाहकी हेतुता होवे तो सर्वकाल कहिये, उत्तेजकसहित प्रतिबंधकाल और प्रतिबंधरहितकालकी न्याई उत्तेजकरहित प्रतिबंध-कालमैं भी दाह हुवा चाहिये. काहेते दाहका हेतु केवल अग्नि ताकालमैं भी है. और स्वमतमैं तो यह दोष नहीं. काहेते, स्वमतमैं अग्निकी शक्ति अथवा शक्ति-सहित अग्नि दाहका हेतु हैं; केवल अग्नि नहीं. जहां

प्रतिबंध है तहां यद्यपि प्रतिबंधसे अग्निका तौ नाश वा तिरोधान नहीं भी होता; तथापि अग्निकी शक्तिकानाश वा तिरोधान होवै है. याते दाहका हेतु शक्ति अथवा शक्तिसहित अग्निका अभाव होनेते दाह होवै नहीं. और जा स्थानमैं प्रतिबंधके समीप उत्तेजक आया है; इहां प्रतिबंधने तौ अग्निकी शक्तिका नाश वा तिरोधान करिदिया, परंतु उत्तेजकने फेरि शक्तिकी उत्पत्ति वा प्रादुर्भाव किया है. याते प्रतिबंधके होते भी उत्तेजकके माहात्म्यतैं दाहका हेतुशक्ति वा शक्तिसहित अग्निके होनेते दाह होवै है. चतुर्थ पादका अक्षरार्थ यह है:— हे बाल ! अज्ञाततत्त्व ! जो नशै कहिये नाशकूं प्राप्त होवै प्रतिबंधते, और उपजे उत्तेजकते, सु कहिये सो शक्ति दाहका हेतु है. १कारजका जो विरोधी सो प्रतिबंधक कहिये है. और २प्रतिबंधकके होते कारजका साधक उत्तेजक कहिये है.

१ अग्निके स्थान प्रतिबंध और उत्तेजक मणिमंत्रऔषध हैं, जा मणि वा मंत्र वा औषधके सन्निधानसे दाह होवै नहीं, सो प्रतिबंधक और २ जा मणिमंत्र औषधके सन्निधानसे: प्रतिबंधक होते भी दाह होवै, सो उत्तेजक है.

गुरुवाक्य।

अर्धशंकर-छंद।

शिषरीति यह सब वस्तुमें तूं, शक्ति लेहु पिछानि।
बिन शक्ति नहिं कछु काज होवै, यहै निश्चय मानि॥

टीका–हे शिष्य! वह्निकी न्याईं जल आदिक सर्वपदार्थनविषे तूं शक्ति पिछान. शक्तिसे बिना किसी हेतुसे कोई कार्य होवै नहीं. सार्धशंकरसे शक्तिका प्रयोजन कह्या.

पूर्व जो शिष्यने प्रश्न कियाथा–"शक्ति" वह्निसे भिन्न प्रतीत होवै नहीं. ताका समाधान कहनेकूं अर्धशंकरसे शक्तिका अनुभव दिखावैं हैं–

मूल अर्धशंकर-छंद।

अब शक्ति यामैं है नहीं वह, शक्ति उपजी और।
यह शक्तिको परसिद्ध अनुभव, लोपि है किस ठौर॥

अर्थ–स्पष्ट।

सिद्धांतकी रीतिसे शक्तिका स्वरूप और शक्तिमें प्रमाण निरूपण किया अन्यमतकी शक्तिका खंडन करै हैं.

अर्धशंकर-छन्द।

जो शक्ति इच्छा ईशकी, सो पदनके न नजीक।
मत न्यायको अन्याय या विधि, शक्तिजानि अलीक

टीका–जो ईश्वरकी, इच्छारूप पदशक्ति कही, सो

बनै नहीं. काहते, ईश्वरकी इच्छा ईश्वरका धर्महै, याते, ईश्वरमेंरहै जोइच्छा सो पदकी शक्ति है,यह कहना बनै नहीं जो पदका धर्म शक्ति होवै तो पदकी शक्ति है यह कहना बनै याने पदकी सामर्थ्यरूपही पदकी शक्ति है इसकी इच्छा पदके नजीक भी नहीं, सो पदकी शक्ति है, यह कहना बनै नहीं. अलीक नाम झूठका है.

अथ वैयाकरण रीति शक्तिलक्षण।

(पदमें अर्थकी योग्यता।)

अर्धशंकर-छन्द।

योग्यता जो अर्थकी, पदमांहि शक्ति सु देखि।
यूं कहत वैयाकरण भूषण, कारिका हरि लेखि॥२६॥

टीका-पदके विषे जो अर्थकी योग्यता कहिये अर्थके ज्ञानकी हेतुता हेतुपना सो पदमें शक्तिहै. जैसे घटपद विषे कलशरूप अर्थके ज्ञानकी हेतुतारूप योग्यता है. सोई शक्तिहै. इसरीतिसे वैयाकरणभूषणग्रंथमें हरिकी कारिका प्रमाण लिखिके शक्ति कही है. अथवा वैयाकरणके जो भूषण कहिये उत्तम वैयाकरण सो हरिकी कारिका कहिये श्लोककूं देखिके कहते हैं।

वैयाकरण रीतिकी शक्तिका खण्डन।

गुरुवाक्य-सार्धशंकर-छन्द।

सुनि शिष्य वैयाकरणमतमैं, प्रबलदूषण एक।

सामर्थ्य पदमें है न वा यह, पूछि ताहि विवेक ॥
भाषे जु है हो शक्ति मानहु, ताहि लोकप्रसिद्ध ।
कहिं नाहिं जो असमर्थपद सो, योग्य है यह सिद्ध ॥
असमर्थ है पद अर्थ योग्य रु, कहतही सविरोध ।
जो और दूषण देखनो, तौ ग्रंथदर्पण शोध ॥ २८ ॥

टीका-प्रथमपाद स्पष्ट है, हे शिष्य ! अर्थज्ञानकी हेतुतारूप योग्यताकूं जो शक्ति माने है ताकूं यह विवेक पूछि तेरे मतमें पदविषे सामर्थ्य है, अथवा नहीं है ?प्रथमपक्ष कहै तो हमारे मतकी शक्ति बलसे सिद्ध होवैं हैं यह तृतीयपादसे कहैं हैं, भाषे जु है तौ, इति.याका अन्वयः-जु कहिये जो भाषे है, तौ लोकप्रसिद्ध शक्ति ताहि मानहु.अर्थ-जो वैयाकरण कहे, पदमें सामर्थ्यहै, तौलोकमें प्रसिद्ध जो सामर्थ्यरूप शक्ति है, ताहि पदमें भी मानहु.पदमें अर्थ ज्ञानकी जनकतारूप योग्यताकूं शक्ति मति मान.

अभिप्राय यहहैः-जो पदमें सामर्थ्य अंगीकार करै ताकूं सामर्थ्यसे भिन्नरूप शक्तिका मानना योग्य नहीं. किंतुसामर्थ्यरूपही शक्ति है. यह मानना योग्य है.काहेते सामर्थ्य बल जो शक्ति, ये च्यारि नाम एक वस्तुके लोकमें प्रसिद्ध हैं, जोरहीनकूं लोक कहैं हैं,यह सामर्थ्यहीन है, बलहीन है, शक्तिहीन है; और भंजित

अन्नकूं कहैं हैं. याके विषे अंकुरउत्पत्तिकी सामर्थ्य नहीं है; बल नहीं है, शक्ति नहीं है, जोर नहीं है, इसरीतिसे सामर्थ्य और शक्तिकी एकता लोकमें प्रसिद्ध है. और वह्निमें भी सामर्थ्यरूपही शक्ति निर्णित है. याते पदमें सामर्थ्यरूपही शक्ति माननीयोग्य है और पदमें सामर्थ्य मानिके तासे भिन्न योग्यताकूं शक्ति कहनेका लोकप्रसिद्धिके विरोधविना और फल नहीं. केवल लोकप्रसिद्धिका विरोधही फलहै और जो ऐसे कहैं, सामर्थ्यकूंही हम योग्यता कहैं हैं, तौ हमाराही मत सिद्ध होवे है; और ऐसे कहैं हम सामर्थ्य अंगीकार करैं तो सामर्थ्यरूप शक्ति पदमें संभवै; सो सामर्थ्यकूं अंगीकारही नहीं करते, याते अर्थज्ञानकी जनकतारूप योग्यताही पदमें शक्ति है, ताकूं यह पूछचा चाहिये सामर्थ्यका अभाव केवल पदमेंही अंगीकार करे हैं, अथवा वह्निआदिक सर्वपदार्थनमें सामर्थ्यका अभाव अंगीकार करैं हैं? जो अन्त्यपक्ष कहैं; तो वह्निआदिक पदार्थनमें सामर्थ्यरूप शक्तिके प्रतिपादनमें उक्त जो युक्ति तिन्हते खंडित है और प्रथमपक्ष कहैं तो ताके विषे अंत्यपक्ष उक्त दोष तौ यद्यपि नहीं है काहेते, जो वह्नि आदिक सर्वपदार्थनमें सामर्थ्यरूप शक्ति नहीं मानैं, तौ प्रतिबंधकते दाहका अभाव बनै नहीं. यह अंत्यपक्षमें दोष है;

सो दोष प्रथमपक्षमें नहीं. काहेते, वह्निआदिक सर्वपदार्थनमें तो सामर्थ्यरूप शक्ति है, याते प्रतिबंधकतें दाहके अभावका असंभव नहीं. परंतु पदके विषे अर्थज्ञानकी जनकतारूप योग्यतासे भिन्न सामर्थ्यरूप शक्ति नहीं किंतु पदमें अर्थकी योग्यताही शक्ति है. यह प्रथमपक्ष है. ताके विषे प्रतिबंधकते दाहका असंभवरूप दोष तौ नहीं, तथापि पदविषे भी वह्निकी न्याईं सामर्थ्यका अंगीकार अवश्य किया चाहिये;यह प्रतिपादन करैं हैं, शंकरके दोषादनतेः—नाहिं जो असमर्थ, इत्यादि सविरोधपर्यंत. अर्थ नाहिं कहिये पदमें सामर्थ्यका अंगीकार नहीं. तो जो असमर्थपद सो योग्य कहिये अर्थज्ञानका जनक है; यह सिद्ध कहिये मतका निश्चय है, सो असंगत है. काहेते पद असमर्थ है, और अर्थयोग्य कहिये अर्थज्ञानका जनक है, यह वाक्य नपुंसकका अमोघ वीर्य है; इस वाक्यकी न्याईं कहतेही सविरोध है विरोधसहित है. १ सामर्थ्यसहितका नाम समर्थ है. और २ सामर्थ्यरहितका नाम असमर्थ है. असमर्थसे कोई कार्य होवै नहीं, यह लोकमें प्रसिद्ध है. याते असमर्थ पदसे भी अर्थका ज्ञानरूप कार्य बनै नहीं. याते पदमें सामर्थ्य मानना योग्य है. जब सामर्थ्यपदमें अंगीकार किया तब शक्ति

भी पदमें सामर्थ्यरूप ही माननी योग्य है. इसरीतिसे अर्थज्ञानकी जनकतारूप योग्यता पदमें शक्ति नहीं, किंतु सामर्थ्यरूपही शक्ति है,जो वैयाकरणमतमें और दूषण देखना होवै, तो शक्तिके निरूपणमें दर्पणग्रंथकूं शोध, कहिये देख.दूषण क्लिष्ट है याते दर्पणउक्त दूषण लिख्या नहीं.

अथ भट्टरीति-शक्तिलक्षण ।

(पदका अर्थसे भेदाभेदरूप तादात्म्य ।)

अर्धशंकर-छंद ।

संबंध पदको अर्थसे तादात्म्य शक्ति सु वेद ।
इम भट्टके अनुसारि भाषत ताहि भेदाभेद ॥

टीका-पदका अर्थसे जो तादात्म्यसंबंध, ताकूं भट्टके अनुसारी शक्ति कहैं हैं. सो वेद कहिये तू जान. ताहि कहिये तिस तादात्म्यकूं भेदाभेदरूप कहैं हैं. यह तिन्हका अभिप्राय है-१ अग्निपदका अंगार अर्थसे अत्यंतभेद नहीं जो अत्यंतभेद होवै तौ जैसे अग्निपदसे अत्यंतभिन्न जल आदिक हैं; तिन्हकी अग्निपदसे प्रतीति होवै नहीं. तैसे अग्निपदसे अंगाररूप अर्थकी प्रतीति नहीं होवगी. पदसे अत्यंतभिन्न अर्थकी प्रतीति होवै नहीं . २ जैसे पदका अपनें अर्थसे अत्यंतभेद नहीं; तैसे अत्यंत अभेद भी नहीं. जो अत्यंत अभेद

वाच्यवाचकका होवै; तो जैसे अग्निपदके वाच्य अंगारसे मुखका दाह होवै है, तैसे अंगारका वाचक अग्निपदके उच्चारण कियेते भी मुखका दाह हुवा चहिये. और पदके उच्चारणते दाह होवै नहीं; याते अत्यंतअभेद भी नहीं; किंतु अग्निपदका अंगाररूपअर्थसे भेदसहित अभेदहै १ भेद है याते दाह होवै नहीं. और २ अभेद है याते अग्निपदते जलआदिकनकी न्याई अंगारकी प्रतीतिका असंभव भी नहीं. जैसे अग्निपदका अंगाररूप अर्थसे भेदसहित अभेद है; तैसे उदक, वन, जल, दक, जीवन पदनका पानीरूप अर्थसे भेदसहित अभेद है. १ जो अत्यंत भेद होवै तो जैसे उदकआदिक पदनते अत्यंतभिन्न अग्निआदिक हैं तिन्हकी उदकआदिक पदनते प्रतीति होवै नहीं तैसे पानीरूप अर्थकी भी उदकआदिक पदनते प्रतीति नहीं होवैगी; याते अत्यंत भेद नहीं; और २ अत्यंत अभेद भी नहीं. जो अत्यंत अभेद होवै, तो जैसे पानीते मुखमें शीतलता होवै है; तैसे उदकआदिक पदनके उच्चारणते भी मुखमें शीतलता हुई चाहिये; और पदनते शीतलता होवै नहीं, याते अत्यंतअभेद नहीं किंतु भेदसहित अभेद होनेते दोऊ दोष नहीं. इसरीतिसे सर्वत्रही अपने अपने वाच्यते वाचकपदनका भेदसहित अभेद है. ता भेदसहित अभेदकूं ही भट्टके अनुसारी तादात्म्यसंबंध कहैं

हैं; और भेदाभेद कहैं हैं. सो भेदाभेदरूप तादात्म्यसंबंध ही सर्वपदनमें अपने अपने अर्थकी शक्ति है. तादात्म्यसंबंधसे जुदी सामर्थ्यरूप शक्ति नहीं. भेदाभेदमें युक्ति कही. अब प्रमाण कहैं हैं:-

अर्ध शंकरछंद।

यह ओं अक्षरब्रह्म है यों, कहत वेद अभेद।
पुनि बानिमें पद अर्थ बाहिर, देखियत यह भेद॥

टीका- मांडूक्य आदिक वेदवाक्यनमें "ॐ अक्षर ब्रह्म है" यह कह्या है. तहां व्याकरणकी रीतिसे प्रकाशरूप सर्वकी रक्षाकरता ॐ अक्षरका अर्थ है. ऐसा ब्रह्म है. याते ॐ अक्षर ब्रह्मका वाचक है; और ब्रह्म वाच्य है. १ जो वाच्यवाचकका आपसमें अत्यंत भेद होवै, तो वाचक ॐ अक्षरका और वाच्य ब्रह्मका, मांडूक्य आदिकनमें अभेद नहीं काहेते और "ॐ अक्षर ब्रह्म है" इसरीतिसे अभेद कह्या है. याते वाच्यवाचकके अभेदमें वेदवचन प्रमाण है. और२ सर्वलोककी प्रतीतसे वाच्य वाचकका भेद सिद्ध है. काहेते, अग्निआदिक पद बानीमें हैं, और अंगार आदिक तिनका अर्थ बानीते बाहर चुल्हिआदिकनमें है. तैसे ॐ अक्षररूप पद बानीमें है, और ताका अर्थ ब्रह्म, बानीमें नहीं है; किंतु बानीते बाहरि कहिये अपने महिमामें है. यद्यपि ब्रह्म व्यापक

है, याते बानीमें ब्रह्मका अभाव नहीं. तथापि ब्रह्ममें बानी है, और बानीमें ब्रह्म नहीं, इसरीतिसे सर्वलोकनकूं पद बानीमें, और अर्थ बानीते बाहिर प्रतीत होवै है. याते पदका और अर्थका भेद लोकमें प्रसिद्ध है. १ इसरीतिसे वाच्यवाचकके भेदमें सर्व लोकका अनुभव प्रमाण है, और २ तिन्हके अभेदमें वेदवचन प्रमाण हैं याते पदका अर्थसे भेदाभेदरूप तादात्म्यसंबंध अप्रमाण नहीं, किंतु प्रमाणसिद्ध है.

प्रसंगते अन्यस्थानमें भी भेदाभेद तादात्म्यसंबंध दिखावैं हैं.

अर्धशंकर–छंद ।

जो गुण गुणी और जाति व्यक्ती, क्रिया अरु तद्वान ।
संबंध लखि तादात्म्य इनको, कार्यकारण सान॥ ३१॥

टीका–१ रूप रस गंध आदिक गुण हैं, तिन्हका आश्रय गुणी कहिये हैं. जैसे रूप आदिकनका आश्रय भूमि गुणी है २ अनेकनके मांहि रहे जो एकधर्म, सो जाति कहिये है. जैसे सर्वब्राह्मणशरीरनके माहिं एक ब्राह्मणत्व है, और सर्व शूद्रमांहि शूद्रत्व है, और सर्वजीवनमांहि जीवत्व है, पुरुषनमें पुरुषत्व है, सर्वघटनमाहिं घटत्व है. जाकूं लोकमांहि ब्राह्मणपना, शूद्रपना, जीवपना, पुरुषपना, घटपना कहते हैं, सोई ब्राह्मणअदिक श-

रीरनमांहि, ब्राह्मणत्व आदिक जाति हैं जातिका आश्रय जो ब्राह्मणादिक, सो व्यक्ति कहिये है. ३गमन आगमनआदिक क्रिया कहियेहैं,और तद्वान कहिये तिसवाला अर्थ यह क्रियाका आश्रय.इतने पदार्थनका तादात्म्यसंबंध है; यह लखि कहिये जानि. और कारणकार्यकूं सान,कहिये गुणगुणी आदिक विषे मिलाव. अभिप्राय यह है:—१कारणकार्यका भी गुणगुणीकी न्याईं तादात्म्यसंबंध है २ गुणका और गुणीका आपसमें तादात्म्यसंबंध है. ३ जातिका और व्यक्तिका आपसमें तादात्म्यसंबंध है.४ तैसे क्रिया और क्रियावान्का तादात्म्यसंबंध है. कारणका और कार्यका भी तादात्म्यसंबंध है. तादात्म्य नाम भेदसहित अभेदका है.

यद्यपि निमित्तकारणका और कार्यका तौ भेदाभेदरूप तादात्म्य नहीं है,किंतु अत्यंत भेद है,तथापि उपादानकारणका और कार्यका,भेदाभेदरूप तादात्म्यही संबंध है. जैसे घटके निमित्तकारण,कुलाल दंड आदिक है, तिनका घटरूप कार्यसे अत्यन्त भेद भी है परन्तु उपादानकारण मृत्तिकापिंड और घटकार्यका भेदसहित अभेद है. १ जो मृत्तिकापिंडसे घट अत्यंत भिन्न होवै तो जैसे मृत्तिकापिंडसे घट अत्यंत भिन्न तैलकी उत्पत्ति होवै नहीं. तैसे घटकी भी उत्पत्ति नहीं होवेगी. और

२ उपादानकारणका कार्यते अत्यन्त अभेद होवे, तौ भी मृत्पिंडसे घटकी उत्पत्ति होवै नहीं. काहेते, अपने स्वरूपसे अपनी उत्पत्ति होवै नहीं. १ याते उपादानकारणका कार्यते भेदसहित अभेद है. याते अभेद है अत्यन्त भेदपक्षका दोष नहीं. और २ भेद है याते अभेदपक्षका दोष नहीं, इसरीतिसे उपादानकारणका कार्यते भेदाभेद युक्तिसिद्धहै. और १ प्रतीतिसे भी उपादानते कार्यका भेदाभेदही सिद्ध है यह मृत्पिंड है, यह घटहै इसरीतिकी भिन्न प्रतीतिसे भेद सिद्ध होवै है. और २ विचारते देखैं तो घटके बाहरि भीतर मृत्तिकासे भिन्न कुछ वस्तु प्रतीत होवै नहीं किंतु मृत्तिका ही प्रतीत होवै है. याते अभेद सिद्ध होवै है. इस रीतिसे उपादानकारणका, कार्यते भेदाभेदरूप तादात्म्यसंबंध है. तैसै गुण और गुणीका भी भेदाभेद है १ जो घटके रूपका घटसे अत्यंत भेद होवै तो जैसे घटते पटका अत्यंत भेद है, सो पट घटके आश्रित नहीं किंतु स्वतंत्र है, तैसे घटका रूप भी घटके आश्रित नहीं होवेगा. और २ गुणगुणीका अत्यंत अभेद होवै तौभी घटका रूप घटके आश्रित बनै नहीं, काहेते, अपना आश्रय आप होवै नहीं याते गुणगुणीका भेदाभेदरूप तादात्म्यसंबंध है, यह युक्ति जाति और व्यक्ति तथा क्रिया और क्रियावालेके भेदा-

भेदरूप तादात्म्यसंबंधमें जाननी और खण्डन करना जो मत; ताके विषे बहुत युक्ति कहनेंका प्रयोजन नहीं, याते और युक्ति नहीं लिखी।

अथ भट्टमतखण्डन—दोहा।

एक वस्तुको एकमैं, भेद अभेद विरुद्ध।
युक्तियुक्त यातैं कहत, यह मत सकल अशुद्ध ॥

टीका–अक्षरार्थ स्पष्ट है और अभिप्राय यह हैः—यद्यपि एक घटमें अपना अभेद है और परका भेद है तथापि १ जाका अभेद है ताका भेद नहीं, और जाका भेद है ताका अभेद नहीं, इस अभिप्रायते एक वस्तुका भेद अभेद विरुद्ध कह्या है २तथा एक वस्तुका कहिये, घटकाही अपनेमें अभेद और परमें भेद है.परंतु जामें अभेद है तामें भेद नहीं, और जामें भेद है तामें अभेद नहीं इस अभिप्रायते एक वस्तुका भेद अभेद एकमें विरुद्ध कह्या है. भेद अभेद आपसमें बिरोधी हैं.एक वस्तुमें जाका भेद होवै ताका अभेद,और जाका अभेद होवै ताका भेद विरुद्ध है. याते वाच्यवाचक, गुणगुणी, जातिव्यक्ति, क्रियाक्रियावान्,उपादानकारण कार्यका, जो भेदाभेदरूप तादात्म्य अंगीकार किया,सो अशुद्ध है. पूर्ववाच्यवाचकके भेदाभेदमें प्रमाण जो कह्याः—"१बा-

नीमेंवाचक और बाहर वाच्य, याते भेद और २ श्रुतिमें ॐ अक्षर ब्रह्म कह्या है, याते अभेद "ताका समाधानः—

दोहा।

प्रणव वर्ण अरु ब्रह्मको, कह्यो जु वेद अभेद।
तामें अन्य रहस्य कछु; लख्यो न भट्ट सु भेद॥३३॥

टीका—प्रणववर्ण कहिये ॐ अक्षर अरु ब्रह्मका जो वेदमें अभेदकह्या है, ता वेदवचनका वाच्यवाचकके अभेदमें तात्पर्य नहीं. किंतु तामें अन्य ही रहस्य कहिये गोप्य अभिप्राय है सो भेद कहिये अभिप्राय भट्टने लख्या नहीं. जहां ॐ अक्षर ब्रह्म कह्या है, तिस वाक्यका ॐ अक्षर और ब्रह्मके अभेदमें तात्पर्य नहीं है, किंतु "ॐ" अक्षरकूं ब्रह्मरूप करिकै उपासना करै, इस अर्थमें तात्पर्य है उपासना जाकी विधान करी है, ता उपास्यके स्वरूपका यह नियम नहीं हैः—जैसी उपासना विधान करी है, तैसाही उपास्यका स्वरूप होवै है किंतु जैसा वस्तुका स्वरूपहै ताकूं त्यागिके अन्य स्वरूप की भी ताके विषे उपासना करिये है. १ जैसे शालग्राम और नर्मदेश्वर की विष्णुरूप और शिवरूप करिके उपासना कही है. तहां शंख चक्र आदिक सहित चतुर्भुजमूर्ति शालग्रामकी नहीं है, और गंगाभूषित जटाजूट डमरु चर्मकपालिकासहित-

भद्रामुद्रासे शरणागतनकूं त्रिगुणरहित आत्माका उपदेश देनेवाली मूर्ति नर्मदेश्वर की नहीं है, किंतु दोनों शिलारूप हैं और शास्त्रकी आज्ञाते तिन शिलारूपकी दृष्टि त्यागिके दोनोंविषे क्रमते विष्णुरूप, और शिवरूपकी उपासना करिये है. याते उपास्यके स्वरूपके अधीन उपासना नहीं होवै है, किंतु विधिके अधीन है. जैसे शास्त्रका वचन विधान करै. तैसी उपासना करै २ जैसे छांदोग्य उपनिषद्में, पंचाग्निविद्याप्रकरणमें, स्वर्गलोक, मेघ,भूमि,पुरुष स्त्री इन पांचपदार्थनकी अग्निरूपकरिके उपासनाकही है. और श्रद्धा,सोम, वर्षा, अन्न, वीर्य, इन पांचपदार्थनकी पंच अग्निकी आहुतिरूप उपासना कही है. तहां स्वर्गआदिक अग्नि नहीं हैं, और श्रद्धा सोमआदिक आहुति नहीं हैं. तथापि वेदकी आज्ञाते स्वर्गलोकादिकनकी अग्निरूपते और श्रद्धा आदिकनकी आहुतिरूपते उपासना करिये है. इसरीतिसे ॐ अक्षरकी ब्रह्मरूपकरिकै उपासना कही है. तहां ॐ अक्षर ब्रह्मरूप नहीं है, तौ भी ब्रह्मरूपकरिके उपासना बनै है.

उपासनावाक्यमें वस्तुके अभेदकी अपेक्षा नहीं, किन्तु भीन्न वस्तुकी भी अभिन्नरूपते उपासना होवै है. और विचारते देखिये तो ब्रह्मका वाचक जो ॐ अक्षर

है ताका तो अपने वाच्यब्रह्मते अभेद बनै भी है. घटादिक अन्यपदनका अपने अपने जडरूप अर्थसे अभेद बनै नहीं. काहेते, सर्वनामरूप ब्रह्ममें कल्पित है ब्रह्म अधिष्ठान है. ॐअक्षर भी ब्रह्मका नाम है, याते ब्रह्ममें कल्पित है; कल्पितवस्तु अधिष्ठानसे भिन्न होवै नहीं; किंतु अधिष्ठानरूपही होवै है, याते ॐ अक्षर ब्रह्मरूप है. और घटआदिक पदनका जो जडरूप अपना अर्थ, सो अधिष्ठान नहीं. किंतु वाच्यसहित घटआदिक पद ब्रह्ममें कल्पित हैं; और ब्रह्म तिनका अधिष्ठान है. याते ब्रह्मसे तो सर्वका अभेद बनै भी है, परन्तु घटआदिक पदनका अपने जडरूप वाच्यअर्थसे, अभेद किसी रीतिसे बनै नहीं. याते भट्टमतमें वाच्य वाचकका अभेद असंगत है. और–

केवल भेद जो वाच्यवाचकका अंगीकार करैं हैं; तिन्हके मतमें यह दोष भट्टने कह्या है:–जो घटपदका वाच्य घटपदसे अत्यंत भिन्न होवै, तौ जैसे घटपदसे अत्यंत भिन्न वस्त्ररूप अर्थकी प्रतीति होवै नहीं; तैसे घटपदसे अत्यन्त भिन्न कलशरूप अर्थकी प्रतीति भी नहीं होवैगी, और घटपदसे वाच्यकूं भिन्न मानिके ताकी घटपदसे प्रतीति मानोगे, तो जैसे घटपदते अत्यंत भिन्न कलशरूप अर्थकी प्रतीति होवै है तैसे अ-

त्यंत भिन्न वस्त्रकी भी घटपदसे प्रतीति हुई चाहिये; यह दोष भी जो सामर्थ्य अथवा इच्छारूप शक्ति नहीं मानैं तिन्हके मतमें है. जो शक्ति अंगीकार करैं तिनके मतमें दोष नहीं, काहेते जो घटपदका वाच्य कलश; और ताका अवाच्य वस्त्रादिक, सो दोनों घटपद से भिन्न हैं. परंतु घटपदमें कलशरूप अर्थके ज्ञानकरनेकी शक्ति है और अन्य अर्थके ज्ञान करनेकी शक्ति नहीं याते घटपदते कलशरूप अर्थते भिन्नअर्थकी प्रतीति होवै नहीं. इसरीतिसे जा पदमें जिस अर्थकी शक्ति है; ताही अर्थकी तिस पदसे प्रतीति होवै है; अन्य अर्थकी नहीं. याते वाच्यवाचकके अत्यंत भेदमें दोष नहीं. तिनका भेद सहित अभेदरूप तादात्म्यसंबंध बनै नहीं. भेद और अभेद आपसमें विरोधी हैं. तैसे उपादानकारणका कार्यते भेदसहित अभेद नहीं; केवलभेद है. और केवलभेदमें जो दोष कह्या है सो नैयायिक और शक्तिवादीके मतमें नहीं. काहेते कारण कार्यके अत्यंत भेदमें यह दोष है:—जो मृत्तिपडसे अत्यंत भिन्न घटकी उत्पत्ति होवै, तो अत्यंत भिन्न तैलकी भी मृत्तिपण्डसे उत्पत्ति हुई चाहिये. और अत्यंतभिन्न तैलकी उत्पत्ति नहीं होवेगी; तो अत्यंतभिन्न घटकीभी मृत्तिपडसे उत्पत्ति नहीं हुई चाहिये.

यह दोष नैयायिकमतमें नहीं. काहेते सर्ववस्तुकी उत्पत्तिमें नैयायिक प्रागभावकूं कारण मानैं हैं. जैसे घटकी उत्पत्तिमें दंड,चक्र, कुलाल कारण हैं तैसे घटका प्रागभावभी घटका कारण है. तैसे सर्वका प्रागभाव सर्वकी उत्पत्तिमें कारण है.१सो घटका प्रागभाव घटके उपादानकारण मृत्पिंडमें रहै है; अन्यमें नहीं. २ तैलका प्रागभाव तिलनमें रहै है; अन्यमें नहीं. ऐसे सर्वकार्यनका प्रागभाव अपने अपने उपादानकारणमें रहै है. जिस पदार्थमें जाका प्रागभाव होवै, तिस पदार्थसे ताकी उत्पत्ति होवै है; अन्यकी नहीं. १ जैसे मृत्पिंडमें घटका प्रागभाव है, याते मृत्पिंडसे घटकी ही उत्पत्ति होवै है; तैलकी नहीं. और २ तैलका प्रागभाव तिलनमें रहै है,याते तिलनते तैलकी ही उत्पत्ति होवै है,घटकी नहीं; ऐसे सर्वकार्यमें प्रागभाव कारण है. याते कारणकार्यका अत्यंतभेद माननेते नैयायिक मतमें दोष नहीं. और–

सामर्थ्यरूप शक्तिवादीके मतमें दोष नहीं काहेते, मृत्पिंडमें घटकी सामर्थ्यरूप शक्ति है; तैलकी नहीं और तिलनमें तैलकी सामर्थ्य है,घटकी नहीं. याते मृत्पिंडते घटकी उत्पत्ति होवै है, और तैलकी नहीं, तैसे तिलनते तैलकी ही उत्पत्ति होवै है, घटकी नहीं. इसरीतिसे उपा-

दानकारणका और कार्यका अत्यंत-भेद माननेमें दोष नहीं. भेदाभेद असंगत है, और भेदमें तथा अभेदमें जो दोष भट्टने कहे हैं;सो दोनोंपक्षके दोष भट्टके मतमें अवश्य रहैं हैं. काहेते; भट्टने भेदसहित अभेद अंगीकार किया है याते यह अर्थ सिद्ध हुवाः– कारणकार्यका भेद भी है, और अभेद भी है १ भेद है याते भेदपक्ष उक्त दोष होवेंगे; और २ अभेद हैं याते अभेदपक्ष उक्त दोष होवेंगे जैसे चोरीका दोष और द्यूतका दोष जो एकएक करनेवालेकूं कहैं हैं;सो दोऊ व्यसन जाके होवें, ताके चोरी द्यूत दोनों दोष होवैं हैं तैसे गुणगुणी आदिकनके भेदाभेद माननेते भी भेदपक्ष और अभेदपक्षके दोनोंदोष होवेंगे, और शक्तिवादीके मतमें केवल भेद अंगीकार कियेते दोष नहीं काहेते गुणीमें गुणके धारनेकी शक्ति है; अन्यकी नहीं याते भेदपक्षमें जो दोष कह्याथाः–घटके रूपादिक जैसे घटसे भिन्न हैं, तैसे पटआदिक भी घटसे भिन्न हैं रूपादिकनकी न्याईं पटआदिक भी घटमें रहे चाहियें अथवा पटआदिकनकी न्याईं रूपादिक भी नहीं रहे चाहियें सो दोष शक्ति नहीं अंगीकार करे ताके मतमें है. शक्तिवादीके मतमें केवल भेद मानेते भी दोष नहीं. उलटा. १ भट्टमतमें भेद अभेद दोनों माननेते, दोनोंपक्षके दोष, उक्तदृष्टांत से हैं. और २भेद अभेद विरोधी धर्मका असंभव दोष

है. तैसे जातिव्यक्तिका और क्रिया क्रियावान्‌का भी केवल भेद है. तथापि व्यक्तिमें जातिके धारनेकी शक्ति है; और क्रियावान्‌में क्रियाधारनेकी शक्ति है; अन्यधारनेकी शक्ति नहीं. इसरीतिसे उपादान और कार्यका तथा गुणगुणी आदिकनका भेदाभेदरूप तादात्म्यसंबंध असंगत है. सबका आपसमें भेद माननेमें भट्टउक्तदोषनकूं शक्ति ग्रसै है. यद्यपि वेदांतसिद्धांतमें भी कार्य गुण जाति क्रियाका उपादान गुणी व्यक्ति क्रियावान्‌से अत्यंत भेद नहीं, किंतु तादात्म्य संबन्धही अंगीकार किया है. तथापि वेदांतमतमें भेदाभेदरूप तादात्म्य नहीं, किंतु भेद और अभेदसे विलक्षण अनिर्वचनीयरूप तादात्म्यसंबंधहै १ भेदसे विलक्षण है, याते अभेदपक्षके दोष नहीं, और २ अभेदसे विलक्षण है, याते भेदपक्षके दोष नहीं, इस रीतिसे भेदाभेदसे विलक्षण अनिर्वचनीय तादात्म्यसंबंध है. परंतु भेदाभेदरूप तादात्म्य असंगत है याते "वाचकवाच्यका भेदाभेदरूप तादात्म्यसंबंधही शक्ति है," यह भट्टअनुसारीका पक्ष समीचीन नहीं. किंतु पदके सुनते ही अर्थके ज्ञान करनेकी जो पदमें सामर्थ्य, सोई पदमें शक्ति है. इति शक्तिनिरूपण.

लक्षणाके ज्ञानमें शक्यका ज्ञान उपयोगी है. काहेते शक्यसंबंध लक्षणाका स्वरूप है. शक्य जाने बिना

शक्यसंबंधरूप लक्षणाका ज्ञान होवै नहीं याते शक्यका लक्षण कहैं हैंः—

दोहा ।

है पदमें जा अर्थकी, शक्ति शक्य सो जानि ।
वाच्य अर्थ पुनि कहत तिहिं, वाचक पदहि पिछानि॥

टीका—जा पदमें जा अर्थकी शक्ति होइ, ता पदका सो अर्थ शक्य जानि. और शक्यअर्थकूंही वाच्य अर्थ भी कहैं हैं. जैसे अग्निपदमें अंगाररूप अर्थकी शक्ति है, याते अग्निपदका अंगार शक्यअर्थ और वाच्यअर्थ कहिये है. और वाच्य अर्थका बोधक पद वाचक कहिये है.

लक्ष्य अर्थ और लक्षणाका सामान्यरूप ।

अथ लक्षणा और जहतीआदिकभेदलक्षण ।

कवित्त—शक्यको संबंध जो स्वरूप जानि लक्षणको;
लक्षणा सो भान जाको लक्ष्य सु पिछानिये ।
वाच्यअर्थ सारो त्यागि वाच्यको संबंध जहां,
होई परतीति तहां जहती बखानिये ॥
वाच्ययुत वाच्यके संबंधीका जु ज्ञानि होय,
ताहि ठौर लक्षणा अजहतिहि मानिये ।
एक वाच्य भागत्याग होत तहां भागत्याग,
दूजो नाम जहती अजहती प्रमाये ॥ ३९ ॥

टीका-शक्य कहिये वाच्य अर्थका जो संबध कहिये मिलाप, सो लक्षणाका स्वरूप कहिये लक्षण जानि. और जा अर्थका पदकी शक्तिसे ज्ञान होवै, किंतु लक्षणाते भान कहिये ज्ञान होवै, सो पदका लक्ष्य अर्थ कहिये है. एक पादसे लक्षणाका स्वरूप कह्या.

जहति अजहति और भागत्यागलक्षणाका लक्षण।

लक्षणाके जहतिआदिक तीनहूँ भेदनके लक्षण एक एकपादमें कहैं हैं--"वाच्य" इत्यादिसे. १ जहां वाच्य अर्थ संपूर्ण त्यागिके वाच्य अर्थके संबंधीकी प्रतीति होवै, तहां जहतिलक्षणा कहिये है. जैसे किसीने कह्या "गंगामें ग्राम है" या स्थानमें गंगापदकी तीरमें जहतिलक्षणा है. काहेते, गंगापदका वाच्य अर्थ देवनदीका प्रवाह है, ताके विषे ग्रामकी स्थितिका असंभव है. याते सारे वाच्य अर्थकूं त्यागिके तीरविषे गंगापदकी जहतिलक्षणा है. वाच्यके संबधका नाम लक्षणा है. या स्थानमें गंगापदका वाच्य जो प्रवाह ताका तीरसे संयोग संबंध है; याते गंगापदके वाच्यका जो तीरसे संबंध सो लक्षणा और संपूर्ण वाच्यका त्याग याते जहतिलक्षणा. २ "वाच्ययुत" इत्यादि, तृतीयपादसे अजहतिलक्षणा दिखावैं हैं:--वाच्ययुत कहिये वाच्यअर्थसहित, वाच्यके संबंधीका जा पदसे ज्ञान होय

ता पदमें अजहतिलक्षणा मानिये. जैसे किसीने कह्या "सोन धावन करै है" तहां सोनपदकी लालरंगवाले अश्वविषे अजहतिलक्षणा. काहेते, सोन नाम लालरंगकाहै. याते सोनपदका लालरंग वाच्य है. ता केवलमें धावनका असंभव है, इस कारणते सोनपदका वाच्य जो लालरंग ता सहित अश्वमें सोन पदकी अजहतिलक्षणा है. (भाषामें शोणकूं सोन पढै हैं.)गुणका और गुणीका तादात्म्यसंबंध कहैं हैं; और लाल भी रूपका भेद होनेते गुण है याते सोनपदका वाच्य जो लालगुण, ताका गुणी अश्वके साथ जो तादात्म्यसम्बन्ध, सो लक्षणा और वाच्यका त्याग नहीं, अधिकका ग्रहण; याते अजहतिलक्षणा–

"एक वाच्य" इत्यादि चतुर्थपादसे भागत्याग लक्षणा बतावैं हैं:--जहां पदनके वाच्य अर्थ मध्य एक भागका त्याग होवै एक भागका ग्रहण होवै, तहां भागत्याग लक्षणा कहिये है. ता भागत्यागकूं ही जहतिअजहतिलक्षणा भी कहैं हैं जैसे प्रथम देखे पदार्थकूं अन्य देशमें देखिके किसीने कह्या "सो यह है" तहां भागत्यागलक्षणा है. काहेते अतीतकालमें और अन्य देशमें स्थित वस्तुकूं "सो" कहै है. याते अतीतकालसहित और अन्य देशसहित वस्तु, सो पदका वाच्यअर्थ है.

और वर्तमानकाल समीपदेशमें स्थित वस्तुकूं "यह" कहै है, याते वर्तमानकाल सहित और समीप देश सहित वस्तु, यह पदका वाच्यअर्थ है और अतीतकाल सहित अन्यदेशसहित जो वस्तु, सोई वर्तमानकाल और समीपदेशसहित है यह समुदायका वाच्यअर्थ है. सो संभवै नहीं काहेते अतीतकाल और वर्तमानकालका विरोध है,तथा अन्यदेशका और समीपदेशका विरोध है,याते दोनों पदनमें देशकाल जो वाच्यभाग ताकूं त्यागिके वस्तुमात्रमें दोनों पदकी भागत्यागलक्षणा.

महावाक्यनमें लक्षणा।

"तत्त्वमसि" महावाक्यमें लक्षणा दिखावनेकूं तत्पद और त्वंपदका वाच्यअर्थ दिखावैं हैं;

दोहा।

सर्वशक्ति सर्वज्ञ विभु; ईश स्वतंत्र परोक्ष।
मायी तत्पद वाच्यसो; जामें बंध न मोक्ष ॥३६॥

टीका-१ सर्वशक्ति कहिये जामें सर्वसामर्थ्य, २ सर्वज्ञ कहिये सर्व वस्तुका जाननेवाला. ३ विभु कहिये व्यापक. ४ ईश कहिये सर्वका प्रेरक. और५ स्वतंत्र कहिये कर्मके अधीन नहीं. और ६ परोक्ष कहिये जीवके प्रत्यक्षका विषय नहीं. ७ मायी कहिये माया जाके अधीन और ८ बंधमोक्षरहित. जामें बंध होवै

ताका मोक्ष होवै है. ईश्वर बंधरहित है. याते ईश्वरमें मोक्ष भी नहीं. इतने धर्मवाला ईश्वरचेतन तत्पदका वाच्य अर्थ है.

अथ त्वंपदवाच्यनिरूपण-दोहा ।

कहे धर्म जो ईशके, सब तिनतैं विपरीत ॥
है जिहिं चेतन जीव तिहिं, त्वंपद वाच्यप्रतीत ॥३७॥

टीका-जो ईशके धर्म कहे तिनते विपरीतधर्म जामें होवें सो जीवचेतन त्वंपदका वाच्य; प्रतीत कहिये जान. याका भाव यह है:-१अल्पशक्ति; २अल्पज्ञ, ३परिच्छिन्न, ४ अनीश, ५ कर्मके अधीन; ६ अविद्यामोहित और ७ बंधमोक्षवाला, और ८ प्रत्यक्ष. काहेते, अपना स्वरूप किसीकूं परोक्ष नहीं. प्रत्यक्षही होवै है. यद्यपि ईश्वरकूं भी अपना स्वरूप प्रत्यक्ष है; तथापि ईश्वरका स्वरूप जीवकूं प्रत्यक्ष नहीं, याते परोक्ष कहिये है औरजीवके स्वरूपकूं जीवईश्वर दोनों जानैं हैं; याते प्रत्यक्षकहिये हैं, इतने धर्मवाला जीवचेतन त्वंपदका वाच्यकहिये है.

वाच्य अर्थमें एकताका विरोधऔर लक्षणकी कर्तव्यता-

दोहा

महावाक्यमें एकता, है दोनोंकी भान ॥
सो न बनै यातैं सुमति; लक्ष्यलक्षणहि जान ॥३८॥

टीका–सामवेदके छांदोग्यउपनिषद्में उद्दालकमुनिने अपने पुत्र श्वेतकेतुकूं जगत्की उत्पत्ति करनेवाला ईश्वर बतायके कह्या:–

"तत्त्वमसि" ताका यह वाच्यअर्थ है:–१तत् कहिये सो जगत्की उत्पत्ति करनेवाला, सर्वशक्ति सर्वज्ञता-आदिकधर्मसहित ईश्वर, २ त्वं कहिये तू अल्पशक्ति अल्पज्ञता आदिक धर्मवाला जीव ३ असि कहिये है. इहां "सो तू है" इस कहनेते; ईश्वर जीवकी एकता वाच्यअर्थसे भान होवै है, सो बनै नहीं काहेते, १ सर्वशक्ति और अल्पशक्ति, २ सर्वज्ञ और अल्पज्ञ, ३ विभु और परिच्छिन्न, ४स्वतंत्र और कर्म अधीन, ५ परोक्ष और प्रत्यक्ष, ६ माया जाके अधीन, और अविद्यामोहित एक है, यह कहना "अग्नि शीतल है" इस कहनेके समान है. याते हे सुमति! लक्षणही कहिये लक्षणाते लक्ष्य अर्थ जान. वाच्य अर्थमें विरोध है.

दोहा

आदि दोय नहिं संभवैं, महावाक्यमैं तात ॥
भागत्याग यातैं लखहु, हैं जातैं कुशलात ॥ ३९ ॥

टीका–हे तात! महावाक्यमें आदि दोय कहिये जहतिअजहति नहीं संभवै. याते:भागत्यागलक्षणा महावाक्यमें

लखहु कहिये जानों जाते कुशलात, कहिये विरोधका परिहार होवै.

अथ जहति असंभवप्रतिपादन—दोहा।

ज्ञेय जु साक्षी ब्रह्मचित, वाच्यमाहिं सो लीन।
मानहु जहतीलक्षणा, ह्वै कछु ज्ञेय नवीन॥ ४० ॥

टीका—संपूर्ण वेदांतका ज्ञेय, साक्षीचेतन और ब्रह्मचित कहिये ब्रह्मचेतन है सो साक्षीचेतन और ब्रह्मचेतन त्वंपद और तत्पदके वाच्यमें लीन कहिये प्रविष्ट हैं. और जहतिलक्षणा जहां होवै तहां वाच्यसंपूर्णका त्याग करिके, वाच्यका संबंधी अन्य ज्ञेय होवै है. याते महावाक्यमें जहतिलक्षणा मानैं तो वाच्यमें आया जो चेतन तासे नवीन कहिये अन्य कछु ज्ञेय होवेगा. चेतनसे भिन्न असत् जडदुःखरूप है, ताके जाननेते पुरुषार्थ सिद्ध होवै नहीं, याते महावाक्यमें जहतिलक्षणा नहीं.

अथ अजहतिलक्षणाअसंभवप्रतिपादन-दोहा।

वाच्यहु सारो रहत है, जहां अजहती मीत॥
वाच्यअर्थ सविरोधयों, तजहु अजहती रीत॥४१॥

टीका—हे मीत प्रिय! जहां अजहतिलक्षणा होवै, तहां वाच्यअर्थ सारै रहै है. और वाच्यसे अधिकका ग्रहण होवै है. महावाक्यनमें अजहतिलक्षणा अंगीकार करैं तो वाच्यअर्थ सारा रहेगा. और वाच्यअर्थ महा

वाक्यनमें सविरोध कहिये विरोध सहित है. विरोध दूरि करनेकूं लक्षणा अंगीकार करी है, अजहती मानैं तो महावाक्यनमें विरोध दूरि होवै नहीं याते अजहतीकी रीति महावाक्यनमें तजहु.

अथ भागत्यागलक्षणाप्रकार–दोहा ।

त्यागि विरोधीधर्म सब, चेतन शुद्ध असंग ।
लखहु लक्षणातें सुमति, भागत्याग यह अंग॥४२॥

टीका–हे अंग ! हे प्रिय ! तत्पदका वाच्य ईश्वर; और त्वंपदका वाच्य जीव तिन्हके आपसमें विरोधीधर्म त्यागिके शुद्ध असंग चेतन लक्षणाते लखहु यह भागत्यागलक्षणा है. या स्थानमें यह सिद्धांत है:– ईश्वरजीवका स्वरूप अनेकप्रकारका अद्वैतग्रंथनमें कह्या है. १ विवरणग्रंथमें अज्ञानमें प्रतिबिंब जीव और बिंब ईश्वर कह्याहै और२ विद्यारण्यके मतमें शुद्धसत्त्व गुणसहित मायामें आभास ईश्वर ;और मलिन सत्त्वगुण सहित जो अंतःकरणका उपादानकारण अविद्याका अंश; तामें आभास जीव कह्या है.

जीव ईश्वरके स्वरूपमें पञ्चदशीकार तथा विवरणकारादिकका मत(आभासप्रतिबिंब व अवच्छेदवाद) यद्यपि पंचदशीग्रंथमें विद्यारण्यस्वामीने अंतःकरणमें आभास जीव कह्या है, तथापि अंतःकरणके आभासकूं

जीव मानैं तो सुषुप्तिमें अंतःकरण रहै नहीं, याते जीवका भीअभाव हुवा चाहिये और प्राज्ञरूपजीव सुषुप्तिमेंरहैहै, याते विद्यारण्यस्वामीका यह अभिप्राय हैः—अंतःकरणरूप परिणामकूं प्राप्तजो होवै अविद्याकाअंश, तामेंआभास जीव है. सो अविद्याका अंश सुषुप्तिमें भी रहैहै, याते प्राज्ञका अभाव नहीं और केवलआभासहीजीवईश्वर नहींहै किंतु १मायाका अधिष्ठानचेतनऔर मायासहितआभास ईश्वर है. और२अविद्याअंशका अधिष्ठानचेतन, और अविद्याके अंशसहित आभास जीव है. १ ईश्वरकी उपाधिमें शुद्धसत्त्वगुण है, याते ईश्वरमें सर्वशक्ति सर्वज्ञतादिक धर्म हैं. और२जीवकी उपाधिमें मलिनसत्त्वगुण है याते जीवमें अल्पशक्ति अल्पज्ञतादिक धर्म हैं, याकूं आभासवाद कहैं हैं और—

विवरणके मतमें यद्यपि जीव ईश्वर दोनोंकी उपाधि एक ही अज्ञान है; याते दोनों अल्पज्ञ हुये चाहियें; तथापि जा उपाधिमें प्रतिबिंब होवै ताका यह स्वभाव होवै हैः—प्रतिबिंबमें अपने दोष करे है, बिंबमें नहीं जैसे दर्पणरूप उपाधिमें मुखका प्रतिबिंब होवै है, ग्रीवामें स्थित मुख बिम्ब है; तहां दर्पणरूप उपाधिके श्याम पीत लघुतादिक अनेकदोष प्रतिबिंबमें भान होवैं हैं और ग्रीवामें स्थित जो बिंब है, तामें भान होवै नहीं

तैसे दर्पणस्थानी जो अज्ञान, तिसविषे प्रतिबिंबरूप जीवमें अज्ञानकृत अल्पज्ञतादिक दोष हैं; और बिंब-रूप ईश्वरमें नहीं याते १ ईश्वरमें सर्वज्ञतादिक हैं;और२ जीवमें अल्पज्ञतादिक हैं आभास और प्रतिबिंबकाइतना भेद है:--आभासपक्षमें तो आभास मिथ्या है, और प्रतिबिंबवादमें प्रतिबिंब मिथ्या नहीं, किंतु सत्य है. काहेते, प्रतिबिंबवादीका यह सिद्धांत है:--दर्पणमें जो मुखका प्रतिबिंब है,सो मुखकी छाया नहीं. काहेते, १ छायाका यह स्वभाव है:--जिस दिशामें छायावान्के मुख और पृष्ठ होवैं, उस दिशामें छायाके मुख और पृष्ठ होवैं हैं और दर्पणके प्रतिबिंबके मुख, पीठि, बिंबसे विपरीत होवैं हैं. याते दर्पणमें छायारूप प्रतिबिंब नहीं, किंतु दर्पणको विषय करनेवास्ते, नेत्रद्वारा निकसी जो अंतःकरणकी वृत्ति, सो दर्पणकूं विषय करिके, तत्काल ही दर्पणसे निवृत्त होयके, ग्रीवामें स्थित मुखकूं विषय करै है;जैसे भ्रमणके वेगसे अलातका चक्र भान होवै है, और चक्र नहीं है. तैसे दर्पण और मुखके विषय करनेमें वृत्तिके वेगते मुख दर्पणमें स्थित भान होवै है और मुख ग्रीवाविषे ही स्थित है, दर्पणमें नहीं; और छाया भी नहीं, वृत्तिके वेगसे जो दर्पणमें मुखकी प्रतीति, सोई प्रतिबिंब है. इसरीतिसे दर्पणरूप

उपाधिके संबन्धसे, ग्रीवामें स्थित मुखही बिंबरूप और प्रतिबिंबरूप भान होवै है. और विचारसे बिंब प्रतिबिंबभाव है नहीं. तैसे अज्ञानरूप उपाधिके संबंधसे असंगचेतनमें बिंबस्थानी ईश्वरभाव और प्रतिबिंब-स्थानी जीवभाव प्रतीत होवै है, और विचारदृष्टिसे ईश्वरता जीवता है नहीं; अज्ञानतै जो चेतनमें जीव-भावकी प्रतीति, सोई अज्ञानमें प्रतिबिंब कहिये है. यातै बिंबपना और प्रतिबिंबपना तो मिथ्या है, और स्वरूपसे बिंबप्रतिबिंब सत्य हैं. काहेते, बिंबप्रतिबिंबका स्वरूप दृष्टांतविषे तो मुख है और दार्ष्टांतविषे चेतन है, सो मुख और चेतन सत्य है. १ इसरीतिसे प्रतिबिंबकूं स्वरूपतै सत्य होनेतै सत्य कहैं हैं. और २ आभासका स्वरूप छाया मानैं हैं, यातै मिथ्या है. यह आभासवाद और प्रतिबिंबवादका भेद है. और—कितने ग्रंथनमें १ शुद्धसत्त्वगुणसहित मायाविशिष्टचेतन:ईश्वर कहिये है. और २ मलिनसत्त्वगुणसहित अन्तःकरणका उपादान अविद्याके अंशविशिष्टचेतन, जीव कहिये है. याकूं अवच्छेदवाद कहैं हैं. सर्वही वेदांतकी प्रक्रिया अद्वैत आत्माके जनावनेकूं है, यातै जौनसी प्रक्रियातै जिज्ञा-सुकूं बोधहोवै सोई ताकूं समीचीन है. तथापि वाक्य-वृत्ति और उपदेशसाहस्रीमें, भाष्यकारने आभासवाद

ही लिखा है, याते आभासवाद ही मुख्य है.

चारि महावाक्यनमें भागत्यागका प्रदर्शन।

१ माया और मायामें आभास और मायाका अधिष्ठान जो चेतन सो सर्वशक्ति सर्वज्ञता आदिक धर्म सहित ईश्वर है, सोई तत्पदका वाच्य है. और २ व्यष्टि अविद्या, तामें आभास और ताका अधिष्ठानचेतन अल्पशक्ति अल्पज्ञतादिक धर्मसहित जीव है, सो त्वंपदका वाच्य है. तिन्ह दोनोंकी "तत्त्वमसि" वाक्यने एकता बोधन करी, और बनै नहीं. याते १ आभाससहित माया और मायाकृत सर्वशक्ति सर्वज्ञतादिक धर्म इतने वाच्यभागकूं त्यागिके चेतनभागविषे तत्पदकी भागत्यागलक्षणा. २ तैसे आभाससहित अविद्याअंश, और अविद्याकृत अल्पशक्ति अल्पज्ञतादिक धर्म, जो त्वंपदका वाच्यभाग. ताकूं त्यागिके चेतनभागमें त्वंपदकी भागत्यागलक्षणा." इसरीतिसे—

भागत्यागलक्षणाते, १ ईश्वर और जीवके स्वरूपमें लक्ष्य जो चेतनभाग, तिनकी एकता "तत्त्वमसि" महावाक्य बोधन करै है. २ तैसे "अयं आत्मा ब्रह्म" इस महावाक्यमें आत्मापदका जीव वाच्य है, और ब्रह्मपदका ईश्वर वाच्य है. ब्रह्मपदका शुद्ध वाच्य नहीं, ईश्वर ही वाच्य है, यह चतुर्थतरंगमें प्रतिपादन करि आये हैं

पूर्वकी न्याई दोनोंपदनकी लक्षणा है. लक्ष्य अर्थ परोक्ष नहीं, इस अर्थकूं जनावनेकूं अयंपद है; अयं कहिये सबके अपरोक्ष आत्मा ब्रह्म है, यह वाक्यका अर्थ है. ३ "अहं ब्रह्मास्मि" इस महावाक्यमें अहंपदका जीव वाच्य है, और ब्रह्मपदका ईश वाच्य है, दोनों पदनकी चेतनभागमें लक्षणा. "मैं ब्रह्म हूँ," यह वाक्यका अर्थ है. "प्रज्ञानमानंदं ब्रह्म" इस महावाक्यमें, प्रज्ञानपदका जीव वाच्य है, ब्रह्मपदका ईश है, पूर्वकी न्याई लक्षणा लक्ष्य जो ब्रह्मात्मा, सो आनंदगुणवाला नहीं, किंतु आनंदरूप है इस अर्थके जनावनेकूं आनंदपद है. आत्मासे अभिन्न ब्रह्म आनंदरूप है; यह वाक्यका अर्थ है. जैसे महावाक्यनमें भागत्यागलक्षणा है, तैसे अन्यवाक्यनमें सत्य ज्ञान, आनंदपद भी शुद्धब्रह्मकूं भागत्यागलक्षणासे ही बोधन करे है, शक्तिसे नहीं. काहेते, शुद्धब्रह्म किसीपदका वाच्य नहीं, यह सिद्धांत है. याते सारे पद विशिष्टके वाचक हैं, और शुद्धके लक्षक हैं १ मायाकी आपेक्षिकसत्यता, और चेतनकी निरपेक्षिकसत्यता मिली हुई सत्यपदका वाच्य है निरपेक्षिक सत्य लक्ष्य है; २ बुद्धिवृत्तिरूप ज्ञान और स्वयंप्रकाशज्ञान, दोनों मिलें तो ज्ञानपदका वाच्य, और स्वयंप्रकाशभाग लक्ष्य ३ विषयसंबंधजन्य सुखाकार सात्त्विक अंतःकरणकी वृत्ति, और परमप्रेमका आस्पदस्वरूप

सुख; दोनों मिले आनंदपदका वाच्य; और वृत्तिभागकूं त्यागिके स्वरूपभाग लक्ष्य इसरीतिसे सर्वपदनकी शुद्धमें लक्षणा, संक्षेपशारीरमें प्रतिपादन करी है;

अथ उक्तअर्थसंग्रह।

कवित्त।

गंगामैं ग्राम जहतिलक्षणा या ठौर लखि,
सोन धावे लक्षणा अजहति जनाइये।
"सोई यह वस्तु" इहां लक्षणा है भागत्याग,
दूजो नाम जहति औ अजहति सुनाइये॥
"तत्त्वमसि" आदिमहावाक्यनमैं भागत्याग,
लक्षणा न जहति अजहति बताइये।
ब्रह्म काहुपदको न वाच्य यों बखान वेद,
याते सर्वपदनमें रीति यों लखाइये॥ ४३॥
मायामाहिं सत्यता जु और भांति भाषियत,
ब्रह्ममाहिं सत्यता सु और भांति भाषिये।
दोऊ मिलि सत्यपद वाच्य मुनि भाषत हैं,
ब्रह्ममाहिं सत्यता सु लक्ष्यभाग राखिये॥
बुद्धिवृत्ति संवित द्वै मिले ज्ञानपद वाच्य,
संवितस्वरूप लक्ष्य बुद्धिवृत्ति नाखिये।
आतम औ विषैको सुख वाच्यपद आनंदको,
विषैसुख त्यागि आतमसुख लक्ष आखिये॥ ४४॥

महावाक्यनमें विरोध दूरिकरनेको दोनों पदनमें लक्षणा अंगीकार करी. तहां कोई कहै हैः—एकपदमें लक्षणा अंगीकार कियेसे ही विरोध दूरि होवै है;दोयपदमें लक्षणा माननेका प्रयोजन नहीं—

दोहा।

एकहि पदमें लक्षणा, मानै नहीं विरोध।
दोयपदनमें लक्षणा, निष्फल कहत सुबोध ॥४९॥

टीका—सुबोध कहिये सुज्ञ दोयपदनमें लक्षणा निष्फल कहते हैं काहेते एकही पदमें लक्षणा मानेते विरोध दूरि होय जावै है. याका भाव यह हैः—यद्यपि सर्वज्ञतादि विशिष्टकी अल्पज्ञतादि विशिष्टके साथ एकता नहीं बनै है; तथापि एकपदका लक्ष्य जो शुद्ध ताकी विशिष्टके साथ एकता बनै है. दृष्टांत—जैसे १ "शूद्रमनुष्य,ब्राह्मण है"इस रीतिसे शूद्रत्वधर्मविशिष्ट मनुष्यकी ब्राह्मणत्वधर्मविशिष्टके साथ एकता कहना विरुद्ध है. और २ "मनुष्य ब्राह्मण है" इसरीतिसेशूद्रत्वधर्मरहित शुद्धमनुष्यकूं ब्राह्मणत्वविशिष्टता कहनेमें विरोध नहीं. तैसे १ अल्पज्ञतादिधर्मविशिष्टचेतनकी, और सर्वज्ञतादिधर्मविशिष्टकी एकता विरुद्ध भी है; २ परंतु जीववाचकपद और ईश्वरवाचक पदकी, चेतनमें लक्षणाकरिके चेतनमात्रकी सर्वज्ञतादिविशिष्टके

साथ, वा अल्पज्ञतादिविशिष्टके साथ एकता कहनेमें विरोध नहीं, याते दोपदमें लक्षणा माननेमें कोई युक्ति नहीं. १ समाधान-

कवित्त ।

लक्षणा जो कहै एकपदमाहिं ताकूं यह,
पूछि दोयपदनमें कौनसेमें लक्षणा ।
प्रथम वा द्वितीयमें कहै ताहि भाषि यह,
वाक्यनको होयगो विरोध मूढलक्षणा ॥
तीनिवाक्यमध्य जीववाचक प्रथमपद,
"तत्त्वमसि"यामें आदिपद ईशलक्षणा ।
प्रथम वा द्वितीयको नेम नहिं बनै याते,
भाषत द्वैपदनमें लक्षणा सुलक्षणा॥४६॥

टीका-जो एकपदमें लक्षणा अंगीकार करै;ताकूं यह पूछि:-दोनोंपदनमेंसे कौनसे पदमें लक्षणा है ? जो ऐसे कहै, १ सर्वमहावाक्यनके प्रथमपदमें लक्षणा है, द्वितीयपदमें नहीं. २ यद्वा, द्वितीयपदमें लक्षणा सर्ववाक्यनमें है. प्रथमपदमें नहीं. ताकूं हे शिष्य ! यह भाषि:-हे मूढलक्षण ! प्रथम वा द्वितीयपदमें जो नेमते लक्षणा सर्ववाक्यनमें मानै; तो वाक्यनका परस्पर विरोध होवैगा. काहेते १ तीनवाक्य मध्य कहिये, "अहं ब्रह्मास्मि" "प्रज्ञानमानंदं ब्रह्म" "अयमात्मा ब्रह्म," इन

तीन वाक्यनमें जीववाचकपद प्रथम कहिये पूर्व है और "तत्त्वमसि," या वाक्यमें आदिपद कहिये प्रथमपद ईश लक्षण कहिये, ईश्वरका बोधक है. जो पूर्वपदमें लक्षणा सारे मानैं तो तीनिवाक्यनका तो यह अर्थ होवेगा:— चेतन सर्वज्ञतादिविशिष्ट अंश सारे ईश्वररूप हैं. और "तत्त्वमसि" वाक्यका यह अर्थ होवैगा:—चेतन अल्पज्ञतादिविशिष्ट संसारी जीवरूप है. काहेते, तीनिवाक्यनमें पूर्व जीववाचकपद है; ताका चेतनभागमें लक्षणा और द्वितीय जो ईश्वरवाचकपद; ताके वाच्यका ग्रहण और "तत्त्वमसि" में आदि ईशवाचकपद, ताकी चेतनभागमें लक्षणा, और द्वितीय जीववाचकपद ताकेवाच्यका ग्रहण. इसरीतिसे लक्षणाका नेम करै तो वाक्यनका परस्पर विरोध होवेगा. तैसे सर्व वाक्यनके द्वितीयपद कहिये, आगिले पदमें लक्षणा मानैं; तो तीनिवाक्यनमें पूर्व जो जीवपद, ताके वाच्यका ग्रहण, और उत्तर ईशपदकी चेतनाभागमें लक्षणा. याते अल्पज्ञतादिधर्मविशिष्ट चेतन है, यह तीनिवाक्यनका अर्थ होवेगा. और "तत्त्वमसि" मैं आदि ईशपद ताके वाच्यका ग्रहण, और द्वितीयजीवपदकी चेतनभागमें लक्षणा. याते सर्वज्ञतादिधर्मविशिष्ट चेतन है; यह "तत्त्वमसि" का अर्थ होनेते,

परस्पर विरोधही होवेगा. इसरीतिसे प्रथम वा द्वितीय पदमें, लक्षणाका नेम बनै नहीं. याते सुलक्षणा कहिये, सुंदर हैं लक्षण जिनके ते आचार्य द्वै पदनमें लक्षणा भाषत हैं. और–

जो ऐसे कहैं,प्रथमपद वा द्वितीयपदमें लक्षणा है,यह नियम नहीं करै है, किंतु सर्ववाक्यनमें जो ईश्वरवाचकपद, तामें लक्षणा है, यह नियम करै है, सो ईश्वर वाचक पूर्व होवै वा उत्तर होवै याते वाक्यनका परस्पर विरोध नहीं. ताका समाधान–

दोहा।

ईशपदहि लक्षक कहै, सब अनर्थकी खानि।
ज्ञेय होय श्रुतिवाक्यमैं, है पुरुषारथहानि॥४७॥

टीका–जो ईश्वरवाचक पदकूंही लक्षक कहै तो सर्व अनर्थ अल्पज्ञता पराधीनता जन्ममरणसे आदिलेके; जो दुःखके साधन तिनकी खानि जो संसारी जीव सो श्रुतिवाक्यनमें ज्ञेय होवैं. याते पुरुषार्थ कहिये मोक्षकी हानि होवैगी. याका भाव यह हैः–जो श्वरवाचकपदमें ही लक्षणा माने,तो महावाक्यनका यह अर्थ होवैगाः-तत्पदका लक्ष्य जो अद्वय असंग माय, मलरहित चेतन; सो काम कर्म अविद्याके अधीन अल्पज्ञ, अल्पशक्ति, परिच्छिन्न, पुण्य,पाप, सुख,दुःख

जन्म, मरण, गमन, आगमन आदिक अनंत अनर्थका पात्र है. जो महावाक्यका ऐसा अनर्थ होवै, तौ जिज्ञासुकूं इसी अर्थ विषे बुद्धिकी स्थिति करनी होवेगी और जामें बुद्धिकी स्थिति होवै है, प्राण वियोगसें अनंतर ताहीकूं प्राप्त होवै है. याते वेदवाक्यनके विचारसे मुमुक्षुकूं अनर्थकीही प्राप्ति होवैगी; आनंदकी प्राप्ति नहीं होवैगी, याते ईश्वरवाचकपदमें लक्षणा है, जीववाचकमें नहीं, यह नियम असंगत है. और–

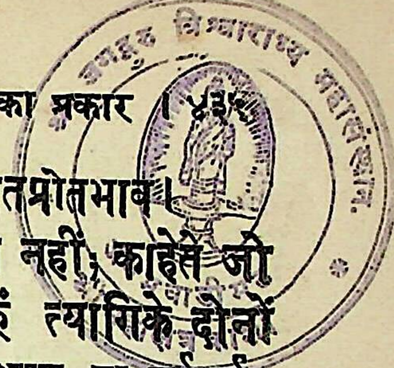
जो ऐसे कहैं:–सर्वमहावाक्यनमें जो जीववाचक पद हैं तिन्हमें लक्षणा है;ईशवाचकमें नहीं. याते पुरुषार्थकी हानि नहीं, काहेते जीववाचकपदमें लक्षणा मानें, तो महावाक्यनका यह अर्थ होवेगा:–जो त्वंपदका लक्ष्य चेतनभाग सो सर्वशक्ति, सर्वज्ञ, स्वतंत्र जन्मादिक बन्धरहित ईश्वररूप है. इस अर्थमें बुद्धिकी स्थितिसे जिज्ञासुकूं अतिउत्तम ईश्वरभावकीही प्राप्ति होवेगी.याते जीववाचकपदमें लक्षणाका नियम करैं हैं. ताका समाधान–

दोहा ।

साक्षी त्वंपद लक्ष्य कहु, कैसे ईशस्वरूप ।
याते दोपद लक्षणा, भाषत यतिवर भूप ॥ ४८ ॥

टीका–त्वंपदका लक्ष्य जो साक्षी,सो ईशस्वरूप कैसे ?

यह कहु. अर्थ–यह त्वंपदके लक्ष्यकूं ईश्वररूप कहना बनै नहीं. याते यति जो संन्यासी तिनमें वर जो श्रेष्ठ; तिनके भूप स्वामी, दोनों पदमें लक्षणा भाषत हैं. याका भाव यह है–जो जीववाचकपदमें लक्षणा माने, और ईशवाचकमें नहीं ताकूं यह पूछें हैं:--१त्वंपदकी लक्षणा व्यापक चेतनमें है, २अथवा जितने देशमें जीवकी उपाधि है, उतने देशमें स्थित जो साक्षी चेतन, तामें त्वंपदकी लक्षणा है।१जो व्यापक चेतनमें त्वंपदकी लक्षणा कहैं, तो बनै नहीं. काहेते, वाच्य अर्थमें जाका प्रवेश होवे; तामें भागत्यागलक्षणा होवै है,और वाच्य-में प्रवेश व्यापकचेतनका नहीं, किंतु जीवपनेकी उपा-धिदेशमें स्थित जो साक्षीचेतन ताका वाच्यमें प्रवेश है. याते साक्षी चेतनमेंही त्वंपदकी लक्षणा है, व्यापकचे-तनमें नहीं. ता साक्षी चेतनमें सर्वके हृदयका प्रेरण और सर्वप्रपञ्चमें व्यापकतादिक ईश्वरके धर्मनका असंभवहै. और साक्षी सदा अपरोक्ष है ताके विषे परोक्षता ईश्वर धर्मका अत्यन्त असंभव है. और२ मायारहितकूं माया विशिष्ट कहना असंभव है. जैसे दंडरहितकूंदंडी कहना और संस्काररहित द्विजबालककूं संस्कारविशिष्टकहना असंभव है, याते साक्षी चेतनका ईश्वरसे अभेद कहैं; तो महावाक्य असंभव अर्थके प्रतिपादक होवैंगे. और-



दोनों पदनमें लक्षण और ओतप्रोतभाव।

दोनोंपदोंमें लक्षणा मानै, तो दोष नहीं; काहेसें जो एकताके विरोधी धर्म हैं; तिन सबकूं त्यागिके दोनों पदोंमें प्रकाशरूप चेतन जो वाच्यभाग, ता सर्वधर्म-रहित चेतनमें दोनों पदनकी लक्षणा उपाधि और उपाधिकृत धर्मनते चेतनका भेद है. स्वरूपसे नहीं. उपाधि और उपाधिकृत धर्मनका त्याग कियेते, दोनोंपदनके लक्ष्य. चेतनकी एकता संभवै है. जैसे घटाकाशमें घटदृष्टि त्यागिके मठविशिष्ट आकाशते एकता बनै नहीं, और मठदृष्टि त्यागकियेते एकता बनै है.

दोहा।

तत्त्वं त्वं तत् रीति यह, सबवाक्यनमें जानि।
जाते होय परोक्षता, परिच्छिन्नता हानि ॥४९॥

टीका–सर्ववाक्यनमें "तत् त्वं" "त्वं तत्," इसरीतिसे ओतप्रोतभावकी रीति जानि. जा ओतप्रोतभाव कियेते वाक्यके अर्थमें परोक्ष और परिच्छिन्नता भ्रांतिकी हानि होवै है.

१ "तत् त्वं," या कहनेते तत्पदके अर्थका त्वंपदके अर्थसे अभेद कह्या. सो त्वंपदका अर्थ साक्षी नित्य अपरोक्ष है; याते परोक्षता भ्रांतिकी हानि और २ "त्वं तत्," या कहनेते त्वंपदके अर्थका तत्पदके अर्थसे

अभेद कह्या, सो तत्पदका अर्थ व्यापक है, याते परिच्छिन्नताभ्रांतिकी हानि १ तैसे "अहं ब्रह्म" "प्रज्ञानं ब्रह्म" "आत्मा ब्रह्म" याते परिच्छिन्नता हानि. २ और "ब्रह्म अहं" ब्रह्म प्रज्ञानं" "ब्रह्म आत्मा" याते परोक्षता हानि.

दोहा।

जीवब्रह्मकी एकता, कहत वेद स्मृति बैन ॥
शिष्य तहां पहिचानिये, भागत्यागकी सैन॥९०॥

टीका–हे शिष्य ! जो वेदबैन और स्मृतिबैन, जीवब्रह्मकी एकता कहैं, तहां सारे भागत्यागकी सैन पहिचानिये ॥ ९० ॥

दोहा।

अस शिष गुरुउपदेश सुनि, भो ततकाल निहार॥
भले विचारै याहि जो, ताके नशत जँजाल॥९१॥

सोरठा।

मिथ्यागुरुसुरबानि, कियो ग्रंथ उपदेश यह ॥
सुनत करत तमहानि, यह ताकी भाषा करी ॥९२॥

दोहा।

अगृधदेवकूं स्वप्नमें, यह किय गुरु उपदेश ॥
नश्यो न तहुँ दुखमूल वह, मिथ्याबनको वेश ॥९३॥

वेश कहिये स्वरूप, अन्य अर्थ स्पष्ट है ॥ ९३ ॥

प्रश्नः-अर्थसहित ग्रंथ पढा तौभी मन दुःखका मूल भासता है ?

अगृध उवाच-चौपाई ।

भगवनयहतुमग्रंथपढायो।अर्थसहितसो मो हियआयो ॥
वनदुखमूलतऊमुहिभासै ।कहुउपायजातेयहनाशै ५४॥
बोलेगुरु सुनि शिषकी बानी। सुनि शिषह्वैजातेवनहानी॥
अस उपायकोउ और नहींहै।बनकानाशकहेतुयही है५५
महावाक्यको अर्थ विचारहु।"मैंअगृध" यों टेरिपुकारहु
सुनिपुनिवाक्य विचारेचेला। 'अहंअगृध'यह दीनोंहेला-
निद्रागई नैन परकाशे।बन गुरुग्रंथ सबै वहनाशे॥भयो सु-
खीबन दुख बिसरायो।हुतो अगृधनिजरूपसुपायो॥मिथ्या
गुरुवेदते अज्ञानजन्य मिथ्या जगत्कापरिहार होवैहै ।

दोहा ।

अगृधदेवमैं नींदते, भौ बनदुख जिहिं रीति ॥
आतममैं अज्ञानतैं, त्यूं जग दुःख प्रतीति ॥ ५८ ॥
ज्यों मिथ्या गुरु ग्रंथतैं, मिथ्या बन संहार ॥
त्यों मिथ्या गुरु वेदतैं, मिथ्या जग परिहार ॥५९ ॥
लक्ष्य अर्थ लखि वाक्यको, ह्वै जिज्ञासु निहाल ॥
निरावरण सो आप है, दादू दीनदयाल ॥ ६० ॥
इति श्रीगुरुवेदादिसाधनमिथ्यावर्णनं नाम षष्ठस्त० ॥६॥

सप्तमस्तरंगः ७.

अथ जीवन्मुक्तिविदेहमुक्तिवर्णनम् ।

ज्ञानीके व्यवहारमें नियम नहीं—

दोहा ।

उत्तम मध्य कनिष्ठ तिहुँ, सुनि अस गुरुउपदेश ॥
ब्रह्म आत्म उत्तम लख्यो, रह्यो न संशय लेश ॥ १ ॥

टीका—यद्यपि गुरुने उपदेश तीनोंकूं साथही किया, तथापि गुरुउपदेशते साक्षात्कार उत्तम तत्त्वदृष्टिकूं हुवा ॥ १ ॥

दोहा ।

भ्रमण करत ज्यों पवनते, सूखो पीपरपात ॥
शेषकर्म प्रारब्धते, क्रिया करत दरशात ॥ २ ॥
कबहुँक चढि रथ वाजि गज, बागबगीचे देखि ॥
नग्नपाद पुनि एकले, फिर आवत तिहिं लेखि ॥ ३ ॥
विविधवेष शय्या शयन, उत्तम भोजन भोग ॥
कबहुँकअनशनगिरिगुहा, रजनिशिला संयोग ॥ ४ ॥
करि प्रणाम पूजन करत, कहुँ जन लाख हजार ॥
उभयलोकते भ्रष्ट लखि, कहत कामि धिक्कार ॥ ५ ॥
जो ताकी पूजा करत, संचित सुकृत सु लेत ॥
दोषदृष्टि तिहिं जो लखै, ताहि पापफल देत ॥ ६ ॥

ऐसे ताके देहको, विना नियम व्यवहार ॥
कबहुँ न भ्रम संदेह ह्वै, लह्यो तत्त्व निर्धार ॥ ७ ॥
नहिं ताकूं कर्तव्य कछु, भयो भेदभ्रम नाश ॥
उपज्यो वेदप्रमाणते, अद्वय ब्रह्म प्रकाश ॥ ८ ॥

ज्ञानीके व्यहारमें नियमका आक्षेप.

ज्ञानीकूं समाधि और शरीरनिर्वाहतैं अधिक अप्रवृत्तिके नियमका आक्षेप.

ज्ञानीके व्यवहारमें, कोउ कहत है नेम ॥
त्रिपुटि तजै दुखहेतु लखि, लहै समाधि सप्रेम ॥ ९ ॥
ह्वै किंचित् व्यवहार जो, भिक्षाशन जलपान ॥
भूलै नाहिं समाधिसुख, ह्वै त्रिपुटीतैं ग्लान ॥ १० ॥
लहै प्रयत्न समाधिको, पुनि ज्ञानी इह हेत ॥
जो समाधिसुखतजि भ्रमत, नर कूकर खर प्रेत ॥ ११ ॥
गौड़पादमुनिकारिका, लिख्यो समाधि प्रकार ॥
ज्ञानी तजि विक्षेप यों, लहै सकलसुखसार ॥ १२ ॥
अष्टअंगबिन होत नहिं, सो समाधिसुखमूल ॥
अष्टअंगते अब सुनो, जे समाधि अनुकूल ॥ १३ ॥
पांचपांचयमनियमलखि, आसन बहुत प्रकार ॥
प्राणायाम अनेकविधि, प्रत्याहार विचार ॥ १४ ॥
छठी धारणा ध्यान पुनि, अरु सविकल्प समाधि ॥
अष्ट अंग ये साधिके, निर्विकल्प आराधि ॥ १५ ॥

मुनि समाधिकर्तव्यता, तत्त्वदृष्टि हँसि देत ॥
उत्तर कछुभाषत नहीं,लखि तिहिं बकत सप्रेत॥ १६॥

टीका–जैसे संप्रेत कहिये प्रेतसहित भूतके आवेशवाला बकै तैसे अन्यथा कहता मुनिकै तत्त्वदृष्टि हँसै है, अन्यदोहाका अक्षरार्थ स्पष्ट है. भाव यह हैः–ज्ञानवान्‌के शरीरव्यवहारका नियम नहीं. काहेते, ज्ञानीके व्यवहारमें, अज्ञान और ताका कार्य भेदभ्रांति; तथा भेदभ्रमके कार्य, रागद्वेष तो हैं नहीं; किंतु ज्ञानवान्‌के भी प्रारब्धकर्म शेष रहे हैं सोईं ताके व्यवहारमें निमित्त हैं सो प्रारब्धकर्म पुरुषभेदसे नानाप्रकारका होवै है. याते ज्ञानीके प्रारब्धकर्मजन्य व्यवहारका नियम नहीं, यह सिद्धांतपक्ष है.

कोई ऐसे कहैं हैंः–ज्ञानीके व्यवहारमें और किसी कर्मका तो नियम नहीं है,परंतु ज्ञानवान्‌की निवृत्तिका नियम है. प्रवृत्ति होवै तो देहस्थितिके हेतु, भिक्षा अशन, कौपीन आच्छादनमात्र ग्रहणमें प्रवृत्ति होवै है अन्य प्रवृत्ति होवै नहीं. काहेते, ज्ञानकी उत्पत्तिसे प्रथम जिज्ञासाकालमें, विषयनमें दोषदृष्टिसे वैराग्य होवै है, सो वैराग्य ज्ञानकी उत्पत्तिसे अनंतर भी,दोषदृष्टिते तथा विषयनमें मिथ्या बुद्धिसे होवैहै. १ अपरोक्षरूपते मिथ्या जाने पदार्थनमें सत्य बुद्धि होवै नहीं,

२ दोषदृष्टिते राग होवै नहीं, और प्रवृत्ति रागते होवैहै. ज्ञानीके राग संभवै नहीं; याते प्रवृत्ति होवै नहीं.

शरीरनिर्वाहक भोजनादिकनमें प्रवृत्ति तौ रागते विना प्रारब्धकर्मते संभवैहै. कर्म तीनि प्रकारकेहैं, १ संचित, २ आगामी और ३ प्रारब्ध. तिनमें १ भूतशरीरनमें किये कर्म फलारंभरहित संचित कहियेहैं. २ भविष्यत्कर्म आगामी कहियेहैं. ३ भूतशरीरनमें किया वर्तमानशरीरका हेतु कर्म प्रारब्ध कहियेहै. तिनमें १ संचित कर्मका ज्ञानते नाश होवै है. २ ज्ञानवानकूं आत्मामें कर्तृत्वभ्रांति नहीं याते ताकूं आगामीकर्मका संभव नहीं. और ३ जिस प्रारब्धकर्मने ज्ञानीके शरीरका आरंभ किया है, सोई प्रारब्धकर्म शरीरस्थितिके हेतु भिक्षादिकनमें प्रवृत्ति करवावै है. प्रारब्धकर्मका भोगविना नाश होवै नहीं.

और कहूं ऐसा लिखा हैः—संचित आगामी कर्मकी न्याईं ज्ञानीके प्रारब्धकर्म भी रहैं नहीं, याते भोजनादिक प्रवृत्ति भी ज्ञानीकूं संभवै नहीं. ताका यह अभिप्राय हैः—ज्ञानीकी दृष्टिते आत्मामें कर्म और ताके फलका संबंध नहीं याते आत्मामें सर्वकर्मका निषेधअभिप्रायते, प्रारब्धका निषेध किया है. और ज्ञानते पूर्वकिये प्रारब्धका ज्ञानीके शरीरकूं भोग होवै नहीं; इसअभि-

प्रायते प्रारब्धका निषेध नहीं; काहेते सूत्रकारने यह लिखा है:-१ ज्ञानीके संचितकर्मका ज्ञानते नाश होवै है,२ आगामीका संबंध होवे नहीं, ३प्रारब्धका भोगतेनाश होवै है. याते प्रारब्धके बलते शरीरनिर्वाहक क्रिया ज्ञानीकी होवै है, अधिक नहीं परंतु-

कर्म नाना प्रकारके हैं. जहां एक कर्म नानाशरीरका आरंभक होवै, ऐसे कर्मते रचित प्रथमशरीरमें जाकूं ज्ञान होवे, तहां ज्ञानवान्कूं अन्यशरीरकी प्राप्ति हुई चाहिये, काहेते फलका जाने आरंभ किया है, सो प्रारब्ध कहिये है, ताका भोगविना नाश होवै नहीं. अनेकशरीरका हेतु कर्म एक है, तामें प्रथम शरीर जो उपजाया तामें ज्ञान हुवा, ता कर्मके फलज्ञानते अनंतर और शरीर शेष रहे है, याते ज्ञानवान्कूं भी अन्यशरीरकी प्राप्ति हुई चाहिये. और-

जो ऐसे कहैं:-प्रारब्धकर्मका फल जितने शरीर होवें उतने शरीर ज्ञानकूं भी होवे हैं, प्रारब्धके भोगते अधिक होवै नहीं. याते ज्ञान भी सफल होवै है. सो बनै नहीं. काहेते यह वेदका ढँढोरा है:-"ज्ञानवान्के प्राण अन्यलोकमें, वा इसलोकके अन्यशरीरमें गमन नहीं करते "किंतु, तिसी स्थानमें अंतःकरण इंद्रियसहित लीन होवैं हैं. और प्राणगमनबिना अन्यशरीरकी

प्राप्ति संभवै नहीं याते ज्ञानवान्‌कूं प्रारब्ध शेषते और शरीर होवै है, यह कहना तो संभवै नहीं किंतु—

यह समाधान है:-जहां अनेकशरीरका आरंभक एक कर्म होवै, तहां अंतशरीरमें ही ज्ञान होवै है, पूर्वशरीरमें ज्ञान होवै नहीं. काहेते, अनेकशरीरका आरंभक; प्रारब्ध ही ज्ञानका प्रतिबंधक है. जैसे १ विषयनमें आसक्ति, २ बुद्धिमंदता, ३ भेदवादीवचनमें विश्वास, ज्ञानके प्रतिबंधक हैं, तैसे विलक्षण प्रारब्ध भी ज्ञानका प्रतिबंधक है, और ज्ञानके प्रतिबंधक होते जहां ज्ञानसाधन श्रवणादिक होवैं, तहां प्रतिबंध दूरि हुयेते प्रथमजन्मविषे किये जो श्रवणादिक हैं, तिनते ही अन्यशरीरमें ज्ञान होवै है. जैसे वामदेवनें पूर्वजन्मविषे श्रवणादिक किये; तब प्रारब्धका फल एकशरीर शेष होते ज्ञान नहीं हुवा. किंतु श्रवणादिक करते वर्तमानशरीरका पात होयके अन्यशरीरकी प्राप्ति हुयेते पूर्वजन्ममें किये श्रवणादिकनते गर्भविषे ज्ञान हुवाहै. याते ज्ञानसे अनंतर अन्यशरीरका संबंध होवै नहीं. और वर्तमानशरीरकी चेष्टा प्रारब्धसे होवै है. तहां जितनी चेष्टा शरीरकी निर्वाहक हैं सोई होवैं, रागजन्य अधिकचेष्टा होवैं नहीं. याते सर्वप्रवृत्तिरहित ज्ञानी होवै है.

इसरीतिसे निवृत्तिप्रधान ज्ञानीका व्यवहार होवै है.

याके विषे ऐसी शंका है:-मनका स्वभाव अतिचंचल है, निरालंब मनकी स्थिति होवै नहीं, किसी आलंबते मनकी स्थिति होवै है. याते मनके किसी आलंबकी प्राप्तिनिमित्त भी ज्ञानवान्की प्रवृत्ति होवै है. ताका यह समाधान है:-

यद्यपि समाधिहीनपुरुषका मन चंचल होवै है, तथापि समाधिते मनका विजय होवै है. और ज्ञानवान् समाधिविषे स्थिर होवै है. याते ज्ञानवान्की प्रवृत्ति होवै नहीं. सो समाधिइन अष्ट अंगनमें होवै है:-यम १, नियम २, आसन ३, प्राणायाम ४, प्रत्याहार ५, धारणा ६, ध्यान ७, सविकल्पसमाधि ८, इन अष्ट-अंगनते समाधि होवै है.

अहिंसा १, सत्य२, अस्तेय ३, ब्रह्मचर्य ४, अपरिग्रह ५ ये पांच यम कहे हैं.

शौच १, संतोष २, तप ३, स्वाध्याय ४, ईश्वरप्रणिधान ५ ये पांच नियम कहिये हैं. और ज्ञानसमुद्रग्रंथमें दशप्रकारके यम और दशप्रकारके नियम कहे हैं, सो पुराणकी रीतिसे कहे हैं, वेदांतसंप्रदायमें यम नियमके पांच पांच ही भेद हैं. और-

आसनके भेद अनंत हैं. तिनमें स्वस्तिक १, गोमुख २, वीर ३, कूर्म ४, पद्म ५, कुक्कुट ६, उत्तान ७, कू-

मंक ८, धनुष ९, मत्स्य १०, पश्चिमतान ११, मयूर १२, शव १३, सिंह १४, भद्र १५ सिद्ध १६, इत्यादिक चौरासी आसन योगग्रंथनमें लिखे हैं, तिनके लक्षण भी तहां लिखे हैं ग्रंथके विस्तारभयते, तथा वेदांतमें अत्यन्त उपयोगी नहीं, याते लक्षण लिखे नहीं तिनमें भी सिंह, भद्र, पद्म, सिद्ध, ये चारि आसन प्रधान हैं. तिन चारिमें भी,

सिद्धआसन अत्यंतप्रधान है. ताका यह लक्षण है:— वामपादकी एडी गुदा मेढ्रके मध्य सीवनमें दाबिके धरै, दक्षिणपादकी एड़ी मेढ्रके उपरि दाबिके धरै, भ्रुकुटीके अंतर दृष्टि राखे, स्थाणुकी न्याई सरल निश्चलशरीरते स्थितिकूं सिद्धासन कहैं हैं. और—

कोई ऐसे कहैं हैं:—वामपादकी एडी सीवनमें नहीं लगावे, किंतु मेढ्रके ऊपरि लगावे, ताके ऊपरि दक्षिण-एडी धरै. और पूर्वकी न्याई यह सिद्धासनही अति-प्रधान है. काहेते, कितने आसन तो रोगनाशके हेतु हैं. और कोई आसन ऐसे हैं, प्राणायामादिक समाधिके अंग जिनते होवै हैं, और सिद्धासन समाधिकालमें होवैं है, याते अतिप्रधान है. याहीकूं वज्रासन, मुक्तास-न, गुप्तासन कहैं हैं.

आसनसिद्धिसे अनंतर प्राणायाम भी करै सो प्रा

णायाम बहुतप्रकारका है, तथापि संक्षपते यह लक्षण हैं:— १ नासाके वामछिद्रद्वारा इडानाम नाडीते वायुकूं पूण करै ताकूं पूरक कहैं हैं. २ दक्षिणते त्यागे. ताकूं रेचक कहैं हैं. ३ सुषुम्णाते रोके ताकूं कुंभक कहैं हैं इसरीतिसे पूरक रेचक कुंभककूं प्राणायाम कहैं हैं. सो दोप्रकारका है:—१ एक अगर्भ है. तैसे २ दूसरा सगर्भ है. १ प्रणवके उच्चारणरहित प्राणायाम अगर्भ कहिये है. २ प्रणवके उच्चारणसहित प्राणायाम सगर्भ कहिये है.

१ विषयनते सकलइंद्रियके निरोधकूं प्रत्याहार कहैं हैं. २ अंतःकरणकी स्थिति, धारणा कहिये हैं. ३ अंतरायसहित अद्वितीयवस्तुविषे अंतःकरणका प्रवाह ध्यान कहिये है.

व्युत्थानसंस्कारनका तिरस्कार; और निरोधसंस्कारनकी प्रकटता हुई, अंतःकरणका एकाग्रतारूप परिणाम समाधि कहिये है. सो समाधि दोप्रकारकी है:—१ एक सविकल्पसमाधि है, दूसरी निर्विकल्प समाधि है. १ ज्ञाता, ज्ञान, ज्ञेयरूप त्रिपुटीभान सहित अद्वितीयब्रह्मविषे अंतःकरणकी वृत्तिकी स्थिति सविकल्पसमाधि कहिये है. सो सविकल्पसमाधि दो प्रकारकी है:—एक तो शब्दानुविद्ध हैं; दूसरी शब्दाननुविद्ध है. "अहं ब्रह्मास्मि" इस शब्दकरिके अनुविद्ध कहिये सहित होवै, सो

शब्दानुविद्ध कहिये है. शब्दरहितकूं शब्दाननुविद्ध कहैं हैं. त्रिपुटीभानरहित अखंडब्रह्माकार अंतःकरणवृत्तिकी स्थिति निर्विकल्पसमाधि कहिये है इसरीतिसे सविकल्प और निर्विकल्पसमाधिके दो भेद हैं. तिनमें सविकल्पसामाधि साधन है; और निर्विकल्पसमाधि फलहै. १ साधन रूप जो सविकल्प समाधि है, ताकेविषे यद्यपि त्रिपुटीरूप द्वैत प्रतीत होवै है, तथापि सो द्वैत इसरीतिसे ब्रह्मरूप करिके प्रतीत होवै हैः—जैसे मृत्तिकाविकारनकूं मृत्तिकारूप जानेते विवेकीकूं मृत्तिकाके विकार घटादिक प्रतीत भी होवैं हैं, परंतु मृत्तिकारूप ही प्रतीत होवैंहैं. तैसे सविकल्पसमाधिमें त्रिपुटीद्वैत ब्रह्मरूप ही प्रतीत होवै है. २ निर्विकल्पसमाधिविषे भी सविकल्पसमाधिकी न्याईं त्रिपुटीरूप द्वैत विद्यमान भी होवै है. तौभी त्रिपुटीद्वैतकी प्रतीति होवै नहीं जैसे जलमें लवणकूं गेरे तहां लवण विद्यमान होवै है, परंतु नेत्रसे लवणकी सर्वथा प्रतीति होवै नहीं इसरीतिसे सविकल्पनिर्विकल्पका यह भेद सिद्ध हुवाः— १ सविकल्पसमाधिमें ब्रह्मरूपकरिके द्वैतकी प्रतीति; और २ निर्विकल्पसमाधिमें त्रिपुटीरूप द्वैतकी अप्रतीति. तैसे—

सुषुप्तिसे निर्विकल्पका यह भेद है; १सुषुप्तिमें अंतः-

करणकी ब्रह्माकारवृत्तिका अभाव होवै है. और२निर्विकल्पसमाधिमें ब्रह्माकारवृत्ति तो अंतःकरणकी होवै है; ताका अभाव होवै नहीं इसरीतिते १ सुषुप्तिमें तो वृत्तिसहित अंतःकरणका अभाव होवै है; और२निर्विकल्पसमाधिमें वृत्तिसहित अंतःकरण तो होवै है ; ताकी प्रतीति होवै नहीं. निर्विकल्पसमाधिविषे अंतःकरणकी जो ब्रह्माकार वृत्ति होवै है;ताका हेतु सविकल्पसमाधिका अभ्यास है. याते साधनरूप अष्टअंगनमें सविकल्पसमाधि गिनी है, निर्विकल्पसमाधि फल है. सो निर्विकल्पसमाधि भी दोप्रकारकी होवै है:-१एकअद्वैतभावनारूप और २ दूसरी अद्वैतावस्थानरूप होवै है. १ अद्वैत ब्रह्माकार अंतःकरणकी वृत्ति ज्ञानसहित होवै सो अद्वैतभावनारूप निर्विकल्पसमाधि कहिये है. २ या समाधिमें अभ्यास अधिक हुयेते, ब्रह्माकार वृत्ति भी शांत होय जावै है. याते वृत्तिरहितकूं अद्वैतावस्थानरूप निर्विकल्पसमधि कहें हैं. जैसे तप्तलोहके ऊपरि जलकी बुंद गेरी तप्तलोहमें प्रवेश करै है, तैसे अद्वैतभावनारूप समाधिके दृढ़अभ्यासते अत्यंत प्रकाशमान ब्रह्मविषे वृत्तिका लय होवै है.सो अद्वैतावस्थानरूप निर्विकल्पसमाधि ताका साधन है.

अद्वैतावस्थानरूप समाधि और सुषुप्तिका इतना

भेद हैः-१ सुषुप्तिमें वृत्तिका लय अज्ञानमें होवै है; २ अद्वैतावस्थानसमाधिमें वृत्तिका लय ब्रह्मप्रकाशमें होवै है. और १ सुषुप्तिका आनंद अज्ञान आवृत है, और २ समाधिमें निरावरणब्रह्मानंदका भान होवै है. परंतु-

निर्विकल्पसमाधिमें चारि विघ्न होवैं हैं; सो निषेध करनेकूं कहिये हैंः-लय १, विक्षेप २, कषाय ३, रसास्वाद ४, १आलस्यकरिके अथवा निद्राकरिके वृत्तिके अभावकूं लय कहैंहैं. ता लयते सुषुप्तिसमान अवस्था होवै है; ब्रह्मानंदका भान होवै नहीं; याते निद्रा आलस्यादिक निमित्तते जब वृत्तिका अपने उपादान अंतःकरणमें लय होता दीखै, तब योगी सावधान होयके निद्रादिकनकूं रोंकिके वृत्तिकूं जगावै इसरीतिसे लयरूप विघ्नका विरोधी जो निद्राआलस्य निरोधसहित वृत्तिका प्रवाहरूप जागरण, ताकूं गौडपादाचार्य चित्तसंबोधन कहैं हैं.

२ विक्षेपका यह अर्थ हैः-जैसे बाज वा बिल्लीते डरिके चटका गृहमें प्रवेश करे, तब भयव्याकुलकूं गृहके अन्तर तत्काल स्थान दीखे नहीं; याते फेरि बाहिर आयके, भय अथवा मरणरूप खेदकूं प्राप्त होवैहै; तैसे अनात्मपदार्थनकूं दुःखहेतु जानिके अद्वैतानंदकूं विषय करनेवास्ते अंतर्मुख हुई जो वृत्ति तहां वृत्तिका विषय

चेतन अतिसूक्ष्म है, याते किंचित्काल वृत्तिकी स्थिति-विना तत्काल ही चेतनस्वरूप आनंदका लाभ नहीं होवे है, ताते वृत्ति बहिर्मुख होवै है. इसरीतिसे बहिर्मुखवृत्ति, विक्षेप कहिये है. सो वृत्तिकी स्थिरताविना स्वरूपआनंदका अलाभ होवै है. याते अंतर्मुखवृत्ति हुयेते भी जितनेकाल वृत्ति ब्रह्माकार होवै नहीं, उतने-काल बाह्यपदार्थनमें दोषभावनाते वृत्तिकूं बहिर्मुखता योगी होने देवे नहीं, किंतु वृत्तिकी अंतर्मुखताही स्थापन करे. विक्षेपरूप विघ्नका विरोधी जो योगीका प्रयत्न, ताकूं गौडपादाचार्यने शम कह्या है.

३ रागादिक दोषकूं कषाय कहैं हैं. यद्यपि रागादिक दो प्रकारके हैंः—एक बाह्य है, और दूसरा अंतर है. पुत्र, स्त्री, धन, आदिक जिनके विषय वर्तमान होवैं, सो बाह्य कहिये है. भूतका वा भावीका चिंतनरूप जो मनोराज्य, सो अन्तर कहिये है. सो दोनोंप्रकारके रागादिक; समाधिमें प्रवृत्त योगीविषे संभवै नहीं. काहेते चित्तकी पांच भूमिका हैंः—तिनमें एक क्षेप नाम भूमिका है; दूजी मूढता, तीजी विक्षेप, चौथी एकाग्रता, पांचवीं निरोधभूमिका है. लोकवासना, देहवासना, शास्त्रवासना इसते आदिलेके रजोगुणका परिणाम जो दृढ-अनात्मवासना, ताकूं क्षेप कहैं हैं. निद्राआलस्यादिक

तमोगुणपरिणामकूं मूढता कहैं हैं. ध्यानमें प्रवृत्त चित्तकी कदाचित् बाह्यप्रवृत्तिकूं विक्षेप कहैं हैं. अंतःकरणका अतीतपरिणाम और वर्त्तमानपरिणाम समानाकार होवै, ताकूं एकाग्रता कहैं हैं. यह एकाग्रताका लक्षण योगसूत्रमें पतंजलिने कहा है; ताका भाव यह हैः– समाधिकालमें योगीके अंतःकरणमें एकाग्रता होवै है; सो एकाग्रता वृत्तिका अभावरूप नहीं; किंतु जितने अंतःकरणके परिणामसमाधिकालमें होवैं हैं, सो सारे ब्रह्मकूं-ही विषय करैं हैं. याते अंतःकरणके अतीतपरिणाम और वर्तमानपरिणाम केवल ब्रह्माकार होनेते समानाकार होवैं हैं ता एकग्रताकी वृत्तिकूं निरोध कहैं हैं. ये पांच भूमिका अंतःकरणकी हैं. भूमिका नाम अवस्थाका है. ये-

पांचभूमिकासहित अंतःकरणके, ये क्रमते नाम हैंः- क्षिप्त १, मूढ २, विक्षिप्त ३, एकाग्र ४, निरुद्ध ५, तिनमें क्षिप्त और मूढ अंतःकरणका तो समाधिविषे अधिकार नहीं. विक्षिप्त अंतःकरणकूं अधिकार है. एकाग्र और निरुद्ध अंतःकरण समाधिकालमें होवै है, यह योग ग्रंथनमें कहा है. रागादिक दोषसहित अंतःकरण क्षिप्तही है; ता क्षिप्तअंतःकरणका योगमें अधिकार नहीं. याते रागादिक दोषरूप कषाय समाधिके विघ्न हैं; यह कहना संभवै नहीं; तथापि यह समाधान हैः-बाह्य अथवा अंतर जो

रागादिक हैं,सो तो क्षिप्त अंतःकरणमेंही होवैं हैं;ताका अधिकार भी नहीं. तो भी अनेकजन्मविषे पूर्व अनुभव किये जो बाह्य अंतर रागद्वेष, तिनके सूक्ष्मसंस्कार, विक्षिप्तादिक अंतःकरणमें भी संभवै हैं. याते रागद्वेषका नाम कषाय नहीं,किंतुरागद्वेषादिकन-कैं संस्कार कषाय कहिये हैं, सो संस्कार अंतःकरण रहै जितने दूरि होवै नहीं, याते समाधिकालमें भी अंतःक-रणमें रहैं हैं. परन्तु रागद्वेषादिकनके उद्भूतसंस्कार स-माधिके विरोधी हैं; अनुद्भूत विरोधी नहीं. प्रगटकूं उ-द्भूत कहैं हैं, अप्रगटकूं अनुद्भूत कहैं हैं. समाधिमें प्रवृत्त योगीकूं जो रागद्वेषके संस्कारनकी प्रगटता होवै, तो विषयनमें दोषदर्शनते दाबि देवे, विक्षेप कषायका यह भेद हैः—बाह्यविषयाकार वृत्तिकूं विक्षेप कहैं हैं. और योगीके प्रयत्नते जहां वृत्ति अंतर्मुख तो होवै, परंतु रागादिकनके उद्भूतसंस्कारनते अंतर्मूख हुई वृत्ति भी रुकिजावे, ब्रह्मकूं विषय करै नहीं, ताकूं कषाय कहैं हैं. विषयमें दोषदर्शन सहित योगीके प्रयत्नते कषा-यविघ्नकी निवृत्ति होवै है.

४ रसास्वादका यह अर्थ हैः—योगीकूं ब्रह्मानंदका अनुभव होवै है और विक्षेपरूप दुःखकी निवृत्तिका अनुभव होवै है. कहूं दुःखकी निवृत्तिसे भी आनंद हो-वै है, जैसे भारवाही पुरुषका भार उतरेसे ताकूं आनंद

होवै, तहां आनंदमें और तो कोई विषय हेतु है नहीं किंतु भारजन्य दुःखकी निवृत्तिसे यह कहै हैः—"मेरेकूं आनंद हुवा है." याते दुःखकी निवृत्ति भी आनंदका हेतु है. तैसे योगीकूं समाधिमें विक्षेपजन्यदुःखकी निवृत्तिसे जो आनंद होवै, ताका अनुभव रसास्वाद कहियें है.जो दुःखनिवृत्तिजन्य आनन्दके अनुभवसे ही योगी अलंबुद्धि करि लेवे, तौ सकल उपाधिरहित ब्रह्मानंदाकारवृत्तिके अभावते ताका अनुभव समाधिमें होवे नहीं.याते दुःखनिवृत्तिजन्य आनन्दका अनुभवरूप रसास्वाद भी समाधिमें विघ्न है.वांछितकी प्राप्तिविना भी विरोधीकी निवृत्तिसे आनन्दकी उत्पत्तिमें अन्य दृष्टांतः—जैसे पृथिवीमें निधि होवै,सो निधि अत्यंत विषधरसर्पते रक्षित होवै, तहां निधिप्राप्तिसे प्रथम भी निधिप्राप्तिका विरोधी जो सर्प है,ताकी निवृत्तिसे आनन्द होवै है.तहां सर्पनिवृत्ति के आनन्दमें जो अलंबुद्धि करे.तो उद्यम त्यागनेते निधिप्राप्तिका परमानंद प्राप्त होवै नहीं. तैसे अद्वैतब्रह्मरूप निधि है, देहादिक अनात्म पदार्थनकी प्रतीतिरूप जो विक्षेप, सो सर्प है. विक्षेपरूप सर्पकी निवृत्तिजन्य जो अवांतर आनंदरूपी रसका अनुभवरूप आस्वादन है सो निधिरूपी अद्वैतब्रह्मकी प्राप्तिजन्य जो आनन्द है,ताकी प्राप्तिका प्रतिबंधक

होनेते विघ्न कहिये है. अथवा—

रसास्वादका यह और अर्थ है:—सविकल्पसमाधिसे उत्तर निर्विकल्पसमाधि होवै है.और सविकल्पसमाधिमें त्रिपुटी प्रतीत होवै है. याते सविकल्पसमाधिका आनन्दत्रिपुटीरूप उपाधिसहित होनेते सोपाधिक कहिये है.और निर्विकल्प समाधिमें त्रिपुटी प्रतीत होवै नहीं, याते निरुपाधिक आनन्द निर्विकल्पसमाधिमें होवै है. इस रीतिसे सविकल्पसमाधिसे उत्तर निर्विकल्पसमाधिके आरंभमें भी सविकल्पसमाधिके सोपाधिक आनंदकूं त्यागि सकै नहीं, किंतु ताकूंही अनुभव करै; सो रसास्वाद कहिये है याते विक्षेपनिवृत्तिजन्य आनंदका अनुभव, अथवा सविकल्पसमाधिके आनंदका अनुभव रसास्वाद कहिये है. सो दोनों प्रकारका रसास्वाद, निर्विकल्पसमाधिके परमानंदके अनुभवका विरोधी होनेते विघ्न है, याते ताकूं भी त्यागै. ऐसे निर्विकल्पसमाधिमें चारि विघ्न होवैं हैं, सो च्यारों विघ्न समाधिके आरंभमें होवैं हैं.

ज्ञानवान्‌की बाह्यप्रवृत्तिके असम्भवके आक्षेपकी समाप्ति।

सावधानतासे च्यारों विघ्नोकूं रोकके समाधिमें परमानंदकूं विद्वान् अनुभव करै है. ताहीकूं जीवन्मुक्त कहैं हैं. इसरीतिसे ज्ञानीका चित्त निरालंब नहीं होवैं हैं.

जब प्रारब्धबलते समाधिसे उत्थान होवै, तब भी समाधिमें जो परमानंदका अनुभव किया है, ताकी स्मृति होवै है. याते उत्थानकालमें भी ज्ञानीका चित्त निरालंब नहीं, और ज्ञानवान्की जो भोजनादिकनमें प्रवृत्ति होवै है; सो केवल प्रारब्धसे होवै है; परंतु भोजनादिकव्यवहारमें ज्ञानी खेद मानिके प्रवृत्त होवै है. काहेते, भोजनादिकनमें प्रवृत्ति भी समाधिसुखकी विरोधी है. जाकूं भोजनादिक शरीरनिर्वाहकी प्रवृत्ति ही खेदरूप प्रतीति होवै, ताकी अधिक प्रवृत्ति संभवै नहीं. इसरीतिसे बहुत आचार्योंने यही पक्ष लिखा है; और जीवन्मुक्तिका आनंद भी बाह्यप्रवृत्तिमें होवै नहीं; किंतु निवृत्तिमें होवै है. याते जीवन्मुक्तिके सुखार्थी ज्ञानवान्की बाह्यप्रवृत्ति संभवै नहीं; ।

गत आक्षेपका समाधान।

तथापि ज्ञानवान्की निवृत्तिका भी नियम कहना संभवै नहीं, काहेते निवृत्तिमें अथवा प्रवृत्तिमें वेदकी आज्ञारूप विधि तौ ज्ञानीकूं है नहीं. जाते ज्ञानीके व्यवहारमें नियम होवै. याते ज्ञानी निरंकुश है; ताका व्यवहार प्रारब्धसे होवै है. १ जिस ज्ञानीका प्रारब्ध भिक्षाभोजनमात्र फलका हेतु है; ताकी भिक्षाभोजनमात्र में प्रवृत्ति होवै है. २जाका प्रारब्ध अधिकभोगका हेतु होवै, ताकी अधिकमेंभी प्रवृत्ति होवै है, और–

जो ऐसे कहैं:-जाका प्रारब्ध भिक्षा भोजनमात्रका हेतु होवै ताहीकूं ज्ञान होवै है, अधिक व्यवहारका हेतु जाका प्रारब्ध होवै ताकूं ज्ञान होवै नहीं, याते भिक्षा-भोजनादिक व्यवहारते अधिकव्यवहार ज्ञानीका होवै नहीं. जाकी अधिक प्रवृत्ति होवै सो ज्ञानी नहीं.

सो शंका बनै नहीं. काहेते, याज्ञवल्क्य, जनका-दिक ज्ञानी कहे हैं. सभाविजयते धनसंग्रहव्यवहार याज्ञवल्क्यका तथा राज्यपालन व्यवहार जनकका कह्या है. और वासिष्ठग्रंथमें अनेक ज्ञानीपुरुषनके व्यवहार नाना प्रकारके कहे हैं. याते ज्ञानीकी प्रवृत्ति अथवा निवृत्तिका नियम नहीं. यद्यपि याज्ञवल्क्यने सभाविजयते उत्तर, विद्वत्संन्यासरूप निवृत्ति ही धारी है, और प्रवृत्तिमें ग्लानिके हेतु नानादोष कहे हैं, तथापि याज्ञवल्क्यकूं विद्वत्संन्यासते पूर्व ज्ञान नहीं था. यह कहना तो संभवै नहीं. किंतु ज्ञान तो प्रथम भी था; परंतु विद्वत्संन्यासते पूर्व जीवन्मुक्तिका आनन्द प्राप्त हुवा नहीं. याते जीवन्मुक्तिके आनन्दवास्ते सर्वसंग्रहका त्याग किया है याज्ञवल्क्यकूं प्रारब्ध कुछ काल अधिकभोगका हेतु था, और उत्तरकाल न्यूनभोगका हेतु था याते प्रथम तो याज्ञवल्क्यकूं ग्लानिविना अधिकभोग और आगे ग्लानिते सर्वभोगनका त्यागा हुवा है; और १ जन-

कका प्रारब्ध मरणपर्यंत राज्यपालनादिक समृद्धिभोगका हेतु हुवा है. याते सदा त्यागका अभाव ही हुवा है, भोगनमें ग्लानि भी हुई नहीं. और वामदेवादिकनका प्रारब्ध न्यून भोगका हेतु हुवा है, तिनकूं सदा भोगनमें ग्लानिते प्रवृत्तिका अभाव ही कह्या है. और २ वासिष्ठमें ऐसा भी प्रसंग है:—शिखरध्वजकी ज्ञानत अनंतर अधिकप्रवृत्ति हुई है:—इसरीतिसे नानाप्रकारके विलक्षणव्यवहार ज्ञानी पुरुषनके कहे हैं. तिन सर्वकूं ज्ञान समान है, और ताका फल मोक्ष भी समान है और प्रारब्धभेदसे व्यवहारका भेद है, व्यवहारकी न्यूनतासे जीवन्मुक्तिके सुखकी अधिकता, और व्यवहारकी अधिकतासे जीवन्मुक्तिके सुखकी न्यूनता होवै है.

ज्ञानीकूं विदेहमोक्षत्याग वा परलोककी इच्छा होवै नहीं ।

कोई यह शंका करैहै:—जो जीवन्मुक्तिके सुखकूं त्यागिके तुच्छ भोगनमें प्रवृत्त होवै, सो विदेहमोक्षकूं भी त्यागिके वैकुंठादिक लोककी इच्छा धारिके जावेगा.

सो शंका बनै नहीं. काहेते, १ जीवन्मुक्तिके सुखका त्याग और भोगनमें प्रवृत्ति तो ज्ञानीकी प्रारब्धबलते संभवै है और २ विदेहमोक्षका त्याग और परलोककूं गमन संभवै नहीं. काहेते ज्ञानीके प्राण बाहिर मगन

करैं नहीं याते परलोककूं गमन संभवै नहीं. और विदेहमोक्षका त्याग भी संभवै नहीं, काहेते ज्ञानते अज्ञानकी निवृत्ति होयके प्रारब्ध भोगते अनंतर स्थूलसूक्ष्मशरीराकार अज्ञानका चेतनमें लय विदेहमोक्ष कहियेहै. सो अवश्य होवे है. जो मूलअज्ञान बाकी रहै, अथवा नष्ट अज्ञानकी फेरि उत्पत्ति होवै, तौ विदेहमोक्षका अभाव होवै. सो मूलअज्ञानका विरोधी ज्ञान हुयेते अज्ञान बाकी रहै नहीं. और प्रमाणते नाश हुये अज्ञानकी फेरि उत्पत्ति होवै नहीं. याते विदेहमोक्षका अभाव होवै नहीं. और ३ विदेहमोक्षके त्यागमें तथा परलोकके गमनमें. ज्ञानीकी इच्छा भी संभवै नहीं. काहेते ज्ञानीकूं इच्छा केवल प्रारब्धसे होवै है. जितनी सामग्रीविना प्रारब्धका भोग संभवै नहीं. उतनी सामग्रीकूं प्रारब्ध रचैहै. इच्छाविना भोग संभवै नहीं. याते ज्ञानीकी इच्छा भी प्रारब्धका फल है और अन्यलोकमें अथवा इसलोकमें अन्यशरीरका संबंध ज्ञानीकूं प्रारब्धसें भी होवै नहीं, यह पूर्व इसीतरंगमें प्रतिपादन करि आये हैं. याते ज्ञानीकूं प्रारब्धसे विदेहमोक्षके त्यागकी वा परलोकके गमनकी इच्छा होवै नहीं.

ज्ञानीकी मंदप्रारब्धसे जीवन्मुक्तिसुखकी विरोधिप्रवृत्ति

जीवन्मुक्तिके सुखके विरोधी वर्तमानशरीरमें अधि-

कभोगनकी इच्छा तो भिक्षाभोजनादिकनकी न्याईं जनकादिकनकूं संभवै है. या स्थानमें यह रहस्य है:— ज्ञानीकी बाह्यप्रवृत्ति जीवन्मुक्तिकी विरोधी नहीं; किंतु जीवन्मुक्तिके विलक्षणसुखकी विरोधी है, काहेते, आत्मा नित्यमुक्त है, अविद्यासे बंध प्रतीत होवै है. जिसकालमें ज्ञान होवै है, तिसी कालमें अविद्याकृत बंधभ्रम नष्ट होवै है. ज्ञान हुयेते फेरि बंधभ्रांति होवै नहीं. शरीरसहितकूं बंधभ्रमका अभावही जीवन्मुक्ति कहिये है. देहादिकनकी प्रवृत्तिमें, तथा निवृत्तिमें, ज्ञानीकूं बंधभ्रांति आत्मा होवै नहीं, याते बाह्यप्रवृत्तिसे भी जीवन्मुक्ति दूरि होवै नहीं. तौ भी बाह्यप्रवृत्तिमें जीवन्मुक्तिकूं विलक्षण सुख होवै नहीं, एकाग्रतारूप अंतःकरणपरिणामते सुख होवै है. सो एकाग्रतापरिणाम बाह्यप्रवृत्तिमें होवै नहीं. इसरीतिसे प्रारब्धभेदते ज्ञानीपुरुषनके व्यवहार नानाप्रकारके हैं, परंतु जाका प्रारब्ध अधिकप्रवृत्तिका हेतु होवै है; ताका मंदप्रारब्ध कहियेहै काहेते अधिकप्रवृत्ति एकाग्रताकी विरोधी है. और एकाग्रताविना निरुपाधिक आनंद प्रतीत होवै नहीं. यह समाधिनिरूपणमें कही है.

ज्ञानीके व्यवहारका अनियम।

जो पूर्व कह्या "ज्ञानवानूकूं सर्व अनात्मपदार्थनमें

मिथ्या बुद्धि होवै है, राग होवै नहीं; याते प्रवृत्ति संभवै नहीं–

सो शंका भी बनै नहीं. काहेते, जैसे देहविषे मिथ्या-बुद्धि भी ज्ञानीकूं होवै है; तौ भी देहके अनुकूल जो भिक्षादिक हैं, तिनमें केवल प्रारब्धसे प्रवृत्ति होवै है; तैसे जिसका अधिकभोगका प्रारब्ध होवै, तिस ज्ञानीकी अधिकप्रवृत्ति भी होवै है. जैसे बाजीगरके तमासेकूं मिथ्या जानिके, सर्वलोगनकी प्रवृत्ति होवै है; तैसे सर्वपदार्थनमें ज्ञानीकूं मिथ्या बुद्धि हुयेसे भी प्रवृत्ति संभवै है. और–जो ऐसे कहैं, जाकूं जिस पदार्थमें दोषदृष्टि होवै; ताके विषे तिस पुरुषकी प्रवृत्ति होवै नहीं. ज्ञानीकूं अनात्मपदार्थनमें दोषदृष्टि होवैहै, राग होवै नहीं, याते प्रवृत्ति संभवै नहीं.

सो भी बनै नहीं; काहेते, जिस अपथ्यसेवनमें रोगीने अन्वयव्यतिरेकते दोष निश्चय किया है, ता अपथ्य-सेवनमें प्रारब्धते जैसे रोगीकी प्रवृत्ति होवै है तैसे प्रारब्धसे ज्ञानीकी सर्वव्यवहारमें प्रवृत्ति दोषदृष्टि हुये भी संभवै है. इसरीतिसे ज्ञानीके व्यवहारका नियम नहीं, यह पक्ष विद्यारण्यस्वामीने विस्तारसे तृप्तिदीपमें प्रतिपादन किया है. याते तत्त्वदृष्टिका व्यवहार नियमरहितहै, समाधिरूप नियमकी विधि सुनिके तत्त्वदृष्टि हँसे है.

तत्त्वदृष्टिका देशादिअपेक्षारहित देहपात ।

दोहा ।

भ्रमण करत कछु काल यों, तत्त्वदृष्टि सुज्ञान ।
भोगौ निजप्रारब्ध तब, लीन भये तिहिं प्रान ॥ १७ ॥

टीका–१प्रारब्धभोगते अनंतर ज्ञानीके प्राण गमन करैं नहीं. याते तत्त्वदृष्टिके प्राण लीन हुये यह कह्या और२ज्ञानीके शरीरत्यागमें कालविशेषकी अपेक्षा नहीं, उत्तरायणमें अथवा दक्षिणायनमें देहपात होवै. सर्वथा मुक्त है. ३तैसे देशविशेषकी अपेक्षा नहीं. काशीआदिक पुनीतदेशमें, अथवा अत्यंत मलिनदेशमें ज्ञानीकादेहपातहोवै, सर्वथा मुक्त है. ४तैसे आसनविशेषकी अपेक्षा नहीं. पृथिवीमें सब आसनते अथवा सिद्ध आसनते देहपात होवै ५ तैसे सावधान ब्रह्मचिंतन करतेका अथवा रोगव्याकुल हाहाशब्द पुकारतेका देहपातहोवै, सर्वथा मुक्त है. काहेते, जिसकालमें ज्ञानते अज्ञान निवृत्त हुवा तिसी कालमें ज्ञानी मुक्त है. याते ज्ञानीकूं विदेहमोक्षमें देश कालआसनादिकनकी अपेक्षा नहीं. जैसे ज्ञानीकूं देहपातमें देशकालादिकनकी अपेक्षा नहीं, तैसे ज्ञानके निमित्त श्रवणमें भी देशकालआसनादिकनकी अपेक्षा नहीं, और–

उपासककूं देशकालादिकनकी अपेक्षाहै. यद्यपि भी-

ष्मादिकज्ञानी कहे हैं, और भीष्मने उत्तरायणविना प्राण त्याग किये नहीं; तथापि भीष्मादिक अधिकारी पुरुष हैं. याते उपासकनके उपदेशवास्ते तिन्होंने कालविशेषकी प्रतीक्षा करी है. और वसिष्ठ भीष्मादिक अधिकारी हैं. यातेही उनकूं अनेक जन्म हुये हैं. काहेते अधिकारीपुरुषनका एक कल्पपर्यंत प्रारब्ध होवै है. कल्पके अंतविना विदेहमोक्ष होवै नहीं. और कल्पके भीतर तिनकूं इच्छाबलते नानाशरीर होवैं हैं. तथापि आत्मस्वरूपविषे तिनकूं जन्ममरणभ्रांति हौवै नहीं; याते जीवन्मुक्त हैं. तिन अधिकारीपुरुषनका व्यवहार संपूर्ण अन्यके उपदेशनिमित्त है. और अन्यज्ञानीके व्यवहारमें कोई नियम नहीं. इस अभिप्रायते तत्त्वदृष्टिके देहपातका देशकाल आसनादिक कुछ कह्या नहीं.

दोहा ।

दूजो शिष्य अदृष्टि तिहिं, गंगातट शुभथान ।
देश इकंत पवित्र अति, कियो ब्रह्मको ध्यान ॥ १८ ॥
शास्त्ररीति तजि देहकूं, पूरब कह्यो जु राह ।
जाय मिल्यो सो ब्रह्मतैं, पायो अधिकउछाह ॥ १९ ॥

टीका—जैसे ज्ञानीकुं देशकालकी अपेक्षा नहीं, तासे विपरीत उपासककूं जाननी. उत्तमदेशमें उत्तम उत्तरायणादिक कालमें उपासक शरीर तजै, तब उपासनाका

फल होवै और ज्ञानीकूं मरणसमय सावधानतासे ज्ञेयकी स्मृतिकी अपेक्षा नहीं; उपासककूं मरणसमय ध्येयके स्वरूपकी स्मृतिकी अपेक्षा है, १ जिस ध्येयका पूर्व ध्यान किया है, ता ध्येयकी स्मृति मरणसमय होवै; तब उपासनाका फल होवै है. जैसे ध्येयकी स्मृति चाहिये, तैसे ध्येयब्रह्मकी प्राप्तिका जो मार्ग पंचम तरंगमें कहा है; ताकी भी स्मृति चाहिये. काहेते, मार्गचिंतन भी उपासनाका अंग है, और ज्ञाननिमित्त श्रवणमें देशकाल आसनकी अपेक्षा नहीं. ध्यानमें उत्तमदेश, निरंतर काल सिद्धादिकआसनकी अपेक्षा है, याते अदृष्टिकूं उत्तमदेश, गंगातीरमें स्थित; और मरणसमय भी योगशास्त्ररीतिसे देहपात कह्या.

(तर्कदृष्टिका निश्चय विद्याके अष्टादश प्रस्थान)

सर्वशास्त्रनकूं ब्रह्मज्ञानकी हेतुता ।

दोहा ।

तर्कदृष्टि पुनि तीसरो, लहि गुरुमुखउपदेश ।
अष्टादशप्रस्थान जिन, अवगाहन करि वेश॥२०॥
जेती वाणी वैखरी,ताको अलं पिछान ॥
हेतुभुक्तिको ज्ञान लखि, अद्वयनिश्चय ज्ञान॥२१॥

टीका–तर्कदृष्टि नाम तीसरा गुरुद्वारा उपदेशकूं श्रवणकरिके सुने अर्थमें अन्यशास्त्रनका विरोध दूरि

करनेकूं सर्वशास्त्रनका अभिप्राय विचारिके यह निश्चय किया:— १ सकलशास्त्रनका परमप्रयोजन मोक्ष है. २ मोक्षका साधन ज्ञान है. ३ सो ज्ञान अद्वयनिश्चयरूप है. ४ भेदनिश्चय यथार्थज्ञान नहीं. ५ सारे शास्त्र साक्षात् अथवा परंपराते ब्रह्मज्ञानके हेतु हैं.

१ यद्यपि संस्कृत वैखरीवाणीके अष्टादश प्रस्थान हैं; तिनमें कोई कर्मकूं प्रतिपदन करै हैं;२ कोई विषयसुखके उपायोंकूं प्रतिपादन करै है, ३ कोई ब्रह्मभिन्न देवनकी उपासनाकूं बोधन करै है. ४ तैसे ज्ञाननिमित्त जो न्याय सांख्य आदिक शास्त्र हैं; सो भी भेदज्ञानकूंही यथार्थज्ञान कहैं हैं;याते सर्वकूं अद्वैतब्रह्मकी बोधकता बनै नहीं.

तथापि सकलशास्त्रके कर्त्ता सर्वज्ञ हुये हैं, और कृपालु हुये हैं. याते तिनके किये मूलसूत्रनका तौ वेदके अनुसार ही अर्थ है. परंतु तिनके व्याख्यानकर्त्ता भ्रांत हुये हैं. मूलसूत्रकारनके अभिप्रायते विलक्षण अर्थ किया है. सो वेदसे विरुद्ध तिन सूत्रनका अर्थ नहीं; किंतु सर्वशास्त्रनका वेदानुसारी अर्थ है. यह तर्कदृष्टिने उत्तम संस्कारते निश्चय किया.

विद्याके अष्टादशप्रस्थान यह हैं:—चारि वेद, चारि उपवेद, षट् वेदके अंग, पुराण, न्याय, मीमांसा, धर्म-

शास्त्र, इसरीतिसे वैखरीवाणीरूप विद्याके अठारह भेद हैं तिन्हकूं प्रस्थान कहैं हैं.

ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, ये चारि वेद हैं. तिनमें १ कितने वचन ज्ञेयब्रह्मकूं बोधन करैं हैं, २ कितने ध्येयकूं बोधन करैं हैं, और ३ बाकी कर्मकूं बोधन करैं हैं जो कर्मके बोधक वेदवचन हैं, तिनका भी अंतःकरणशुद्धिद्वारा ज्ञान ही प्रयोजन है. और प्रवृत्तिमें किसी वेदवचनका अभिप्राय नहीं किंतु निषिद्धस्वाभाविक प्रवृत्तिसे रोकनेमें अभिप्राय है याते अभिचारादि कर्मका प्रतिपादक जो अथर्ववेद है, ताका भी निवृत्तिमें तात्पर्य है, जो द्वेषते शत्रुमारनेमें प्रवृत्त होवै, तो गरदानसे अथवा अग्निदाहसे शत्रुकूं नहीं मारै, इसवास्ते अभिचारकर्म श्येनयागादिक कहे हैं. शत्रुमारणके निमित्त जो कर्म, सो अभिचार कहिये है. ऐसा श्येन नाम यज्ञ है. श्येनयागका बोधक जो वेदवचन है, ताका यह अर्थ नहीं:-शत्रुमारणकामनावाला श्येनयागमें प्रवृत्त होवै किंतु शत्रुमारणकी जाकूं कामना होवै सो श्येनयागते भिन्न जो गरदानादिक शत्रुमारणके उपाय हैं, तिनमें प्रवृत्त होवै नहीं. इसरीतिसे द्वेषते प्राप्त जो गरदानादिक तिनते निवृत्तिमें श्येनयागबोधकवचनका अभिप्राय है, प्रवृत्तिमें नहीं. काहेते प्रवृत्ति द्वेषते प्राप्त

है, जो अन्यते प्राप्त होवै तामें वाक्यका अभिप्राय होवै नहीं. इसरीतिसे सारे अथर्ववेदका निवृत्तिमें तात्पर्य है. और तीनि वेदनमें कर्मबोधक वाक्यनका; अंतःकरणशुद्धिद्वारा ज्ञानमें उपयोग स्पष्ट है.

चार उपवेदोंका भी ब्रह्मज्ञानमें तात्पर्य ।

चारि उपवेद हैंः—आयुर्वेद १ धनुर्वेद २ गांधर्ववेद ३ अर्थवेद ४. तिनमें १ आयुर्वेदके कर्ता ब्रह्मा, प्रजापति, अश्विनीकुमार, धन्वंतरि आदिक हैं. चरक, वाग्भट्टादिक चिकित्साशास्त्र आयुर्वेद है, और वात्स्यायनकृत कामशास्त्र भी आयुर्वेदके अन्तर्भूत है काहेते, कामशास्त्रका विषय वाजीकरणस्तंभनादिक भी चरकादिकोंने कथन किये हैं, तिस आयुर्वेदका वैराग्यमें ही अभिप्राय है, काहेते आयुर्वेदकी रीतिसे रोगादिकनकी निवृत्ति हुयेते भी फेरि रोगादिक उत्पन्न होवैं हैं याते लौकिक उपाय तुच्छ हैं,इस अर्थमें आयुर्वेदका अभिप्राय है और औषधदानादिकनते पुण्य होयके अंतःकरणकी शुद्धिद्वारा भी ज्ञानमें उपयोग है.तैसे—

२विश्वामित्रकृत धनुर्वेदमें आयुधनिरूपण किये हैं. आयुध चारि प्रकारके हैंः—मुक्त १, अमुक्त २, मुक्तामुक्त ३, यंत्रमुक्त ४ चक्रादिक हाथसे फेंकिये सो मुक्त कहियेहैं, खड्गादिक अमुक्त कहिये हैं. बरछी आदिक

मुक्तामुक्त कहियें हैं. शर गोलीआदिक यंत्रमुक्त कहियें हैं. इसरीतिसे चारिप्रकारके आयुध हैं. तिनमें मुक्त आयुधकूं अस्त्र कहैं हैं. अमुक्तकूं शस्त्र कहैं हैं. इन चारिप्रकारके आयुधनके, ब्रह्मा, विष्णु, पशुपति, प्रजापति, अग्नि, वरुण आदिक देवता; मंत्र कहे हैं, क्षत्रियकुमार अधिकारी कहे हैं, और तिनके अनुसारी ब्राह्मणादिक भी अधिकारी कहे हैं. तिनके चारि भेद कहे हैंः—पदाति १ रथारूढ २ अश्वारूढ ३ गजारूढ ४ और युद्धमें शकुन मंगल कहे हैं. इतना अर्थ धनुर्वेदके थम पादमें कहा है. और आचार्यका लक्षण तथा आचार्यते शस्त्रोंके ग्रहणकी रीति धनुर्वेदके द्वितीयपादमें कही है. और गुरुसंप्रदायते प्राप्त हुये शस्त्रोंका अभ्यास, तथा मंत्रसिद्धि देवतासिद्धि प्रकार तृतीयपादमें कह्या है. सिद्ध हुये मंत्रनका प्रयोग चतुर्थपादमें कहा है, इतना अर्थ धनुर्वेदमें है सो ब्रह्मा प्रजापति आदिकनते विश्वामित्रको प्राप्त हुवा है. ताने प्रगट किया है. और विश्वामित्रते धनुर्वेद उत्पन्न नहीं हुवा दुष्टचौरादिकनते प्रजापालन क्षत्रियका धर्मबोधक धनुर्वेद है. याते ताका भी अंतःकरणशुद्धि करिके ज्ञानद्वारा मोक्षमें ही अभिप्राय है. तैसे ३ गांधर्ववेद भरतने प्रगट किया है तामें स्वर, ताल, मूर्छना सहित, गीत, नृत्य, वाद्यका निरूपण विस्तारसे किया है. देवताका आराधन,

निर्विकल्पसमाधिकी सिद्धि, गांधर्ववेदका प्रयोजन कह्या है. याते ताका भी अंतःकरणकी एकाग्रताकरिके ज्ञानद्वारा मोक्ष ही प्रयोजन है. तैसे अर्थवेद भी नानाप्रकारका हैः—नीतिशास्त्र,अश्वशास्त्र, शिल्पशास्त्र, सूपकारशास्त्रसे आदिलेके धनप्राप्तिके उपाय-बोधक-शास्त्र अर्थवेद कहिये है. धनप्राप्तिके सकलउपायनमें निपुण पुरुषकूं भी भाग्यविना धनकी प्राप्ति होवै नहीं;याते अर्थवेदका भी वैराग्यमें ही तात्पर्य है.तैसे चारि वेदनके षट् अंग हैंः—शिक्षा १, कल्प २, व्याकरण ३, निरुक्त ४, ज्योतिष ५, पिंगल ६, ये छः वेदके उपयोगी होनेते वेदके अंग कहियें हैं. तिनमें १ शिक्षाका कर्त्ता पाणिनि है. वेदके शब्दनमें अक्षरोंके स्थानका ज्ञान और उदात्त, अनुदात्त, स्वरितका ज्ञान शिक्षाते होवै है. वेदनके व्याख्यानरूप जो अनेक प्रातिशाख्यादि नाम ग्रंथ हैं;सो भी शिक्षाके अंतर्भूत हैं।

तैसे २ वेदबोधितकर्मके अनुष्ठानकी रीति कल्पसूत्रनते जानी जावै है. यज्ञ करानेवाले ब्राह्मण, ऋत्विक् कहियें हैं. तिनके भिन्न भिन्न करनेयोग्य जो कर्म; तिनके प्रकारके बोधक कल्पसूत्र हैं. तिन कल्पसूत्रनके कर्त्ता कात्यायन आश्वलायनादिक मुनि हैं, याते

कल्पसूत्र भी वेदके उपयोगी होनेते वेदके अंग हैं. तैसे-

३ व्याकरणते वेदके शब्दनकी शुद्धताका ज्ञान होवै है, सो व्याकरण सूत्ररूप अष्टअध्याय पाणिनि नाम मुनिने किया है. कात्यायन और पतंजलिने तिन सूत्रनके व्याख्यानरूप वार्त्तिक और भाष्य किये हैं. और जो व्याकरण हैं, तिनमें वेदके शब्दनका विचार नहीं; याते पुराणादिकनमें उपयोगी तो हैं; परंतु वेदके उपयोगी नहीं. और पाणिनिकृत है व्याकरण वेदके शब्दनकी भी सिद्धि करै है; याते वेदका अंग है. तैसे ४ यास्क नाम मुनिने त्रयोदश अध्यायरूप निरुक्त किया है. तहां वेदके मंत्रनमें अप्रसिद्धपदनके अर्थबोधके निमित्त नाम निरूपण किये हैं. याते वैदिक अप्रसिद्धपदनके अर्थज्ञानमें उपयोगीहोनेते निरुक्त भी वेदका अंग है, संज्ञाका बोधक जो पंचाध्यायरूप निघंटु नाम ग्रंथ यास्कने किया है, सो भी निरुक्तके अंतर्भूत है और अमरसिंह, हेमादिकननै किये जो संज्ञाके बोधक कोष हैं, सो सारे निरुक्तके अंतर्भूत हैं. तैसे-

५ आदित्य गर्गादिकृत ज्योतिष भी वेदका अंग है. काहेते वैदिककर्मके आरम्भमें कालका ज्ञान चाहिये सो कालज्ञान ज्योतिषते होवै है, याते वेदका अंग है.

६ पिंगल मुनिने सूत्र अष्टमअध्यायते छन्द निरूपण किये हैं, तिनते वैदिकगायत्रीआदिक छन्दनका ज्ञान होवै है, याते पिंगलकृत सूत्र भी वेदके अंग हैं. तैसे यह षट् जो वेदके अंग हैं, तिनमें वेदमें उपयोगी जो अर्थ नहीं, ताका प्रसंगते निरूपण किया है. प्रधानतासे नहीं. याते वेदका जो प्रयोजन है सोई षट्अंगनका प्रयोजन है; पृथक् नहीं.

पुराण अष्टादश हैं. व्यास नाम मुनिने किये हैं. तिनके ये नाम हैं–ब्राह्म १, पाद्म २, वैष्णव, ३, शैव ४ भागवत ५, नारदीय ६, मार्कंडेय ७, आग्नेय ८, भविष्य ९, ब्रह्मवैवर्त १०, लैंग ११, वाराह १२, स्कंद १३, वामन १४, कौर्म १५, मात्स्य १६, गारुड १७, ब्रह्मांड १८, ये अष्टादशपुराण व्यासनें किये हैं. तैसे कालिकापुराणादिक और बहुत हैं सो उपपुराण हैं. कोई उपपुराणभी अष्टादश कहैं हैं, सो नियम नहीं, उपपुराण बहुत हैं. भागवत दो हैंः–एक तो वैष्णवभागवत है, और दूसरा भगवती भागवत है, दोनोंकी समान संख्या अष्टादशसहस्र हैं और दोनोंके द्वादश स्कंध हैं परन्तु तिनमें एक पुराण है, दूसरा उपपुराण है दोनों व्यासकृत हैं याते दोनों प्रामाणिक हैं, जैसे व्यासने पुराण किये हैं तैसे उपपुराणभी कोई व्यासने किये हैं;

कोई उपपुराण पराशरआदिक अन्य सर्वज्ञमुनियोंने किये हैं, याते उपपुराणभी प्रमाण हैं, जो उपनिषदनका अर्थ है, सोई उपपुराणसहित पुराणोंका अर्थ है, यह वार्ता आगे प्रतिपादन करेंगे तैसे–

न्याय और वैशेषिक सूत्रनका फल ।

पंचअध्यायरूप न्यायसूत्र गौतमने किये हैं. तिनमें युक्ति प्रधान है, युक्तिचिंतनते पुरुषकी तीव्र बुद्धि होवै है, तब मनन करनेविषे समर्थ होवै है, याते युक्तिप्रधान न्यायसूत्रनकाभी मननद्वारा वेदांतजन्य ज्ञानही फल है. और कणाद नाम मुनिने दश अध्यायरूप वैशेषिकसूत्र किये हैं; तिनकाभी न्यायमें अंतर्भाव है. तैसे–

धर्ममीमांसा और ब्रह्ममीमांसाभेदतें दो मीमांसा और संकर्षणकाण्डका फल ।

मीमांसाके दो भेद हैं:–१ एक धर्ममीमांसा २ दूसरी ब्रह्ममीमांसा. १ धर्ममीमांसाकूं पूर्वमीमांसा कहैं हैं २ ब्रह्ममीमांसाकूं उत्तरमीमांसा कहैं हैं, १धर्ममीमांसाके द्वादशअध्याय हैं, जैमिनि नाम ताका कर्त्ता है. कर्म अनुष्ठानकी रीति तामें प्रतिपादन करी है. याते विधिसे कर्ममें प्रवृत्ति धर्ममीमांसाका फल है. कर्ममें प्रवृत्तिसे अन्तःकरणशुद्धि, तासे ज्ञान और ज्ञानते मोक्ष इस रीतिसे धर्ममीमांसाका मोक्ष फल है.

और धर्ममीमांसाके द्वादशअध्यायनमें आपसमें अर्थका भेद है सो कठिन है,याते लिखा नहीं.और संकर्षणकांड पंचअध्यायरूप जैमिनिनें किया है,ताकेविषेउपासना कही है,ताका भी धर्ममीमांसामें अंतर्भावहै.तैसे–

२ ब्रह्ममीमांसाके च्यारि अध्याय हैं, ताके कर्त्ता व्यास हैं; एक एक अध्यायके चारि चारि पाद हैं. तहां १ प्रथम अध्यायमें यह अर्थ हैः–सारे उपनिषद्वाक्य, ब्रह्मकूं प्रतिपादन करैं हैं अन्यकूं नहीं. और २ उपनिषद्वाक्यनका मंदबुद्धिपुरुषनकूं आपसमें विरोध प्रतीत होवै है; ताका परिहार द्वितीयअध्यायमें कह्या है. और ३ ज्ञान तथा उपासनाके साधनका विचार तृतीयअध्यायमें कह्या है. ४ ज्ञान उपासनाका फल चतुर्थअध्यायमें कह्या है. यह ब्रह्ममीमांसारूप शारीरक शास्त्रही सर्वशास्त्रनमें प्रधान है, मुमुक्षुकूं येही उपादेय है. ताके व्याख्यानरूप ग्रंथ यद्यपि नाना हैं; तथापि श्रीशंकरकृतभाष्यरूप व्याख्यान ही मुमुक्षुकूं श्रोतव्य है ताका ज्ञानद्वारा मोक्षफल स्पष्ट ही है. तैसे–

मनु, याज्ञवल्क्य, विष्णु, यम, अंगिरा, वशिष्ठ, दक्ष, संवर्त्त, शातातप, पराशर, गौतम, शंख, लिखित, हारीत, आपस्तंब,शुक्र, बृहस्पति, व्यास, कात्यायन, देवल, नारद, इत्यादिक सर्वज्ञ हुये हैं. तिन्होंने

वेदके अनुसार स्मृति नाम ग्रंथ किये हैं सो धर्मशास्त्र कहिये हैं. तिनमें वर्ण आश्रमके कायिक वाचिक मानसिक धर्म कहे हैं. तिनका भी अंतःकरणशुद्धिद्वारा ज्ञान होयके मोक्षही प्रयोजन है. तैसे व्यासने महाभारत और वाल्मीकिने रामायण किया है; तिनका भी धर्मशास्त्रमें अंतर्भाव है और देवताआराधनके निमित्त जो मंत्रशास्त्र है, ताकाभी धर्मशास्त्रमें अंतर्भाव है देवताआराधनका अंतःकरण शुद्धि प्रयोजन है. तैसे सांख्यशास्त्र, योगशास्त्र, वैष्णवतन्त्र, शैवतन्त्रादिकभी धर्मशास्त्रके अंतर्भूत हैं. काहेते इनमेंभी मानसधर्मका निरूपण है. तहां–

सांख्यशास्त्रका फल ।

सांख्यशास्त्र षट्अध्यायरूप कपिलने किया है ताके १ प्रथम अध्यायमें विषय निरूपण किये हैं. २ द्वितीय अध्यायमें महत्तत्त्व अहंकारादिक प्रधानके कार्य्य कहे हैं. ३ तृतीय अध्यायमें विषयनते वैराग्य कह्या है. ४ चौथे अध्यायमें विरक्तोंकी आख्यायिका कही है. ५ पंचम अध्यायमें परपक्षका खंडन कह्या है. छठेअध्यायमें सारे अर्थका संक्षेपते संग्रह किया है प्रकृतिपुरुषके विवेकते पुरुषका असंगज्ञान सांख्यशास्त्रका प्रयोजन है. ताकाभी त्वंपदके लक्ष्य अर्थ शोध-

नद्वारा महावाक्यजन्य ज्ञानमें उपयोगी होनेते मोक्षही फल है. तैसे—

योगशास्त्रका फल और शारीरक उक्तिसे अविरोध।

योगशास्त्र चारिपादरूप है. पतंजलि ताका कर्त्ता है. सो पतंजलि शेषका अवतार है. एक ऋषि संध्या-उपासन करे था ताकी अंजलिमें प्रगट होयके पृथिवीमें पड़्या है, याते पतंजलि नाम कहिये है, ताने १ शरीरका रोगरूपी मल दूरि करनेवास्ते चिकित्साग्रन्थ किया है. और २ अशुद्धशब्दका उच्चारणरूपी जो वाणीका मल है, ताके नाशकूं पाणिनिव्याकरणका भाष्य किया है. तैसे ३ विक्षेपरूप अंतःकरणका मल है, ताके नाशकूं योगसूत्र किये हैं. तहां १ प्रथम पादमें चित्तवृत्तिका निरोधरूप समाधि, और ताके साधन, अभ्यास वैराग्यादिक कहे हैं. तैसे २ विक्षिप्तचित्तकूं समाधिके साधन, यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि, ये आठ समाधिके अंग द्वितीय पादमें कहे हैं, ३ तृतीयपादमें योगकी विभूति कही है. ४ चतुर्थपादमें योगका फल मोक्ष कह्या है. इसरीतिसे योगशास्त्र भी ज्ञानसाधन, निदिध्यासनकूं संपादनद्वारा मोक्षका हेतु है. और शारीरकसूत्रमें जो सांख्ययोगका खण्डन किया है, सो तिनके

व्याख्यान जो उपनिषदनसे विरुद्ध किये हैं तिनका खण्डन किया है; सूत्रनका नहीं. तैसे–

न्याय वैशेषिकका खण्डन भी विरुद्धव्याख्यानका है, तैसे नारदने पंचरात्र नाम तंत्र किया है, तामें वासुदेवमें अन्तःकरण स्थापन कह्या है, ताका भी अंतःकरणकी स्थिरतासे ज्ञानद्वारा मोक्षही फल है. सारे वैष्णवग्रंथ पंचरात्रके अंतर्भूत हैं. सो पंचरात्र धर्मशास्त्रके अंतर्भूत हैं. तैसे पाशुपततंत्रमें पशुपतिका आराधन कह्या है; ताका कर्ता पशुपति है, ताका भी अंतःकरणकी निश्चलताद्वारा मोक्षसाधन ज्ञान फल है, और

शैवग्रंथादिकनका फल और वाममार्ग ।

जो शैवग्रंथ हैं, सो सारे पाशुपततंत्रके अंतर्भूत हैं. तैसे गणेश, सूर्य, देवीकी उपासनाबोधक ग्रंथनका चित्तकी निश्चलताद्वारा ज्ञान फल है. और सर्वका धर्मशास्त्रमें अंतर्भाव है. परंतु–

देवीकी उपासनाके बोधक ग्रंथनमें दो संप्रदाय हैं, एक दक्षिण संप्रदाय दूसरा उत्तरसंप्रदाय है. उत्तरसंप्रदायकूं वाममार्ग कहै हैं, तिनमें १ दक्षिणसंप्रदायकी रीतिसे जिन ग्रंथनमें देवीकी उपासना है सो तो धर्मशास्त्रके अन्तर्भूत है. और २ वाममार्ग जिन ग्रंथनमें है, सो धर्मशास्त्रसे विरुद्ध हैं, याते अप्रमाण है. यद्यपि

वामतंत्र शिवने किया है, तथापि सकलशास्त्र और वेदसे विरुद्ध है; याते प्रमाण नहीं. जैसे विष्णुके बुद्ध-अवतारने नास्तिकग्रंथ किये हैं, सो वेदविरुद्ध हैं; याते प्रमाण नहीं. तैसे शिवकृतवामतंत्र भी अत्यन्त विरुद्ध है. मदिरादिक अत्यन्त अशुद्धपदार्थनका नाम ग्रहण लिखा है. और उत्तमपदार्थनके जो नाम हैं. सोई मलिनपदार्थनके नाम लोकवचनके निमित्त कहे हैं. मदिराका नाम तीर्थ, मांसका नाम शुद्ध, मदिरापात्रका नाम पद्मा, प्याजका नाम व्यास, लशुनका नाम शुकदेव, मदिराकारी कलालका नाम दीक्षित कहैं हैं, तैसे वेश्यासेवी चर्मकारी चांडालीसेवी आदिककूं प्रयागसेवी काशीसेवी कहैंहैं. और भैरवीचक्रमें स्थित जो चांडालादिक हैं, तिनको ब्राह्मण कहैं हैं. और अत्यंत व्यभिचारिणीकूं योगिनी, और व्यभिचारीकूं योगी कहैं हैं ऐसे अनेकप्रकारसे निषिद्ध तिनका व्यवहार है. पूजनके समय अनेक दोषवती स्त्रीकूं उत्तमशक्ति कहैं हैं. जाति चांडाली अतिव्यभिचारिणी रजस्वलास्त्रीकूं देवीबुद्धिसे पूजन करैं हैं, ताका उच्छिष्ट मदिरापान करैं हैं और अधिकमदिरापानसे जो वमन करिदेवे, ताकूं पृथ्वीमें नहीं गिरने देवैं हैं, किंतु आचार्यसहित दूसरे सावधान भक्षण करे हैं. वमनकूं भैरवी कहैं हैं और स्त्रीकी योनि-

में जिह्वा लगायके मंत्रनका जप करै हैं. मदिरा १, मांस २, मैथुन ३, मुद्रा ४, मंत्र ५; इन पांच मकारकूं भोग मोक्ष निमित्त सेवन करें हैं. प्रथमा द्वितीयादिक तिन मकारनके अप्रसिद्ध नामनते व्यवहार करैं हैं. इसते आदिलेके वामतंत्रका सकलव्यवहार इस लोकते और परलोकते भ्रष्ट करै है. इसीकारणते कर्णच्छेदी योगी, और अवधूत गुसाई, तैसे अनेक संन्यासी और ब्राह्मणादिक वाममार्गकूं सेवन करैं हैं तो भी लोकवेदनिंदित जानिके गुप्त राखैं हैं. अधिक क्या कहैं वामतंत्रकी रीति सुनिके म्लेच्छके भी रोमांच होय जावें. ऐसा निंदित वामतंत्र है. सर्वंगी जो अभक्षण करैं हैं सो सारे निंदितमार्ग वामतंत्रमें कहे हैं. अति नीचव्यवहार लिखनेयोग्य नहीं याते विशेष प्रकार लिखा नहीं. सर्वथा वामतंत्र त्यागने योग्य है. तैसे-

नास्तिकमत भी त्यागने योग्य है. नास्तिकनके षट् भेद हैं:-माध्यमिक १, योगाचार २, सौत्रांतिक ३, वैभाषिक ४, चार्वाक ५, दिगंबर ६, ये छह वेदकूं प्रमाण नहीं मानैं हैं तिनका आपसमें विलक्षणसिद्धांत है. १ माध्यमिक शून्यवादी हैं २ योगाचारके मतमें सारे पदार्थ विज्ञानसे भिन्न नहीं. विज्ञानही तत्त्व है; सो

विज्ञान क्षणिक है. ३ सौत्रांतिक मतमें विज्ञानका आकार बाह्यपदार्थ विषय विना होवै नहीं, याते विज्ञानते बाह्यपदार्थनका अनुमान होवै है; इस भाँतिसे सौत्रांतिकमतमें अनुमानप्रमाणके विषय बाह्यपदार्थ हैं, प्रत्यक्ष नहीं और स्थिर नहीं किंतु सारे पदार्थ क्षणिक हैं और ४ वैभाषिकमतमें बाह्यपदार्थ क्षणिक तो हैं परंतु प्रत्यक्ष प्रमाणके विषय हैं, इतना भेद है. ये चारि मत सुगतके हैं ५ चार्वाकमतमें पदार्थ क्षणिक नहीं, परंतु तिसके मतमें देह आत्मा है. और ६ दिगंबरमतमें देह आत्मा नहीं, देहसे आत्मा भिन्न है परंतु जितना देहका परिमाण होवै, उतना आत्माका परिमाण है. इसरीतिसे इनका आपसमें मतका भेद है. और भी इनकी आपसमें मतकी विलक्षणता बहुत है, परंतु सारे वेदके विरोधी हैं; याते नास्तिक हैं, इसी कारणते तिनके मतका उपपादन और खंडन विशेष करिके लिखा नहीं. इसरीतिसे—

साहित्य आदिकके तात्पर्यपूर्वक
तर्कदृष्टिका सारग्राही निश्चय।

वाममार्ग और नास्तिकमतनके ग्रंथ यद्यपि संस्कृत वाणीरूप हैं, तथापि वेदबाह्य हैं, याते वेदके अनुसारी विद्याके प्रस्थान अष्टादशही हैं. और मम्मटआदिकने

जो साहित्यग्रंथ किये हैं तिनका भी कामशास्त्रमें अंतर्भाव है. तैसे सकल काव्यनका भी किसीका कामशास्त्रमें, किसीका धर्मशास्त्रमें अंतर्भाव है. इसरीतिसे अष्टादश विद्याके प्रस्थान सारे ब्रह्मज्ञानद्वारा मोक्षके हेतु हैं. कोई साक्षात् ज्ञानका हेतु है, कोई परंपराते ज्ञानका हेतु है. यह तर्कदृष्टिने सकलशास्त्रनका अभिप्राय निश्चय किया. यद्यपि उत्तरमीमांसाविना सारे शास्त्र जिज्ञासुकूं हेय हैं, यह शारीरकमें सूत्रकार भाष्यकारने प्रतिपादन किया है. याते अन्यशास्त्र भी मोक्षके उपयोगी हैं यह कहना संभवे नहीं; तथापि सारग्राहीदृष्टिसे तर्कदृष्टिने यह सार निश्चय किया।

तर्कदृष्टिका एकविद्वानसे मिलाप।

दोहा।

सुनि प्रसिद्ध विद्वानपुनि, मिल्यो आप तिहि जाय
निश्चय अपनो ताहि तिहिं, दीनो सकल सुनाय२२॥

टीका-गुरुद्वारा सुने अर्थमें बुद्धिकी स्थिरताके निमित्त सकलशास्त्रनका अभिप्राय विचारा, तो भी फेरि संदेह हुवाः-जो शास्त्रनका अभिप्राय मैं निश्चय किया सोई है अथवा अन्य अभिप्राय है? काहेते, तर्कदृष्टि कनिष्ठअधिकारी कह्या है; याते बारंबार कुतर्कते संदेह होवै है. ताकी निवृत्तिवास्ते अन्यविद्वान्के

निश्चयते अपने निश्चयकी एकता करनेकूं गया.

दोहा।

तर्कदृष्टिके बैन सुनि, सो बोल्यो बुधसंत।
जो मोसूं तैं यह कह्यो, सोई मुख्य सिद्धांत ॥ २३ ॥
संशय सकल नशाय यों, लख्यो ब्रह्म अपरोक्ष।
जग जान्यो जिन सब असत, तैसे बंध रु मोक्ष॥२४॥

ज्ञानीकूं इच्छाका संभव और इच्छाके

अभावका अभिप्राय—

दोहा— शेष रह्यो प्रारब्ध यों, इच्छा उपजी येह।
चलि तत्कालहि देखिये, जननिजनकयुत गेह ॥२५॥

टीका—ज्ञानीका सकल व्यवहार अज्ञानकी न्याई प्रारब्धसे होवै है, यह पूर्व कहा है; याते इच्छा संभवै है. और कहूं शास्त्रमें ऐसा लिखा है:—ज्ञानीकूं इच्छा होवै नहीं, ताका यह अभिप्राय नहीं, ज्ञानीका अंतःकरण पदार्थकी इच्छारूप परिणामकूं प्राप्त होवै नहीं काहेते—

अंतःकरणके इच्छादिक सहजधर्म हैं. और अंतःकरण यद्यपि भूतनके सत्त्वगुणका कार्य कह्या है; तथापि रजोगुण तमोगुणसहित, सत्त्वगुणका कार्य है; केवल सत्त्वगुणका नहीं. यातैं सत्त्वगुणका कार्य होवै, तो चलस्वभाव अंतःकरणका ही हुवा चाहिये तैसे

राजसीवृत्ति, काम क्रोधादिक, और मूढतादिक तामसी-वृत्ति, किसी अतःकरणकी नहीं हुई चाहिये, याते केवल सत्त्वगुणका अन्तःकरण कार्य नहीं. किंतु अप्रधान रजोगुण तमोगुण सहित; प्रधान सत्त्वगुणवाले भूतनंते अन्तःकरण उपजे है. याते अन्तःकरणमें तीनोंगुण रहैं हैं. सो तीनों गुण भी पुरुषनके जितनें अंतःकरण हैं, तिनमें सम नहीं; किंतु न्यून अधिक हैं. याते गुणोंकी न्यूनता अधिकतासे सर्वके विलक्षण स्वभाव हैं. इसरीतिसे तीनोंगुणोंका कार्य अन्तःकरण है.

जितनें अंतःकरण रहैं, उतने रजोगुणका परिणाम-रूप इच्छाका अभाव बनै नहीं. याते ज्ञानीकूं इच्छा होवै नहीं; ताका यह अभिप्राय है:—अज्ञानी और ज्ञानीदोनोंको इच्छा तो समान होवै है, परंतु १ अज्ञानी तो इच्छादिक आत्माके धर्म जानै है; और २ ज्ञानीकूं जिसकालमें इच्छादिक होवैहैं, तिसकालमें भी आत्मा-के धर्म इच्छादिकनकूं जानै नहीं किंतु काम, संकल्प, संदेह, राग, द्वेष श्रद्धा, भय, लज्जा, इच्छादिक अंतःक-रणके परीणाम हैं याते अंतःकरणके धर्म जानैं हैं इसरी-तिसे इच्छादिक होवै भी हैं. आत्माके धर्म इच्छादिक, ज्ञानीकूं प्रतीतहोवै नहीं याते ज्ञानीमें इच्छाका अभाव कह्या है. तैसे मन वाणी तनसे जो व्यवहार ज्ञानीकरे,

सो सारा ज्ञानीकूं आत्मामें प्रतीत होवै नहीं. किंतु सारी क्रिया मन वाणी तनुमें है"और आत्मा असंग है"यह ज्ञानीका निश्चय है. याते सर्वव्यवहार कर्त्ता भी ज्ञानी अकर्त्ता है इसीकारणते श्रुतिमें यह कह्या है:-"ज्ञानते उत्तर किये जो वर्तमानशरीरमें शुभअशुभ कर्म, तिनके फल पुण्य पापका संबंध होवे नहीं" प्रारब्धबलते अज्ञानीकी न्याई सर्वव्यवहार और ताकी इच्छासंभवैहै.

शुभसंतति राजाका प्रसंग।

शुभसंतति नाम राजाकूं त्यागिके तीनों पुत्रनिकसे, तहां पुत्रनकी कथा कही,अब पिताका प्रसंगकहैं हैं:-

दोहा।

पुत्र गये लखि गेहते,पितु चित उपज्यो खेद।
सूनो राज न तिनि तज्यो,नहिं यथार्थनिर्वेद॥२६॥

टीका-पुत्र गृहते निकसे, तब राजाकूं तीव्रवैराग्यके अभावते तिनके वियोगका दुःख हुवा तैसे मंदवैराग्य हुवा है, याते विषयभोगका सुख होवै नहीं. और बाहरि निकसनकी इच्छा करी.सो पुत्रनके निकसनेते सूनाराज्य छोडि सकै नहीं, याते भी दुःख हुवा. जो तीव्रवैराग्य होता तो सूनाराज्य भी त्याग देता सो वैराग्य तीव्र हुवा नहीं, किंतु मंद हुवा है. याते त्यागि सकै नहीं और भोगनमें आसक्ति नहीं, याते उभयथा

खेदही है. यथार्थनिर्वेद कहिये तीव्रवैराग्य नहीं.मंदवै-
राग्यका फल उपास्यकी जिज्ञासा कहे हैं:—

चौपाई।

शुभसंततिपितुसोबडभागा।भयोप्रथमतिहिंमंदविरागा॥
जिज्ञासाउपजीयहताकूं।देव ध्येयको ध्याऊं जाकूं॥२७॥
पंडित निर्णय करन बुलाये।यथायोग्य आसनबैठाये॥
प्रश्न कियो यह सबके आगे।असको देव न सोवै जागे२८
पुरुषारथहित जनजिहिं जाचै।भक्तिमानके मनमैंराचै॥
सुनि यह पृथिवीपतिकी बानी।इकतिनमेंबोल्योसुज्ञानी

विष्णुउपासकका उत्तर—चौपाई।

सुनराजा तुहि कहूं सुदेवा।शिवविरंचि लागे जिमिसेवा॥
शंख चक्रधारी हितकारी।पद्म गदाधर पर उपकारी३०
मंगल मूर्ती विष्णुकृपालू।निजसेवकलखि करत निहालू।
शक्ति गणेश सूर शिव जे हैं। सब आज्ञा ताकीमें तेहैं॥
भारत सकलग्रंथ यह भाखै।पद्मपुराण तापिनी आखै॥

टीका—तापनी कहिये नृसिंहतापिनी, रामतापिनी, गोपालतापिनी, उपनिषद.

चौपाई।

विष्णुरूपते उपजतसबही।परैभीर जाचैं तिहिं तबही३२
विविधवेषको धरि अवतारा।सब देवनकूं देत सहारा॥
याते ताकी कीजै पूजा।विष्णुसमान सेव्य नहिं दूजा३३

विष्णुभक्त शिवउत्तमकहिये।तथापिसेव्यस्वरूपनलहिये
रूपअमंगलशिवकोशवसम।ध्यान करैं नहिंताकोयों हम
शव कहिये मुर्दा, ताके सम अमंगल.

चौपाई।

शंखडमरुगजचर्म कपाला।धरैं आप किहिं करैं निहाला
ताको पूत गणेशहु तैसो। रूप विलक्षण नरपशुजैसो॥
शठहठते ध्यावत जो देवी। तासमरूप धरत तिहिं सेवी॥
तियनिंदितअशुचीनपवित्रा।अवगुणगिनेनजातविचित्रा
कपटकूटकोआकरकहिये। पराधीननिजतन्त्रनलहिये॥
ऐसो रूप जु चहिये जाकूं। सो सेवहुनरखरसमताकूं॥
भ्रमतफिरैनिशिदिनयहभानू।रहतननिश्चलक्षणइकथानू।
भ्रमतो फिरैउपासकताको। तिहिसमानसेवकजोजाको॥
आनदेवयातेसब त्यागै। सेवनीय इकहरि नित जागै॥
पूजनध्यानकरन विधिजोहैं। नारद पञ्चरात्रमैं सोहैं॥

टीका–विष्णुकूं त्यागिके प्रसिद्ध जो च्यारि उपासना हैं; तिन एक एकका निषेध कियते भी स्मार्त्तउपासनाका भी निषेध किया, काहेते,पांचोंदेवनकूं समबुद्धि करिके उपासै, ताकूं स्मार्त्तउपासना कहैं हैं.शिवआदिक च्यारि देवनकूं विष्णुकी समता निषेधनेते स्मार्त्तउपासनाका निषेध भी अर्थसे किया है.

चौपाई।

शिवसेवकमुनिसुनितिहिंवैनाक्रोधसहितबोल्यो चलनैना

मुनराजनवाणीइक मोरी । जामैं वचनप्रमाण करोरी ॥
शिवहिसमानआनको कहिये। मांगेदेतजाहि जो चहिये॥
सबविभूतिहरिकूंदेमांगी । धरतविभूतिआपनितत्यागी ॥
चर्मकपालहेतु इहिंधारे । सम नहिंउत्तम अधमविचारे॥
नग्न रहत उपदेशत येही । नहिं विराग सम सुख है केही ॥

टीका—वैष्णवने चर्म कपालादिक निंदितवस्तुका धारण आक्षेप किया, ताका यह समाधान है:—महादेवकूं सर्वपदार्थनमें समबुद्धि है. द्वितीयपादका अन्वय यह है सम विचारै, उत्तम अधम नहीं विचारै.

चौपाई

सदावर्त ऐसो दे भारी । काशीपुरी मरे नर नारी ॥
सो सायुज्यमुक्तिकूं जावै । गर्भवास संकट नहिं पावै ॥
शिवसमाननरनारीतेसब । लहतसुदिव्यभोग सगरेतब ॥
करत आपअद्वय उपदेशा । तजतलिंग यों ब्रह्मप्रवेशा ॥
ऊंच नीच रञ्चहु नहिं देखै । मुक्तीसबकूं दै इक लेखै ॥
शिवसमानराजनकोदाता । भक्तअभक्त सबनको त्राता॥
विष्णुसुभावसुन्यो हम ऐसो। जगमें जन प्राकृत है तैसो॥
त्राता भक्त अभक्त न त्राता।यह प्रसिद्ध सबजगमें नाता॥
हरिसेवकहरसेव्यबखान्यो । रामचन्द्ररामेश्वरमान्यो ॥
स्कंदपुराणव्यासबहुभाख्यो।हरिसेवकहरसेव्य हिराख्यो ।
कह्योजुभारत पद्मपुराना । सबदेवनतैं हरि अधिकाना ॥

भारततातपर्यनहिंदेख्यो । जोअप्पयदीक्षितन्नुधलेख्यो ॥

टीका–वैष्णवने यह कह्या:–"भारतादिक ग्रंथनमें; विष्णु सर्व देवनका पूज्य कह्या है," सो बनै नहीं, काहेते, भारतग्रन्थका तात्पर्य देखते शिवकूंही ईश्वरता प्रतीत होवै है. यह अप्पयदीक्षितनाम विद्वान्‌ने सकलपुराण इतिहासका तात्पर्य लिख्या है. तहां भारतमें यह प्रसंग है:–अश्वत्थामाने नारायण अस्त्र और आग्नेय अस्त्रका प्रयोग किया, तब बहुत सेनाका तो संहारभी हुवा, परन्तु पंचपांडवोंमें कोई मऱ्या नहीं, तब रथकूं त्यागिके धनुर्वेद और आचार्यकूं धिक्कार करता वनकूं चल्या तहां व्यासभगवान् ताकूं मिले और कह्या:–"हे ब्राह्मण! तू आचार्य और वेदकूं धिक्कार मति कहु यह अर्जुन कृष्ण दोनों नरनारायणरूप हैं. इन्होंने शिवका पूजन बहुत किया है. याते इनकी भक्तिके अधीन हुवा त्रिशूली महादेव इनके रथके आगे रहे है. याते इन दोनोंके ऊपरि प्रयोग किये अनेकशस्त्रअस्त्रनकी सामर्थ्यकूं महादेव नाश करि देवैं हैं" इस भारतप्रसंगते नारायणरूप कृष्णकी विभूति महादेवकी कृपाते उपजी है; यह सिद्ध होवै है. याते विष्णुचरित्रके प्रतिपादक जो ग्रन्थ हैं, सो शिवकी अधिकताकूं प्रतिपादन करैं हैं. काहेते तिनग्रन्थनमें विष्णु,

सेव्य कह्या है, सो विष्णु भारतप्रसंगते शिवका भक्त है. याते जिस शिवकी भक्तिते विष्णु सेव्य होवै है; शिवही परमसेव्य है इसरीतिसे अप्पयदीक्षितने सकलवैष्णव ग्रन्थनका प्रतिपाद्य शिव कह्या है.

चौपाई ।

शिवसबकोप्रतिपाद्यबखान्यो।भक्तनमैंउत्तमहरिगान्यो।
ईशदेवपदसबमैंकहिये।महतसहितइकशिवमैंलहिये ४९

टीका-महादेव,महेश शिवकूं कहैं हैं. औरनकूंदेवईशकहैंहैं

चौपाई ।

शिवतैं भिन्नअशिवजोकहिये।तिहिंताजिशिवकल्याणहिलहिये
जलशायीजिहिंनामबखान्यो।सोजागैयहमिथ्यागान्यो

टीका-कल्याणकूं शिव कहैं हैं. तातें भिन्न अशिव है. ताका यह अर्थ सिद्ध हुवाः-शिवतें भिन्न और देवता अशिव कहिये अकल्याणरूप हैं, तिन अकल्याणरूप देवतानकूं त्यागिकै कल्याणरूप शिवकूं उपासै.

चौपाई ।

विषलखजबसबकूंउपज्योडर।निर्भयकियेसकलगरधरिगर
जाको पूत गणेश कहावै । विघ्नजाल तत्काल नशावै५१॥
कारजमैं कारण गुण होवै । यों शिव विघ्न मूलते खोवै ॥
जन्ममरणदुख विघ्नकहावै । तिहिंसमूलशिवध्यान नशावै
सेवनयोग्यसदाशिव एका।जागै सहित समाधिविवेका॥

तंत्रपाशुपतरीति जु गावै। त्यों पूजनकरि ध्यानलगावै५३
नारदपंचरात्रमत झूठो। यह परिमल परसंग अनूठो॥
याते शिवसेवा चित लावै। पुरुषारथ जो चहै सुपावै५४

टीका—नारदपंचरात्रका मत सूत्रभाष्यमें खंडन किया है. ताके अनुसारी रामानुजआदिक नवीनवैष्णवनका मत कल्पतरुकी टीका परिमलमें खंडन किया है.

चौपाई।

शिवको पूत गणेश बतायो। कारणगुण कारजमें गायो॥
मुनिगणेशकोपूजकबोल्यो। असकियकोपसिंहासनडोल्यो
राजनसुनदोनों ये झूठे। वचन सत्य सम कहत अनूठे॥
शिवको पूत गणेश बतावै। पराधीनता तामें गावै॥५६॥
कहुंप्रसंगसुनहुइकऐसो। लिख्योव्यासभगवतमुनिजैसो॥
घटे त्रिपुरमारनकूं सारे। हरिहरसहितदेवअधिकारे॥५७॥
नहिं गणेशको पूजन कीनों। त्रिपुर नरंचहुतिनतेंछीनों॥
पुनिपछितायमनायगणेशा। त्रिपुरविनाश्योरह्योनलेशा॥
भये समर्थकियेजिहिपूजा। सेवनयोग सु इक नहिंदूजा॥
रामपूत दशरथको जैसे। विघ्नहरणशिवकोसुततैसे॥५९॥
व्यास गणेशपुराण बनायो। सबको हेतु गणेश बतायो॥
हरिहर विधि रविशक्ति समेता। तुंडीतेंउपजतसबतेता६०
करतध्यान जिहिंछिनजनमनमैं। नाशतविघ्नप्रधानगनमें
विघ्नहरणयों जागत निशिदिन। भक्तिसहितसेवह्वातिहिअनुछिन

देवीभक्तका उत्तर ।

हेतु गणेशशक्तिकोसुनिके।भगत भागवतउच-योग्गुनिके॥
सुनराजनवाणी ममसांची । तीनों सकलकहतयेकांची॥

टीका—भगतभागवत कहिये भगवतीको भगत.

चौपाई ।

सूने देव शक्तिबिनसारे । मृतक देहसम लखि हत्यारे ॥
शक्तिहीन असमर्थ कहावै।सो कैसे कारज उपजावै ६३
जिनबहुशक्ति उपासनधारी।तातेभयेसकलअधिकारी ॥
हरि हरसूरगणेशप्रधाना।तिनमैंशक्ति देखियतनाना ६४
शक्तिलोकमें भाषत जाकूं । रूपभगवतीकोलखि ताकूं॥

टीका—भगवतीके दो रूप हैं:—१ सामान्य और २ विशेष १ सब पदार्थनमें अपना कार्य करनेकी जो सामर्थ्यरूप शक्ति,सो भगवतीका:सामान्यरूप है; और २ अष्टभुजादिकसहित मूर्ति विशेषरूप है, सामान्यरूप शक्तिके संख्यारहित अनंत अंश हैं,जामें शक्तिके न्यूनअंश होवें सो अल्पशक्ति होवै है; असमर्थ कहिये है. जामें शक्तिके अधिकअंश होवें, सो समर्थ कहियेहै. विष्णु, शिवआदिकनमें शक्तिके अंश अधिक हैं, याते अधिक समर्थ कहिये हैं,इसरीतिसे भगवतीका सामान्यरूप जो शक्ति, ताके अंशनकी अधिकतासे विष्णु, शिव, गणेश, सूर्यकी महिमा प्रसिद्ध है. और शक्ति

रहित होवै तो जैसे प्राण विना शरीर अमंगलरूपहोवै है, तैसे सारे देव हत्यारे कहिये अमंगलरूप होय जावैं, याते जिसशक्तिकी अधिकतासे देवनकी महिमा प्रसिद्ध है. सो महिमा शक्तिकी है; तिन देवनकी नहीं; विष्णुशिव आदिकननें भगवतीके सामान्यरूप शक्तिकी अधिक उपासना करी है;याते तिनमें शक्तिके अंश अधिक हैं. यह पूर्वग्रंथनमें भगवतीभक्तका अभिप्राय है.

जैसे भगवतीके निराकाररूप शक्तिके अनंत अंश हैं तैसेसाकाररूपके भी अनंत अंश हैं. तिन साकारअंशनमें काली रूप प्रधान है. और माहेश्वरी; वैष्णवी, सौरी, गणेशी आदिकभी प्रधान अंश हैं. विष्णुकूं भगवतीकी उपासनाते, वैष्णवी नाम भगवतीके अंशका लाभ. तैसे अन्यदेवनकूं भगवतीके उपासनाते निज २ माहेश्वरी आदिक अंशनका लाभ हुवा है. तिनमें भी भगवतीके विष्णु शिव दोनों प्रधान भक्त हैं. काहेते, ध्याताकूं ध्येयरूपकी प्राप्ति उपासनाकी परम अवधि है. विष्णु शिवकूं उपासनासे ध्येयरूपकी प्राप्ति हुई है; याते प्रधान उपासक हैं. यह अढाई चौपाईसे प्रतिपादन करैं हैंः-

चौपाई।

लाखकरोरिमात्रिकागणपुनि ।तंत्रग्रंथलखिअंशसकलगुनि

कालीताकोअंशप्रधाना। माहेश्वरीआदि लखिनाना॥
हरिहरब्रह्मसकलतिहिंध्यावैं। निजरअंशकृपातिहिंपावैं॥
ध्येयरूपध्याताह्वैजबहीं। सिद्धउपासन लखिय तबहीं॥
असउपासनाहरिअरुहरकी।नारीमूर्ति धरीतजि नरकी॥

दोहा।

अमृत मथन प्रसङ्गमैं, हरि मोहिनी स्वरूप॥
अर्ध अंग शिवको लसै, देवीरूप अनूप॥ ६८॥

टीका--मथन करिके अमृत प्रगट किया, तब सुर असुरका विवाद मेटनेमें विष्णु असमर्थ हुये; तब अपने उपास्यरूप भगवतीका ऐसा एकाग्रचित्तसे ध्यान किया, जाते आप विष्णु उपास्यरूपकूं प्राप्त हुवा. ता रूपके माहात्म्यसे असुर भी ताके अनुकूल हुये, तैसे शिवने भी समाधिमें ऐसा भगवतीका ध्यान किया, जाते अर्धविग्रह शिवका उपास्यरूप हुवा. कदाचित् विक्षेपते समाधिका अभाव होवै है; याते सारा विग्रह शिवका उपास्यरूप नहीं. इसरीतिसे सारे देव भगवतीके उपासक हैं. सो उपासना दो रीतिसे कही है:- दक्षिणआम्नायते, और उत्तर आम्नायते. पूर्व दक्षिण आम्नाय कह्या, आगे उत्तर आम्नाय कहैं हैं:-

चौपाई।

भक्तभगवतीके हर हरिहैं। इनसम कौन उपासन करिहैं

तदपिमहामायाजोध्यावै । तुरत सकल पुरुषारथ पावै ॥
नहिंसाधनजगमैंअसऔरा । उपजै भोगमोक्षइकठौरा॥
भक्तभगवतीकोजोजगमैं । भोगै भोगन आवतभगमैं ॥
शिवकृततंत्ररीतियहगाई । भक्तिभगवतीअतिसुखदाई ॥
पञ्चमकारनतजिये कबहूं । जिनहिंसनातनसेवतसबहूं ॥
कृष्णदेवबलदेवसुज्ञानी । प्रथमा पिबतसदा ज्यूंपानी ॥
और प्रधान पुरातन जेते । सेवत सकल मकारहितेते ॥
तिनसेवनकीजोविधिसारी। शिवनिजमुखभाषीउपकारी
शिवको वचनधरैजोमनमैं । लहैसुभोगमोक्षइक तनुमैं ॥
ग्रंथभागवतव्यासबनायो । उपपुराणकाली समझायो ॥
भक्तिभगवतीकीइकगाई । पूजाविधि सगरी समुझाई॥
ध्याता सकल भगवतीके हैं । हरिहरसूरगणेश जितेहैं ॥
सकलपियेप्रथमामतिवारे । पूजतशक्ति मग्नमन सारे॥
जगजननी जागै इक देवी । परमानंद लहै तिहिं सेवी ॥
सूर्यभक्तभगवतीकोयशसुनि । क्रोधसहितबोल्योइकमुनिपुनि
सुन राजन वाणीइक मोरी । भाषूं झूठ न शपथ करोरी ॥
अतिपापिष्ठनीचमतयाको।श्रवणसनेहसुन्योतैंजाको७७
अवगुण जिते बखानत जगमैं। तेगिनयतगुणगणयाभगमैं
मद्यमलीनहितीरथराखत।शुद्धनाम आमिषको आखत७८
कहत और यों सब विपरीता । शंभु तंत्र सेवी मतिरीता ॥
दक्षिण संप्रदाय जो दूजी । यद्यपि श्रेष्ठ अनेकन पूजी७९

तथापि बिन भानू सब अंधे । इन सबके मन जिनमैं बंधे ॥
करतभानुसिगरोउजियारो। ताबिनहोततुरतअँधियारो ॥
और प्रकाशक जगमैं जे हैं । अंश सबै सूरजके तेहैं ॥
भानुसमानकौनहितकारी । भ्रमतआपपरहितमतिधारी ॥
कालअधीन होत सबकारज।ताहि त्रिविधभाषतआचारज
वर्त्तमान भावीअरु भूता । सूरज क्रिया करत यह सूता८२
या विधिसकलभानुते उपजैं।भस्म होतसबजबवहकुपिजैं
भानुरूप द्वैभाँतिपिछानहु। निराकार साकारहि जानहु८३
निराकारपरकाश जु कहिये। नामरूप मैं व्यापक लहिये।
अधिष्ठानसबकोसोएका।जगविवर्तहैजिहिंअविवेका८४
'अहंभानु'असवृत्तिउदयजब ।तामैंप्रगटिविनाशततमसब

टीका–सूर्यके दो रूप हैंः–निराकारप्रकाश और साकारप्रकाश. तिन दोनोंमें निराकारप्रकाश सारे नामरूपमें व्यापक है. जाकूं वेदांती भातिशब्दकरिके व्यवहार करैं हैं. सो निराकारप्रकाशरूप जो सूर्यका सामान्यरूप है- सो सारे जगत्का अधिष्ठान है. ताके अज्ञानते जगत्, रूपी विवर्त उपजै है.सोई निराकारप्रकाश अंतःकरणकी वृत्तिमें प्रतिबिंबसहित ज्ञान कहिये है. "अहं भानु" ऐसी अंतःकरणकी वृत्ति प्रकाशके प्रतिबिंबसहित होवै,तब अज्ञानकी निवृत्तिद्वारा जगत्की निवृत्ति होवैहै.

चौपाई ।

सुनि साकाररूप यह ताको।होय चांदना दिनमैं जाको॥

ताके अंश और बहुतेरे। चंद तारका दीप घनेरे ॥८६॥
याते द्वैविध भानु बतायो। ज्ञेय ध्येयको भेद जनायो॥
वेदसकलयाहीकूंभाखत।रूपप्रकाशसत्यतिहिंआखत८७

निराकार साकार भेदते भानुके दो रूप हैं. तिनमें निराकाररूप ज्ञेय है, साकाररूप ध्येय है. याहीकूं वेदांतनमें निर्गुण सगुणभेदते दो प्रकारका ब्रह्म कहैं हैं.

चौपाई।

जामैंलेशनतमकोकबही। लखितिहिंजगजनजागतसबही
कबहुं न सोवै सोयों जागै। ध्यान करत ताको तम भागै॥
औरहि जागत भाषत सगरे। राजनजानि झूठतेझगरे ८९

उक्तमतके अनुवादपूर्वक स्मार्त्तमत।

ऐसे पांच उपासक बोले। निजगुण अवगुण परके खोले॥
पंडित औरअनेकजुआये। भिन्नभिन्ननिजमतसमझाये ९०

टीका–जैसे पांचउपासक परस्पर विरुद्ध बचन बोले तैसे अनेकपंडित निज निज बुद्धिके अनुसार विरुद्धही बोले, जैसे इन पांचोंका परस्पर विरुद्धमत है, तैसे स्मार्त्त जो पंडित, पांचोंदेवनमें भेदबुद्धि करै नहीं, ताका मतभी इन सबते विरुद्ध है. काहेते, वैष्णवका यह मत हैः–विष्णसमान और देव नहीं, सारे विष्णुके भक्त हैं, और विष्णुके जो राम कृष्ण नारायण आदिक नाम हैं, तिनके समान जो अन्यदेवनके नामकूं जाने

सो नामापराधी है. ताकूं रामादिक नाम उच्चारणका यथार्थफल होवे नहीं. तैसे शैवमतमें, शिवसमान अन्य देव नहीं; और शिवके नामउच्चारणका फल विष्णुनाम उच्चारणते होवे नहीं. इसरीतिसे सर्वके मतमें अपनें अपनें उपास्यदेवके समान अन्यदेव नहीं. और स्मार्त्त-मतमें सारे देव सम हैं याते ताके मतमैंभी पांचों बातें विरुद्ध हैं.

षट्शास्त्रोंकी परस्पर विरुद्धता ।

१सांख्य,२ पातंजल,३ न्याय,४ वैशेषिक, ५ पूर्व-मीमांसा; ६ उत्तरमीमांसा; इन षट्शास्त्रनका मतभी परस्पर विरुद्ध है. काहेते, १ सांख्यशास्त्रमें ईश्वरका अंगीकार नहीं२योगमें निरपेक्ष प्रकृतिपुरुषके विवेक-ज्ञानते मोक्ष माना है; और पातंजलशास्त्रमें ईश्वरका अंगीकार, समाधिते मोक्ष माना है; यह विरोध है;३-४न्यायमतमें चार प्रमाण,और वैशेषिकमतमें दो प्रमाण यह विरोध है. तैसे न्यायवैशेषिकका औरभी आपसमें बहुत विरोध है, जिज्ञासुकूं अपेक्षित नहीं, याते लिखा नहीं. ५तैसे पूर्वमीमांसामें ईश्वरका अंगीकार नहीं. मोक्षरूप नित्यसुखका अंगीकार नहीं, किंतु कर्मजन्य विषयसुखही पुरुषार्थ है. और६ उत्तरमीमांसामें ईश्व-रका,मोक्षका अंगीकार, विषयसुख पुरुषार्थ नहीं.और

उत्तरमीमांसाका मत या ग्रंथमें स्पष्टही है, सर्वशास्त्रनका मत याते विरुद्ध है. औरनमें भेदवाद है, यामें भेदका खंडन और अभेदनका प्रतिपादन है. इसरीतिसे सकलशास्त्रनके सिद्धांत परस्पर विरुद्ध हैं.

तर्कदृष्टिका पितासे मिलाप ।

चौपाई ।

वचन विरुद्ध सुने जबराजा। यहसंशयउपज्योतिहिंताजा
इनमैंकौनसत्यबुधभाखत। युक्तिप्रमाणसकलसमआखत
संशयशोकदुखितयोंजियमैं।कोउपास्ययहलख्योनहियमैं
चिंता हृदय हुई यह जाकूं।निजसंदेहसुनाऊं काकूं॥९२॥
शास्त्रनिपुणपंडितजगजेते । सुने विरुद्ध बकत यह तेते॥
योंचिंततबहुकालभयोजब। तर्कदृष्टितिहिंआयमिल्योतब

दोहा ।

मिले परस्पर ते उभै, पुत्र पिता जिहिं रीति ।
करि प्रणाम आशिष दुहूं, आसन लहे सप्रीति॥९४॥

तर्कदृष्टिका पिताप्रति उपदेश—दोहा।

निजपितु चितासहित लखि, सुत बोल्यो यह बात।
का चिंता चित रावरे, मुख प्रसन्न नहिं तात॥९५॥

चौपाई ।

शुभसंततिसुतकीसुनिबानी। तिहिंभाषीनिजसकलकहानी
चितचिंताकोहेतुसुनायो ।कोउपास्ययहतत्त्वनपायो९६

तर्कदृष्टि सुनि पितुके बैना।बोल्यो शुभसंतति सुख दैना।।
कारणरूप उपास्यपिछानहु।ताकेनामअनंतहिज्ञानहु१७
कारजरूप तुच्छ लखि तजिये।यहसिद्धांतवेदकोभजिये।।
रचै व्यास इतिहास पुराना। तिनमैंयहीमतोनहिंनाना१८
मनमैं मर्म न लखत जु पंडित। करतपरस्परमततेखंडित।।
नीलकंठ पंडित बुध नीको।कियो ग्रंथभारतकोटीको१९
तिनयहप्रथम हि लिख्योप्रसंगा।श्रुतिसिद्धांतकह्योजोचंगा

पुराणउक्त स्तुति और निन्दाके
करनेमें व्यासका अभिप्राय।

टीका–यद्यपि सकल पुराणका कर्त्ता एक व्यास है; ताने स्कंदपुराणमें शिवकूं स्वतंत्रतादिक ईश्वरधर्म कहे; और अन्यदेवनकूं शिवकृपाते सारी विभूतिकी प्राप्ति कही. याते जीवधर्म कहे. तैसे विष्णुपुराण, पद्मपुराणमें विष्णुकूं ईश्वरता कही, तैसे किसीकूं पुराणमें किसीकूं उपपुराणमें, विष्णुशिवते भिन्न जो गणेशादिकहैं, तिनकूं ईश्वरता कही. इसरीतिसे व्यासवाक्यनमें विरोध प्रतीत होवै है.ताका–

यह समाधान करें हैं:–सारे ही ईश्वरहैं. जा प्रकरणमें अन्यदेवकी निंदा है,ताकी निंदाकरिके, तिसकी उपासनात्यागमें व्यासका अभिप्राय नहीं; किंतु वैष्णवपुराणमें शिवादिकनकी निंदा विष्णुकी स्तुति करिके, विष्णुकी उपासनामें प्रवृत्तिकी हेतु है. तैसे शिवपुराण

में विष्णु आदिकनकी निंदा भी, तिनकी उपासनाके त्यागअर्थ नहीं, किंतु तिनकी निन्दा, शिवकी उपासनासे प्रवृत्तिके अर्थ है, जो एक प्रकरणमें अन्यकी निंदा त्याग वास्ते होवै, तो सर्वकी उपासनाका त्याग होवैगा याते अन्यकी निंदा एककी स्तुतिके अर्थ है, त्याग अर्थ नहीं.

दृष्टान्तः—वेदमें अग्निहोत्रके दो काल कहे हैं.एक तो सूर्यउदयसे प्रथम, और दूसरा सूर्य उदयते अनंतरकाल कह्या है.तहां उदयकालके प्रसंगमें अनुदयकालकी निंदा करी है; और अनुदयकालके प्रसंगमें उदयकालकी निंदा करी है.तहां निंदाका तात्पर्य त्यागमें होवै तो, दोनोंकालमें होमका त्याग होवैगा और नित्यकर्मका त्याग सभवै नहीं; याते उदयकालकी स्तुतिवास्ते अनुदय कालकी निंदा है.और अनुदयकालकी स्तुतिवास्ते उदयकालकी निंदा है. तैसे एक देवकी उपासनाके प्रसंगमें अन्यकी निंदाका एकही स्तुतिमें तात्पर्य है, अन्यकी निंदामें तात्पर्य नहीं.

पांच देवनके उपासकनकूं सम ब्रह्मलोककी प्राप्ति।

जैसे शाखाभेदते कोई उदयकालमें होम करै है, कोई अनुदयकालमें करै है,फल दोनोंकूं समान होवैहै, तैसे, इच्छा भेदते पांचोंदेवनमें जाकी उपासना करै,

तिन सबते ब्रह्मलोककी प्राप्ति होवै है. तहां भोग भोगिके विदेहमोक्ष होवै है. यद्यपि विष्णुआदिकनकी उपासनाते वैकुंठलोकादिकनकी प्राप्ति पुराणमें कही है ब्रह्मलोककी नहीं; तथापि उत्तम उपासक विदेहमुक्तिके अधिकारी देवयानमार्गते सारे ब्रह्मलोककूं ही जावै हैं परंतु एक ही ब्रह्मलोक वैष्णवउपासककूं वैकुंठरूप प्रतीत होवै है; और लोकवासी सारे तिसकूं चतुर्भुज पार्षदरूप प्रतीत होवैं हैं और आप भी चतुर्भुजमूर्ति होवै है. तैसे शैवउपासककूं ब्रह्मलोकही, शिवलोक प्रतीत होवै है. तिसलोकवासी सारे त्रिनेत्रमूर्ति अपनेसहित प्रतीत होवैं हैं. इसरीतिसे सर्वउपासककूं ब्रह्मलोक ही अपने उपास्यका लोक प्रतीत होवै है. काहेते, यह *नियम है—देवयानमार्गविना अन्य*-मार्गते जो जावैं हैं, तिनका संसारमें आगमन होवै है; और देवयानमार्ग एक ब्रह्मलोकका है; याते विदेहमोक्षके योग्य उपासक, सारे ब्रह्मलोककूं जावैं हैं. तिस ब्रह्मलोकमें ऐसी अद्भुतमहिमा है:—उपासककी इच्छाके अनुसार सारीसामग्री सहित, वह ब्रह्मलोकही तिनकूं प्रतीत होवै है; इसरीतिसे पांचोंदेवनके उपासकनकूं समफल होवै है. याकेविषे एक परमात्मामें नाना नाम रूप संभवैं हैं।

यह शंका होवै है:—पांचोंदेवनके नाम रूप भिन्न

भिन्न कहे हैं, और ईश्वर एक है; एक ईश्वरके नानारूप संभवैं नहीं. ताका यह समाधान है:–परमार्थसे नाम-रूप कोई परमात्मामें है नहीं. मंदबुद्धिकूं उपासनावास्ते, नामरूपरहित परमात्माके मायाकृत-कल्पित नामरूप कहे हैं. याते एकपरमात्मामें मायाकृत कल्पितनामरूप नाना संभवैं हैं. इसरीतिसे सर्व पुराणवाक्यनका विरोध दूरि होवै है. और–

सारे पुराणनका कारणऔर कार्य ब्रह्मके उपासनाकी क्रमतैं उपादेयता और हेयतामें तात्पर्य्य है।

पुराणवाक्यनमें विरोधशंकाका मुख्यसमाधान तो यह है–विष्णु, शिव, गणेश, देवी, सूर्य, इनते आदिले-के जितने एक एकके नाम हैं; सो सारे कारणब्रह्मके नाम हैं. और कार्यब्रह्मके भी सो सारे नाम हैं. जैसे मायाविशिष्ट कारणकूं ब्रह्म कहैं हैं; और हिरण्यगर्भ कार्य है, ताकूं भी ब्रह्म कहैं हैं. इसरीतिसे कारणब्रह्मकूं विष्णु, शिव, गणेश, देवी, सूर्य पद बोधन करैं हैं. और कार्यब्रह्मकूं भी पांचोंपद बोधन करैं हैं. ऐसे पांचोंपदनके जो नारायण, नीलकंठ, विघ्नेश, शक्ति, भानु इत्यादिक अनंतपर्याय हैं:–सो सारे कारणब्रह्म और कार्य-ब्रह्म दोनोंकूं बोधन करैं हैं. कहूँ कारणब्रह्मकूं, कहूं कार्य-ब्रह्मकूं, प्रसंगते बोधन करैं हैं. जैसे सैंधवपद, अश्व,

लवण, दोनोंकूं बोधन करै है. भोजन प्रसंगमें, सैंधवपद लवणकूं बोधन करै है. और गमनप्रसंगमें सैंधवपद अश्वकूं बोधन करै है. वैष्णवपुराणमें विष्णु नारायणादिक पद, कारणब्रह्मके बोधक हैं; शिव,गणेश सूर्यादिकपद, कार्यब्रह्मके बोधक हैं, याते,

१ वैष्णवग्रंथनमें विष्णुकी स्तुति, और शिवादिकनकी निंदाते व्यासका यह अभिप्राय है:—कारणब्रह्म उपास्य है और कार्यब्रह्म उपास्य नहीं. २ तैसे स्कंदपुराणादिक शैवग्रंथनमें शिवमहेशादिकपद कारणब्रह्मके बोधक हैं, और विष्णु गणेश देवी सूर्यादिकपद कार्य ब्रह्मके बोधक हैं. याते तिनमें भी कारणब्रह्मकी स्तुति और कार्यब्रह्मकी निंदा है. ३ तैसे गणेशपुराणमें गणेशपद, कारणब्रह्मका वाचक, और विष्णुशिवादिकपद कार्यब्रह्मके वाचक हैं. याते कारणकी स्तुति, कार्यकी निंदा है ४ तैसे कालीपुराणमें काली,देवी आदिकपद, कारणब्रह्मके बोधक और विष्णु,शिव, गणेश, सूर्यादिकपद कार्यब्रह्मके बोधक;याते कालीपदबोध्य कारणकी स्तुति, और विष्णुशिवादिकपदबोध्य कार्यब्रह्मकी निंदा है.५तैसे सौरपुराणमें, सूर्यभानुपदबोध्य कारण ब्रह्म है ताकी स्तुति;और अन्यपदबोध्य कार्यकी निंदा है:—इसरीतिसे सकलपुराणमें, कार्य कारणको संज्ञारूप संकेतका तो भेद है, उपादेय हेय जो अर्थ ताका

भेद नहीं. सकलपुराणमें १ कारण ब्रह्मकी उपासना उपादेय है; और २ कार्यकी उपासना हेय है. याते सारे पुराण एककारण ब्रह्मकूं उपास्यता बोधन करैं हैं. तिनका आपसमें विरोध नहीं.

मूर्तिप्रतिपादनका अभिप्राय ।

यद्यपि चतुर्भुज, त्रिनेत्र, सतुण्डअष्टभुजादिकमूर्ति मायाके परिणाम हैं,और चेतनके विवर्त हैं,याते कार्य हैं, और तिनकी भी उपासना कही है. तथापि तिन चतुर्भुजादिक मूर्तियोंका जो मायाविशिष्ट कारण है, तासे विचार कियेते भेद नहीं. याते तिन आकारोंको बाधिके, कारणरूपते तिनकी उपासनामें तात्पर्य है काहेते आकार कार्य है,याते तुच्छ है,और कारण सत्य है. और जाकी मंदप्रज्ञा आकारमें ही स्थित होवै, सो शास्त्रउक्त आकारकी ही उपासना करै; तासे भी प्रज्ञा निश्चलहोयके कारणब्रह्मकी उपासनामें स्थिति होवै है.

कारणब्रह्मकी उपासना इसरीतिसे कही है:—ब्रह्म जगत्‌का कारण है;सत्यकाम है, सत्य संकल्प है,सर्वज्ञ है, स्वतंत्र है, सर्वका प्रेरक है, कृपालु है, ऐसे ईश्वरके धर्मनकूं चिंतन करै मूर्तिचिंतनमें शास्त्रका तात्पर्य नहीं और अनेक मूर्ति जो शास्त्रमें लिखी हैं;सो उपासनाके निमित्त नहीं, किंतु सारी मूर्ति कारणब्रह्मकी उपलक्षण

हैं. जो वस्तु जाके एक देशमें होवै और कदाचित् होवै और व्यावर्तक होवै, सो उपलक्षण कहिये है. जैसे "काकवाला देवदत्तका गृह है." या वाक्यमें देवदत्तके गृहका काक उपलक्षण है. काहेते गृहके एकदेशमें काक होवै है; और कदाचित् होवै है. सर्वदा नहीं; और अन्य गृहते देवदत्तके गृहका व्यावर्तक है. तैसे जगत्का कारण ब्रह्म है. ताके एकदेशमें मूर्ति होवै है. और कदाचित् होवै है. और चतुर्भुजादिक मूर्ति कारणब्रह्मविषेही होवै है. अन्यमें नहीं; याते व्यावर्तक होनेते, उपलक्षण है, उपलक्षणका यह प्रयोजन होवै है:-विशेष्यवस्तुके स्वरूपका ज्ञान होवै. जैसे काकते देवदत्तके गृहका ज्ञान होवै अन्य प्रयोजन काकते नहीं. तैसे चतुर्भुजादिक आकारनते, निराकार कारणब्रह्मका ज्ञान ही उपासनाके निमित्त मूर्तिप्रतिपादनका प्रयोजन है; अन्य नहीं. और-

आकारनमें आग्रहवाले शैवादिककूं खेदकी प्राप्ति ।

मंदप्रज्ञावाले शास्त्र अभिप्रायकूं समझे विना, तिन आकारनमें आग्रह करैं हैं- और श्याल सारमेयन्यायते परस्पर कलह करैं हैं. स्त्रीके भाईकूं श्याल कहैं हैं. कुक्कुरकूं सारमेय कहैं हैं दृष्टांतकूं न्याय कहैं हैं. किसीके सालेका नाम उत्फालक था, और सालेके शत्रुका

नाम धावक था. तिस पुरुषके गृहके कुक्कुरका नाम धावक, और दूसरे गृहके कुक्कुरका नाम उत्फालक था. तहां तिस पुरुषकी स्त्री गृहविषे प्रथम आई. तब दोनों कुक्कुर आपसमें हमेस लडैं, तहां स्त्रीका पति ससुर आदिक उत्फालककूं गाली देवें, और अपने धावककी बडाई करैं तब ता स्त्रीकूं यह भ्रांति हुईः—मेरे भाईकूं गाली देवै है, ताके शत्रुकी बडाई करैं हैं. तासे दूषित होयके भर्तासे क्लेश करती हुई. जैसे तिनके अभिप्राय जाने विना, समानसंज्ञाते भ्रमकरिके स्त्रीनें क्लेश किया तैसे वैष्णग्रंथनमें शिवादिक नामते कार्य-ब्रह्मकी निंदा करी है; इस अभिप्रायकूं नहीं जानिके शैवादिक दुःखित होवैं हैं और विष्णुनामते कार्यकी निंदाकूं नहीं जानिके वैष्णव दुःखित होवैं हैं. और सकल पुराणनका यह अभिप्राय हैः-१कारणब्रह्म उपास्य है;२कार्यब्रह्म त्याज्य है.१मायाविशिष्टचेतन कारण ब्रह्म कहिये है. २ मायाकृत कार्य विशिष्टचेतन कार्यब्रह्म कहिये है. यही अर्थ भारतकी टीकाके आरंभमें लिखा है. और सारे वेदांतनका यही सिद्धांत है.

उत्तरमीमांसाकी प्रमाणता औरनकी अप्रमाणता।

चौपाई।

शुभसंततिसुनिसुतकैबना।उपज्यो जियमैंकिंचित्‌चैना
पुनितिनप्रश्नकियोनिजपूतहि।शास्त्रपरस्परकहतअसूतहि

टीका-पुराणमें विरोधशंकाके नाशतें; चैन कहिये सुख हुवा और षट्शास्त्रनकी परस्पर विरोध शंका मिटी नहीं याते किंचित् चैन हुवा; सर्वथा नहीं. असूत कहिये विरुद्ध कहैं हैं.

चौपाई।

तिनमें सत्यकौनसो कहिये। जाको अर्थ बुद्धिमैंलहिये॥
तर्कदृष्टिमुनिनिजपितुबानी। बोल्योवचनसुपरमप्रमानी
उत्तरमीमांसा उपदेशा। वेदविरुद्ध न जामैं लेशा॥१०३॥
शास्त्रपंच ते वेदविरुद्धं। याते जानहु तिनहि अशुद्धं॥
किंचित् अंश वेदअनुसारी। लखिबहुग्रहतमंदअधिकारी

टीका-यद्यपि षट्शास्त्रनके कर्त्ता सर्वज्ञ कहे हैं. १ सांख्यका कर्त्ता कपिल, २ पातंजलका कर्त्ता पतंजलि शेषका अवतार, ३ न्यायका कर्त्ता गौतम; ४ वैशेषिकशास्त्रका कर्त्ता कणाद, ५ पूर्वमीमांसाका कर्त्ता जैमिनि, ६ उत्तरमीमांसाका कर्त्ता व्यास, इन सबनका माहात्म्य प्रसिद्ध है, याते इनके वचनरूप शास्त्रभी सारे समानप्रमाण चाहिये तथापि सर्व वाक्यनमें प्रबलप्रमाण वेदवाक्य हैं. काहेते १ वेदका कर्त्ता सर्वज्ञ ईश्वर है. ताकेविषे भ्रम संदेह विप्रलिप्सादोष संभवै नहीं. २ इनशास्त्रनके कर्त्ता जीव- हैं तिनविषे भ्रम आदिक दोषनका संभव है. १ यद्य

पि शास्त्रकार भी सर्वज्ञ कहे हैं. तथापि तिनकूं सर्वज्ञता योगमाहात्म्यसे हुई है. याते युंजानयोगी हुये हैं और ईश्वरकूं सर्वज्ञता स्वभावसिद्ध है. यातैं युक्तयोगी है. १ जाकूं चिंतन किये पदार्थनका ज्ञान होय. सो युंजानयोगी कहिये है. २ जाकूं सर्वदा एकरस सारे पदार्थ अपरोक्ष प्रतीत होवैं सो युक्तयोगी कहिये है. ऐसा ईश्वर है. १ युक्तयोगी कृत वेदवचन प्रबल, और २ युंजानयोगीकृत शास्त्रवचन दुर्बल हैं. याते–

वेदअनुसारीशास्त्र प्रमाण, और वेदविरुद्ध अप्रमाण पांचशास्त्र जैसे वेदविरुद्ध हैं. तैसे शारीरक आदिक ग्रंथनमें स्पष्ट है. और उत्तरमीमांसा किसी अंशमें वेदविरुद्ध नहीं. याते प्रमाण है. और शास्त्र भी किसी अंशमें वेदके अनुसारी देखिके मन्दबुद्धि तिनमें विश्वास करैं हैं. परंतु बहुतअंशमें वेदविरुद्ध हैं याते त्याज्य हैं. किसी अंशमें वेद अनुसारी होनेते उपादेय होवें तो जैनशास्त्री भी अहिंसा अंशमें वेद अनुसारी है. उपादेय हुआ चाहिये और त्याज्य है उपादेय नहीं. यद्यपि सुगत ईश्वरका अवतार है. जाकूं बुद्ध कहैं हैं, ताके वचन भी वेद समान प्रमाण चाहिये तथापि बुद्ध विप्रलिप्सा निमित्तते हुआ है, याते ताके वचन सर्वथा अप्रमाण हैं. (वंचनकी इच्छाकूं विप्र-

लिप्सा कहैं हैं, जाकूं बहकावनेकी इच्छा कहैं हैं) याते सर्व अंशमें वेद अनुसारी उत्तरमीमांसा ही सर्वथा मुमुक्षुकूं उपादेय है यद्यपि उत्तरमीमांसा व्यासकृत सूत्ररूप है, ताका व्याख्यान भी अनेक पुरुषोंने नानारीतिसे किया है. तथापि पूज्यचरणशंकरकृत व्याख्यान ही वेदानुसारी है. और नहीं; यह पञ्चमतरंगमें प्रतिपादन करी है, याते और पञ्च शास्त्र अप्रमाण हैं. और–

न्यायशास्त्रकी त्याज्यतामें दृष्टांत और हेतु.

जो इसतरंगमें पूर्व सारेशास्त्र मोक्षउपयोगी कहे, सो तर्क दृष्टिके सारग्राही विवेकते कहे,जैसे किसीका शत्रु तरवारि मारे, तैसे रुधिर निकसिके, दैवगतिसे रोगनिवृत्ति होय जावै; तब सारग्राही पुरुष तरवारि मारनेका उपकार मानि लेवै; तैसे अन्यशास्त्रनसे भी किसीरीतिसे अंतःकरणकी शुद्धि, वा निश्चलता हुयेते पुरुष निवृत्त होयके, वेदअनुसार निश्चय करै, तो मोक्ष होवै है, सर्वथा तिनहीमें आग्रह करे तो, अंधगोलांगूलन्यायते अनर्थकूं प्राप्त होवै है, याते सकलशास्त्र त्यागिके अद्वैतव्याख्यानरीतिसे उत्तरमीमांसा उपादेय है.

अंधगोलांगूलन्यायःयह है:–किसी धनीके भूषणयुक्त पुत्रकूं चोर लेगये, वनमें भूषण ले ताके नेत्र फोडिके छोडगये, तब तो रुदन करते बालककूं कोई निर्दय वंचक बलउन्मत्त बलीवर्दकी लांगूल पकडाय देवै और

यह कहैः—तू इसका लांगूल मत छोडियो तेरे ग्राममें यह पहुंचाय देवेगा सो दुःखी बालक ताके वचनमें विश्वास करिके दुःख अनुभव करिके नष्ट होवै है तैसे विषयरूप चोरविवेकरूप नेत्रको फोडिके संसार वनमें गेरे हैं. तहां भेदवादी निर्दयवंचक अन्यशास्त्रनके सिद्धांतमें आग्रह करवावैं हैं, और यहःकहैं हैंः—हमारा उपदेशही तेरेकूं परमसुख प्राप्तिका हेतु होवैगा ताकूं छोडियो मति तिनके वाक्यनमें विश्वास करिके पुरुषार्थसुखकरहित होवै है; और जन्ममरणरूप महादुःखकूं अनुभव करै है. याते अन्यशास्त्र त्याज्य हैं.

दोहा ।

तर्कदृष्टिके वचन सुनि, शुभसंतति तिहिं तात ।
संशय शोक नश्यो सकल, लह्यो हिये कुशलात ॥
कारणब्रह्म उपासना, करी बहुत चित लाय ।
तर्कदृष्टि निजलखि-गुरू, राजसमाज चढ़ाय ॥ १०६॥

टीका—यद्यपि तर्कदृष्टि पुत्र था, तथापि उपदेश उत्तम कन्या याते गुरुपदवीकूं प्राप्त हुवा. यह ब्रह्मविद्याका माहात्म्य है.

दोहा ।

कछू व्यतीत्यो काल तब, तजि राजा निजप्रान ।
ब्रह्मलोकमें सो गयो, मुनि जहँ जात सध्यान ॥१०७॥

टीका–राजाके मरनका देश, काल कहा नहीं ताका यह अभिप्राय है; उपासकके मरणमें देशकालकी अपेक्षा नहीं, दिनमें मरे अथवा रात्रिमें, दक्षिणायनमें अथवा उत्तरायणमें, पवित्र भूमिमें अथवा अपवित्रमें, सर्वथा उपासनाके बलते देवयानमार्गद्वारा ब्रह्मलोककी प्राप्ति होवै है,और अदृष्टके प्रसंगमें जो पूर्व देशकालकी अपेक्षा कही सो योगसहित उपासकको कही है केवल ईश्वर शरण उपासककूं देशकालकी अपेक्षा नहीं, यह अर्थ सूत्रकार भाष्यकारने प्रतिपादन किया है.

दोहा।

राजकाज सब तब कियो, तर्कदृष्टि हुसियार।
लग्यो न रंचक रंगतिहि, लह्यो ब्रह्मनिरधार॥१०८॥
अंत भयो प्रारब्धको, पायो निश्चल गेह।
आतम परमातम मिल्यो, देह खेहमें छेह॥१०९॥

टीका–देहका खेह कहिये, राखमें छेह कहिये अंत, आत्मा कहिये, कूटस्थसाक्षी;ताका परमात्मासे अभेद।

यद्यपि कूटस्थका परमात्मासे सदा अभेद है; तथापि उपाधिकृत भेद है.उपाधिके लयते उपाधिकृत-भेदका अभाव होवै है. परमात्मासे अभेद कह्या ताका यह अभिप्राय है:–विदेहमुक्तिमें ईश्वरते अभेद होवै है, शुद्धचेतनब्रह्मसे नहीं, यह वार्ताशारीरकभाष्यके चतुर्थ

अध्यायमें प्रतिपादन करी है. तहां यह प्रसंग है:-१ विदेहमुक्तिमें सत्यसंकल्पादिकरूपकी प्राप्ति जैमिनिके मतमें कही है २ औडुलोमिके मतमें सत्यसंकल्पादिकनका अभाव कहा है और ३ सिद्धांत मतमें सत्यसंकल्पादिकनके भाव अभाव दोनों कहे हैं, ताका यह अभिप्राय है:-ईश्वरते अभेद होवै है, ईश्वरके सत्यसंकल्पादिक मुक्तिमें,अन्य जीवोंकरि व्यवहार करिये हैं. सो ईश्वर परमार्थदृष्टिते शुद्ध है, ताके विषे कोई गुण है नहीं;किंतु निर्गुण है याते सत्यसंकल्पादिकनका अभाव है यद्यपि संसारदशाविषे भी जीव परमार्थसे निर्गुण है, शुद्ध है; तथापि जीवकूं संसारदशामें, अविद्यासे कर्तापना भोक्तापना प्रतीत होवै है. ईश्वरकूं कभी भी आत्मामें अथवा अन्यमें संसार प्रतीत होवै नहीं. याते सदा असंग निर्गुण शुद्ध है याते ईश्वरतें जो अभेद है, सोई शुद्धसे अभेद है, और ईश्वरते अभेदकूं शुद्धब्रह्मसे अभेद नहीं मानैं, तो ईश्वरकूं शुद्धब्रह्मकी प्राप्ति कभी भी होवै नहीं. काहेते, जीवकी न्याईं, ईश्वरकूं उपदेशजन्य ज्ञान और विदेह मोक्ष तो कभी होवै नहीं; सदा प्राप्त जो ताका रूप सो शुद्ध नहीं. याते जीवतेभी न्यूनईश्वर सदाबद्ध है,यह सिद्ध होवैगा.याते यह मानना योग्य है:-१ईश्वरकूं आवरण नहीं.याते उपदेशजन्यज्ञा-

नकी अपेक्षा नहीं आवरणके अभावते भ्रांति नहीं.याते नित्यसर्वज्ञ है. नित्यमुक्तहै३माया और ताका कार्य आत्मामें प्रतीत होवै नहीं; याते सदा असंग है. याहीते शुद्ध है. इसरीतिसे ईश्वरते अभेदही शुद्धचेतनसे अभेद है, और दृष्टांतसे भी ईश्वरते ही अभेद सिद्ध होवै है.जैसे मठमें घटका अभाव होवै तो मठाकाशमें घटाकाशका लय होवै है. महाकाशमें नहीं; तैसे विद्वानका शरीर ईश्वरकृत ब्रह्मांडमें नष्ट होवै है; और ब्रह्मांड सारा ईश्वरशरीर मायाके अंतर्भूत है, विद्वान्का आत्मा विदेहमोक्षमें ब्रह्मांडके बाहरि गमन करे नहीं, याते ईश्वरते अभेद होवै है, परंतु जैसे मठाकाशसे घटाकाशका अभेद हुवा; सो मठाकाश महाकाश रूपही है; तैसे ईश्वरते अभेद होवै है, सोई ईश्वर शुद्धब्रह्म ही है, याते शुद्धब्रह्मकी प्राप्ति होवै है.

इसभाषाग्रन्थके रचनेका प्रयोजन।

दोहा।

यह विचारसागर कियो, जामैं रत्न अनेक।
गोप्य वेदसिद्धान्ततें, प्रगट लहत सविवेक॥
सांख्यन्यायमैं श्रम कियो, पढ़ि व्याकरण अशेष॥
पढ़े ग्रन्थ अद्वैतके, रह्यो न एकहु शेष॥
कठिन जु और निबंध हैं, जिनमैं मतके भेद।

श्रमते अवगाहन किये, निश्चलदास सवेद ॥
तिन यह भाषाग्रन्थ किय, रंच न उपजी लाज ।
तामैं यह इक हेतु है, दया धर्म शिरताज ॥
बिन व्याकरण न पढ़ि सकै, ग्रंथसंसकृत मन्द ।
पढ़ै याहि अनयासही, लहै सु परमानन्द ॥
दिल्लीते पश्चिम दिशा, कोस अठारह गाम ।
तामैं यह पूरो भयो, किहडौली तिहिं नाम ॥
ज्ञानी मुक्ति विदेहमैं, जासों होय अभेद ।
दादू आदूरूपसो, जाहि बखानत वेद ॥
नामरूप व्यभिचारमैं, अनुगत एक अनूप ।
दादूपदको लक्ष्य है, अस्ति भाति प्रियरूप ॥

इति श्रीविचारसागरे जीवन्मुक्तिविदेहमुक्ति वर्णनं नाम सप्तमस्तरंगः समाप्तः ॥ ७ ॥

समाप्तोऽयं विचारसागरो ग्रंथः

पुस्तक मिलनेका ठिकाना—
खेमराज श्रीकृष्णदास,
"श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम् मुद्रणयन्त्रालय-बम्बई.